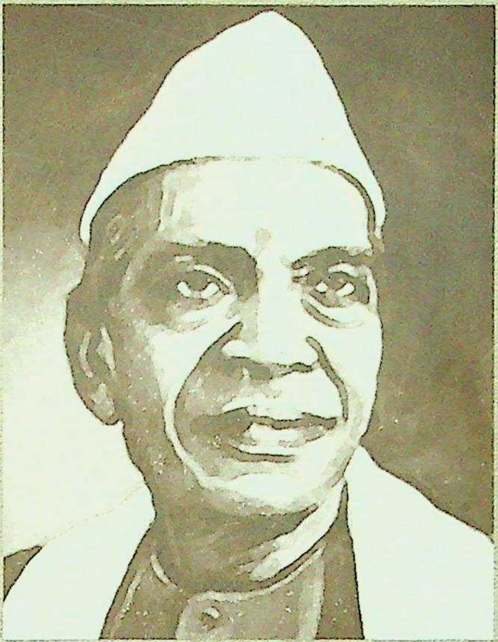

मैथिलीशरण गुप्त ग्रंथावली

२
०८१
पाली-मै

संपादक
कृष्णदत्त पालीवाल

Hindi Premi

"'भारत भारती' के कवि ने राष्ट्र और उसकी परम्पराओं का दिग्दर्शन कराया, और उसे प्रेम करने के लिए हिन्दी-संसार को अनुप्रेरित किया। यह देशप्रेम की सबसे पहली सीढ़ी है।

भूलोक का गौरव,
प्रकृति का पुण्य लीला स्थल कहाँ!
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल जहाँ!
सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है!
उसका कि जो सप्तऋषि भूमि है
वह कौन भारतवर्ष है!

इन पंक्तियों को पढ़कर किस भारतीय का हृदय अभिमान से न भर उठेगा। 'भारत भारती' का कवि इस देश की पीड़ित और दुखी जनता से प्रेम करता है। इस युवक कवि ने नवीन भारत को अपनी आँखों से देश का वास्तविक चित्र दिखाया। ञ्ञ्सम्प्रति ऐसी पृष्ठभूमि में मुसद्दस और भारत भारती का गम्भीर अध्ययन न केवल खड़ी बोली के नये साहित्यिक के लिए बल्कि हिन्दी और उर्दू के साधारण पाठक के लिए भी सर्व विशेषकर सांस्कृतिक दृष्टिकोण से उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है।"

—शमशेर बहादुर सिंह,

'मुसद्दस और भारत भारती की सांस्कृतिक भूमिका'

142707

Hindi Premi

142707

Hindi Premi

Hindi Premi

मैथिलीशरण गुप्त ग्रन्थावली

खण्ड-3

Hindi Premi

खण्ड-1

❑ रंग में भंग ❑ जयद्रथ-वध ❑ पद्य-प्रबन्ध ❑ भारत-भारती

खण्ड-2

❑ पत्रावली ❑ वैतालिक ❑ किसान ❑ पंचवटी ❑ हिन्दू

खण्ड-3

❑ स्वदेश-संगीत ❑ सैरन्ध्री ❑ वकसंहार ❑ शक्ति ❑ वन वैभव ❑ गुरुकुल

खण्ड-4

❑ विकट भट ❑ झंकार ❑ साकेत

खण्ड-5

❑ यशोधरा ❑ द्वापर

खण्ड-6

❑ सिद्धराज ❑ नहुष ❑ कुणाल-गीत ❑ अर्जन औरविसर्जन ❑ विश्व-वेदना ❑ काबा और कर्बला ❑ अजित

खण्ड-7

❑ हिडिम्बा ❑ प्रदक्षिणा ❑ युद्ध ❑ अंजलि और अर्घ्य ❑ पृथिवीपुत्र : दिवोदास, जयिनी, पृथिवीपुत्र ❑ जय भारत

खण्ड-8

❑ राजा-प्रजा ❑ विष्णुप्रिया ❑ रत्नावली ❑ उच्छ्वास

खण्ड-9

❑ अनघ ❑ चन्द्रहास ❑ तिलोत्तमा ❑ निष्क्रिय प्रतिरोध ❑ विसर्ज्जन ❑ स्वप्न वासदत्ता ❑ प्रतिमा ❑ अभिषेक ❑ अविमारक

खण्ड-10

❑ मेघनाद-वध ❑ वीरांगना ❑ विरहिणी व्रजांगना

खण्ड-11

❑ पलासी का युद्ध ❑ वृत्र-संहार ❑ रुबाइयात उमर खय्याम

खण्ड-12

❑ भूमि-भाग ❑ शकुन्तला ❑ स्वस्ति और संकेत ❑ त्रिपथगा ❑ मुंशी अजमेरी

Hindi Premi

मैथिलीशरण गुप्त ग्रन्थावली

खण्ड-3

सम्पादक

डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल

142707

वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002
फोन : 011-23273167, 23275710
फैक्स : 011-23275710
e-mail : vaniprakashan@gmail.com
website : www.vaniprakashan.com

Hindi Premi

वाणी प्रकाशन का लोगो
विख्यात चित्रकार मक़बूल फ़िदा हुसेन
की कूची से

R
022
पाली-मै

ISBN : 978-81-8143-757-0

वितरक :

वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

प्रकाशक
साहित्य सदन
184, तलैया झाँसी

संस्करण : 2008

© प्रमोद कुमार गुप्त, आशीष गुप्त
साहित्य सदन, 184 तलैया, झाँसी, (उ.प्र.)

आवरण : वाणी प्रकाशन
क्वालिटी ऑफसेट, शाहदरा, दिल्ली-110032
द्वारा मुद्रित

बारह खण्डों का मूल्य
मूल्य : 9000/-

MAITHILISHARAN GUPT GRANTHAWALI-3
Edited by : Dr. Krishandatt Paliwal

Hindi Premi

निवेदन

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के समग्र साहित्य को एकसूत्र में अनुस्यूत करके हिन्दी के सहृदय-समाज को अर्पित करते हुए अत्यधिक हर्ष का अनुभव हो रहा है। गुप्त जी लगभग साठ वर्ष तक साहित्य-साधना में निरन्तर समर्पित रहे। वे हिन्दी भाषियों के साथ अहिन्दी भाषियों के सर्वाधिक प्रिय रचनाकार हैं। आज का पाठक उनकी समग्र कृतियों को पढ़ने का अरमान रखता है। मैथिलीशरण गुप्त ग्रन्थावली की प्रकाशन-योजना पाठक के उसी अरमान को पूरा करने की ओर एक कदम है।

राष्ट्रकवि की गरिमा से दीप्त-प्रदीप्त मैथिलीशरण गुप्त का कृती व्यक्तित्व और उनकी असीम सर्जनात्मक क्षमता किसी भी सुमनस को मोहने और अभिभूत करने के लिए पर्याप्त है। उनके सर्जन में हमारी परम्परा के पुरखे बोलते हैं। आधुनिक भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन, नवजागरण, सत्याग्रह-युग और नेहरू युग का विचार-मन्थन गुप्त जी की रचना-दृष्टि के उत्तमांश को सामने लाता है। यह रचना-दृष्टि अपनी व्यापकता और गहराई में समाज के आर-पार देखने की क्षमता रखती थी। इतिहास-पुराण, मिथक, प्रतीक, रूपक उनकी लेखनी का पारस स्पर्श पाकर अपनी जड़ता खो बैठा और साहित्य कालजयी या क्लासिक शक्ति धारण कर लेता है। सच बात तो यह है उनके वैष्णव संस्कारों, विचारों, अभिप्रायों से काल का डमरू ऐसे बजा है कि उसमें से प्रेरणा का नाद फूट रहा है।

मैथिलीशरण गुप्त की वाचिक परम्परा से प्राप्त प्रतिभा ने हिन्दी के साथ भारतीय साहित्य के एक विशाल लोक-चित्त को प्रेरित एवं प्रभावित किया है। उन्होंने स्वाध्याय से संस्कृत, हिन्दी, बांग्ला, मराठी के साहित्य को रमकर समझा था। वे अंग्रेजी नहीं जानते थे और अंग्रेजी न जानना उनकी देसी प्रतिभा के लिए वरदान सिद्ध हुआ। उन देसी प्रतिभा की ही यह विजय है कि कवि की स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर महात्मा गाँधी ने उन्हें 'मैथिली काव्य मान' ग्रन्थ भेंट करते हुए 'राष्ट्रकवि' की उपाधि प्रदान की।

गुप्त जी का कवि कण्ठ ब्रजभाषा में फूटा था। उन्होंने अपने काव्यारम्भ में 'मधुप' और 'रसिकेन्द्र' नाम से कुछ पद्य ब्रजभाषा में लिखे भी। लेकिन शीघ्र ही

Hindi Premi

वे आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा प्रभाव शक्ति के कारण खड़ी बोली में कविता करने लगे। उन्होंने खड़ी बोली हिन्दी को उँगली पकड़कर पैदल चलना सिखाया और एक दिन इतना परिमार्जित कर दिया कि वह सर्जनात्मक शक्ति से दौड़ने लगी। खड़ी बोली स्वाधीनता आन्दोलन की भाषा रही है—विद्रोह की शक्ति रही है। इस भाषा में प्रान्त नहीं, पूरा देश खुलकर बोला है। यहाँ कहना होगा कि मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी काव्य के निर्माता थे और इस दृष्टि से उनका ऐतिहासिक महत्त्व अविस्मरणीय है। राष्ट्रीय सांस्कृतिक नवजागरण ने हमारी संस्कृति-सभ्यता के इतिहास और साहित्य में विश्वास का जो स्वर उत्पन्न किया था, उसकी अधिकाधिक स्पष्ट अभिव्यक्ति सबसे पहले मैथिलीशरण गुप्त की सर्जनात्मकता में ही हुई। हिन्दी प्रदेशों के साथ भारतीय राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का मैथिलीशरण गुप्त ने पचास वर्ष तक नेतृत्व किया। गुप्त जी ने अनुभव किया कि लोक-वेदना और लोक-चिन्ता को वाणी दिये बिना कवि-कर्म का दायित्व पूरा नहीं होता। फलतः वे अपने देश और काल की समस्याओं-चुनौतियों के अनुरूप काव्य-सृजन में पूरे मनोयोग से प्रवृत्त हो गये। उन्होंने हिन्दी कविता को रीतिवाद से मुक्त करते हुए देश-प्रेम, राष्ट्रीयता, साम्राज्यवाद विरोध की दिशा में मोड़कर दम लिया। भारतेन्दु और श्रीधर पाठक के बीज-भाव मैथिलीशरण गुप्त के सर्जन में पल्लवित-पुष्पित हुए। आज भी उनकी स्मृति से प्रेरणा की सुगन्ध आती है।

मैथिलीशरण गुप्त का काव्य-फलक अत्यन्त व्यापक है। भारतीय साहित्य के अतीत और वर्तमान दोनों पर उनकी दृष्टि रही है। रामायण-महाभारत काल के साथ उनका विशेष रागात्मक सम्बन्ध है। वैदिक युग और बौद्धकाल के कई कथानक उन्होंने उत्साहपूर्वक लिए हैं। राजपूतकाल के प्रति भी उनका आकर्षण कम नहीं है। इधर वर्तमान को तो उन्होंने अपनी युग चेतना और काव्य-संवेदना का केन्द्र बनाया ही है। वर्तमान युग के भी कई चरण उन्होंने देखे थे—बालजीवन उनका सांस्कृतिक नवजागरण काल में बीता, यौवन जागरण सुधार-आन्दोलनों के युग में, प्रौढ़ावस्था गाँधी जी के सत्याग्रह-युग में और जीवन का चौथा चरण स्वतन्त्र भारत के नेहरू-युग में। जीवन के सभी सांस्कृतिक-राजनीतिक पहलुओं का उनके काव्य में विस्तार से चित्रण है।

गुप्त जी गाँधी युग के प्रतिनिधि कवि हैं। गाँधी युग की प्रायः समस्त मूल-प्रवृत्तियाँ—अंग्रेजी शासन के अत्याचार और उनके विरुद्ध संघर्ष, सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा-आन्दोलन, किसान-मजदूर आन्दोलन, जेल जीवन, स्वतन्त्रता का उल्लास, विभाजन की विभीषिका, गाँधी जी की हत्या, संसद की गतिविधि, महँगाई की समस्या, चीन का आक्रमण, राजभाषा का प्रश्न, दलित-समस्या, उपेक्षिताओं के उद्धार की समस्या, नारी अस्मिता के खौलते प्रश्न, अशिक्षा की समस्या, पाश्चात्य सम्पर्क के शुभ-अशुभ प्रभाव, पारिवारिक जीवन-विधान में होनेवाले परिवर्तन,

Hindi Premi

ग्राम्य-जीवन का चित्रण आदि। अद्भुत बात यह है कि उनमें प्रगति और परम्परा, आधुनिकता और समसामयिकता, इतिहास और संस्कृति, परिवर्तन और निरन्तरता दोनों का सन्तुलित योग है। युगबोध की दृष्टि से अपने समकालीन साहित्यकारों में वे प्रेमचन्द के समकक्ष खड़े हैं।

उनमें लोक-जीवन, लोक-संवेदना और लोक-चेतना के कारण शुद्ध आभिजात्यवादी तत्त्वों के प्रति आग्रह न था। यह कवि आरम्भ से अन्त तक लोक-मंगलमूलक काव्य-कला, नाट्यकला, अनुवाद-कला आदि की साधना करता रहा। कवि के अपने शब्दों में, 'अर्पित हो मेरा मनुज काय/बहुजन हिताय बहुजन हिताय'। अतः उनकी काव्य-साधना का उद्देश्य है—लोक-कल्याण। आज हम क्या हो गये हैं? इसी क्या का उत्तर देने के लिए उन्होंने समस्त राष्ट्र का आह्वान किया था। वर्तमान का संशोधन करने के लिए यह जानना भी आवश्यक था कि अतीत में हम कौन थे और भविष्य में क्या होंगे? इस प्रकार उनके विचार का केन्द्र है वर्तमान। वे अतीतोपजीवी रचनाकार नहीं हैं। गुप्त जी प्रकृति के कवि नहीं हैं और न व्यापक अर्थों में उन्हें सौन्दर्य का कवि कहा जा सकता है। मूलतः वे मानव-रागों, मानव-सम्बन्धों के कवि हैं। इस दृष्टि से उन्हें वाल्मीकि, व्यास, भवभूति, तुलसी, भारतेन्दु की परम्परा का रचनाकार कहा जा सकता है।

मैथिलीशरण गुप्त परम्परागत अर्थ में आस्तिक हैं—वैष्णव हैं। राम के रूप में ईश्वर के प्रति उनकी अविचल आस्था है। इस तरह उनका मानववाद वैष्णव मानववाद ही है। इस वैष्णव मानववाद में सभी को (हिन्दू, शैव, शाक्त, सिख, मुसलमान, ईसाई सभी) जगह है। वे मुहम्मद साहब पर 'काबा-कर्बला' लिखते हैं, सिख-गुरुओं पर 'गुरुकुल' तथा कार्ल मार्क्स की पत्नी 'जयिनी' पर कविता। कहना होगा कि उनके सृजन-चिन्तन में पश्चिमवाद का 'अदर' या 'अन्य' नहीं है। भारतीय लोक मानस का आस्तिक समाजवाद उनकी 'भारतीयता' है। मैथिलीशरण गुप्त जी की इन्हीं मानववादी प्रवृत्तियों को स्थायी रूप देने के लिए इस ग्रन्थावली की योजना बनाई गयी है। विषय और विधा दोनों दृष्टिकोणों को ध्यान में रखकर विभिन्न खण्डों का विभाजन किया गया है। कुल मिलाकर ये बारह खण्ड हैं—

1. पहला खण्ड—काव्य
2. दूसरा खण्ड—काव्य
3. तीसरा खण्ड—काव्य
4. चौथा खण्ड—काव्य
5. पाँचवाँ खण्ड—काव्य
6. छठवाँ खण्ड—काव्य
7. सातवाँ खण्ड—काव्य
8. आठवाँ खण्ड—काव्य

Hindi Premi

9. नवाँ खण्ड—मौलिक एवं अनूदित नाटक
10. दसवाँ खण्ड—बांग्ला अनुवाद
11. ग्यारहवाँ खण्ड—अनुवाद
12. बारहवाँ खण्ड—विविध साहित्य

ग्रन्थावली को क्रमबद्ध करने में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा है। किन्तु इस बात का ध्यान रखा गया है कि ग्रन्थावली अधिकाधिक उपयोगी हो सके। गुप्त जी के सुपुत्र ऊर्मिलाचरण गुप्त के प्रति हृदय से कृतज्ञ हूँ। उनके सहयोग के बिना यह कार्य सम्भव ही नहीं हो पाता। उनके प्रति हार्दिक धन्यवाद। श्री अरुण माहेश्वरी और वाणी प्रकाशन से सम्बद्ध सभी व्यक्तियों ने जिस तत्परता और लगन से इस विशाल योजना को सम्पूर्ण कराया है, वह प्रशंसनीय है।

इन शब्दों के साथ मैथिलीशरण गुप्त का सम्पूर्ण रचना-संसार ग्रन्थावली के रूप में, हम पाठकों को समर्पित करते हैं। गुप्त जी के रचना-कर्म के 'पाठ' या टेक्स्ट की बहुलार्थकता का इस कार्य से थोड़ा-सा भी विकास सम्भव हुआ तो अपने को कृतकार्य मानूँगा।

—कृष्णदत्त पालीवाल

प्रोफेसर एवं पूर्व विभागाध्यक्ष
हिन्दी-विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली-110007

Hindi Premi

अनुक्रमणिका

स्वदेश-संगीत 13-14

निवेदन 15
विनय 16
प्रार्थना 17
ऊषा 19
आरोग्य-याचना 21
आह्वान 23
भारतवर्ष 25
मेरा देश 27
स्वर्ग-सहोदर 29
मातृभूमि 34
शिक्षण 38
ब्रह्मचर्य्याश्रम 39
प्राचीन भारत 42
ब्रह्मचर्य्य का अभाव 45
ब्राह्मणों से विनय 48
बैठे हैं 51
वृद्ध-विवाह 52
चेतना 53
जगौनी 54
प्रेरणा 55
स्वप्नोत्थित 56
अनिश्चय 58
चेतावनी 60
काल की चाल 61

Hindi Premi

आत्म-स्मृति 62
होली 63
श्रीरामनवमी 64
जन्माष्टमी 66
विजयदशमी 67
पर्वमयी 69
नैराश्य-निवारण 70
भाषा का सन्देश 71
अपनी भाषा 73
मेरी भाषा 74
महत्ता 75
खुला द्वार 76
प्रश्न 77
प्रतिज्ञा 78
आर्य्य-भार्य्या 79
मातृ-मंगल 80
भारत-सन्तान 82
काले बादल 84
विजय-भेरी 87
भारत की जय 89
भजन 91
कर्तव्य 92
व्यापार 93
नूतन वर्ष 94
नवयुग का स्वागत 95
अहोभाग्य 98
स्वागत 99
छूत 100
अछूत 101
सत्याग्रह 102
स्वराज्य 104
अफ़्रीका प्रवासी भारतवासी 105
स्वराज्य की अभिलाषा 108
शीतल छाया 110
गाँधी-गीत 112

Hindi Premi

ओ बारडोली!	113
जय बोल	116
विचित्र संग्राम	117
मातृ-मूर्त्ति	120
भारत का झण्डा	122
वैदिक विनय	124

सैरन्ध्री **125-149**

वक संहार **151-174**

शक्ति **175-192**

वन-वैभव **193-216**

पूर्वार्द्ध	195
उत्तरार्द्ध	206

गुरुकुल **217-380**

उपोद्घात	221
मंगलाचरण	235
अवतरण	236
गुरु नानक	239
गुरु अंगद	244
गुरु अमरदास	247
गुरु रामदास	252
गुरु अर्जुन	254
गुरु हरगोविन्द	259
गुरु हरराय	269
गुरु हरिकृष्ण	272
गुरु तेगबहादुर	275
गुरु गोविन्दसिंह	290
बन्दा वैरागी	355
परिशिष्ट	370
परम्परा	376

Hindi Premi

Hindi Premi

स्वदेश-संगीत

Hindi Premi

Hindi Premi

श्रीगणेशाय नमः

स्वदेश-संगीत

निवेदन

राम, तुम्हें यह देश न भूले,
धाम-धरा-धन जाय भले ही,
यह अपना उद्देश न भूले।
निज भाषा, निज भाव न भूले,
निज भूषा, निज वेश न भूले,
प्रभो, तुम्हें भी सिन्धु पार से
सीता का सन्देश न भूले।

Hindi Premi

विनय

आवें ईश! ऐसे योग—
हिल-मिल तुम्हारी ओर होवें अग्रसर हम लोग ॥
जिन दिव्य भावों का करें अनुभव तथा उपयोग—
उनको स्वभाषा में भरें हम सब करें जो भोग ॥
विज्ञान के हित, ज्ञान के हित सब करें उद्योग।
स्वच्छन्द परमानन्द पावें मेट कर भव रोग ॥

Hindi Premi

प्रार्थना

दयानिधे, निज दया दिखा कर
एक बार फिर हमें जगा दो।
धर्म्म-नीति की रीति सिखा कर
प्रीति-दान कर भीति भगा दो ॥

समय-सिन्धु चंचल है भारी,
कर्णधार, हो कृपा तुम्हारी;
भार भरी है तरी हमारी,
एक बार ही न डगमगा दो ॥

ह्रास मिटे अब, फिर विकास हो;
सभी गुणों का स्थिर निवास हो;
रुचिर शान्ति का चिर विलास हो;
विश्व प्रेम में हमें पगा दो ॥

राम-रूप का शील-सत्व दो,
सेतुबन्ध - रचना - महत्त्व दो;
श्याम-रूप का रास-तत्त्व दो,
कुरुक्षेत्र का सुगीत गा दो ॥

ज्ञान-मार्ग की बात बता दो;
कर्म्म-मार्ग का पूर्ण पता दो;
काल-चक्र की चाल जता दो;
भक्ति-मार्ग में हमें लगा दो ॥

Hindi Premi

फूट फैल कर फूट रही है;
उद्यमता सिर कूट रही है;
और अलसता लूट रही है;
न आप से ही हमें ठगा दो ॥

रहे न यह जड़ता जीवन में;
जागरूकता हो जन जन में;
तन में बल, साहस हो मन में;
नयी ज्योतियाँ सु जगमगा दो ॥

Hindi Premi

ऊषा

हरे, बहुत दिन तक सहा अन्धकार का भार।
अब कब होगा देश में ऊषामय अवतार?

ऐसी दया करो हे देव, भारत में फिर ऊषा आवे ॥

अब यह मिटे अविद्या-रात,
रुज-रजनीचर करें न घात,
दरसे चारों ओर प्रभात,
तम का पता न रहने पावे।
ऐसी दया करो हे देव, भारत में फिर ऊषा आवे ॥

फैले अहा! अरुण अनुराग,
चमके फिर प्राची का भाग,
जागें सब आलस को त्याग,
जड़ता की निद्रा मिट जावे।
ऐसी दया करो हे देव, भारत में फिर ऊषा आवे ॥

गावें द्विज-नेता वह गान—
जिससे हो जावे उत्थान,
गूँजे आत्मतत्व की तान,
सत्यालोक सुमार्ग दिखावे।
ऐसी दया करो हे देव, भारत में फिर ऊषा आवे ॥

Hindi Premi

पाकर हम सब पावन योग,
कर के नित्य नये उद्योग,
भोगें मन मानें सुख-भोग,
मानस-मधुप-मुक्त हों गावे।
ऐसी दया करो हे देव, भारत में फिर ऊषा आवे ॥

Hindi Premi

आरोग्य-याचना

हरि, हरि हे!
हे मेरे धन्वन्तरि हे!

तेरे हाथों में है अक्षय सरस-सुधा से भरा घड़ा,
और देश यह मरे पड़ा!
हरि, हरि हे!
हे मेरे धन्वन्तरि हे!

इसको अमृत पिला दे तू,
मरने न दे, जिला दे तू,
देवलोक के सदृश दयामय फिर यह भी तो तेरा है,
तू भी इसका मेरा है;
हरि, हरि हे!
हे मेरे धन्वन्तरि हे!

मस्तक मानों लटक गया,
कण्ठ रुका; कफ अटक गया,
आँख फिर-सी गयीं सिमिट कर, दया-दृष्टि दरसा दे तू,
सूखे को सरसा दे तू;
हरि, हरि हे!
हे मेरे धन्वन्तरि हे।

दुख का भी कुछ भान नहीं,
निज तक का भी ज्ञान नहीं,
काम नहीं देगा अब इस पर कोई अल्प उपाय कभी,

Hindi Premi

कर दे कायाकल्प अभी;
हरि, हरि हे!
हे मेरे धन्वन्तरि हे!

नाड़ी में कुछ सार नहीं,
शोणित में संचार नहीं,
कब से यह अचेत है ऐसा, कुछ अन्तर का शोधन दे,
मोह मिटा उद्‌बोधन दे;
हरि, हरि हे!
हे मेरे धन्वन्तरि हे!

इसको नूतन-जीवन दे,
फिर से तन, मन, जन, धन, दे;
पहले खड़ा किया था जैसा फिर भी इसे खड़ा कर दे,
बल दे और बड़ा कर दे;
हरि, हरि हे!
हे मेरे धन्वन्तरि हे!

Hindi Premi

आह्वान

आ जा, आ जा, ओ महाशक्ति, माँ, आ जा।
हम में तू अपने भक्ति-भाव से भा जा ॥

इस जीवन में निज नवस्फूर्ति सरसाजा,
बन्धन-समूह में मुक्ति-मूर्ति दरसाजा।
नीरस वसुधा पर सुधा-धार बरसाजा,
तीनों तापों को तीन वार तरसाजा;
खोये अपने हम पुत्र जनों को पा जा।
आ जा, आ जा, ओ महाशक्ति, माँ, आ जा ॥

हम भूल जायँ माँ, तू न भूल जा, आ जा,
इस दैन्य दैत्य पर शूल हूल जा, आ जा।
है लोल हृदय हिण्डोल, भूल जा, आ जा,
सुखमूलमयी शिव-लता, फूल जा, आ जा;
तू निज गौरव के गीत आप ही गा जा।
आ जा, आ जा, ओ महाशक्ति, माँ, आ जा ॥

भवचक्र-चालिनी, लोक-लालिनी, आ जा,
ऐश्वर्य्यशालिनी, विश्वपालिनी, आ जा।
ओ अघक्षालिनी, भव्यभालिनी, आ जा,
काली करालिनी मुण्डमालिनी, आ जा;
इस पुण्यभूमि पर पूर्ण छटा से छा जा।
आ जा, आ जा, ओ महाशक्ति, माँ, आ जा ॥

Hindi Premi

ओ शोकहारिणी, लोकतारिणी, आ जा,
ओ धर्म्मधारिणी, कर्म्मकारिणी, आ जा।
ओ भय निवारिणी, विजयसारिणी, आ जा,
ओ भव विहारिणी, विभवचारिणी, आ जा;
ये हीन भाव के ढेर ढूह सब ढा जा।
आ जा, आ जा, ओ महाशक्ति, माँ, आ जा॥

घन अन्धकार में ज्योति जगा जा, आ जा,
भूले भटकों को पार लगा जा, आ जा।
निज प्रेम-पुण्य में हमें पगा जा, आ जा,
मरने तक का भय दूर भगा जा, आ जा;
सब साम्य भाव से रहें रंक क्या राजा।
आ जा, आ जा, ओ महाशक्ति, माँ, आ जा॥

Hindi Premi

भारतवर्ष

मस्तक ऊँचा हुआ मही का, धन्य हिमालय का उत्कर्ष।
हरि का क्रीड़ा-क्षेत्र हमारा, भूमि-भाग्य-सा भारतवर्ष ॥

हरा-भरा यह देश बना कर विधि ने रवि का मुकुट दिया,
पाकर प्रथम प्रकाश जगत ने इसका ही अनुसरण किया।
प्रभु ने स्वयं 'पुण्य-भू' कह कर यहाँ पूर्ण अवतार लिया,
देवों ने रज सिर पर रक्खी, दैत्यों का हिल गया हिया!
लेखा श्रेष्ट इसे शिष्टों ने, दुष्टों ने देखा दुर्द्धर्ष!
हरि का क्रीड़ा-क्षेत्र हमारा, भूमि-भाग्य-सा भारतवर्ष ॥

अंकित-सी आदर्श मूर्ति है सरयू के तट में अब भी,
गूँज रही है मोहनमुरली ब्रज-वंशीवट में अब भी।
लिखा बुद्ध-निर्वाण-मन्त्र जयपाणि-केतुपट में अब भी,
महावीर की दया प्रकट है माता के घट में अब भी।
मिली स्वर्ण लंका मिट्टी में, यदि हमको आ गया अमर्ष।
हरि का क्रीड़ा-क्षेत्र हमारा, भूमि-भाग्य-सा भारतवर्ष ॥

आर्य, अमृत सन्तान, सत्य का रखते हैं हम पक्ष यहाँ,
दोनों लोक बनाने वाले कहलाते हैं, दक्ष यहाँ।
शान्ति पूर्ण शुचि तपोवनों में हुए तत्त्व प्रत्यक्ष यहाँ,
लक्ष बन्धनों में भी अपना रहा मुक्ति ही लक्ष यहाँ।
जीवन और मरण का जग ने देखा यहाँ सफल संघर्ष।
हरि का क्रीड़ा-क्षेत्र हमारा, भूमि-भाग्य-सा भारतवर्ष ॥

Hindi Premi

मलय पवन सेवन करके हम नन्दनवन बिसराते हैं,
हव्य भोग के लिए यहाँ पर अमर लोग भी आते हैं!
मरते समय हमें गंगाजल देना, याद दिलाते हैं,
वहाँ मिले न मिले फिर ऐसा अमृत जहाँ हम जाते हैं!
कर्म हेतु इस धर्म भूमि पर लें फिर फिर हम जन्म सहर्ष
हरि का क्रीड़ा-क्षेत्र हमारा, भूमि-भाग्य-सा भारतवर्ष ॥

Hindi Premi

मेरा देश

वलिहारी तेरा वरवेश,
मेरे भारत! मेरे देश!

बाहर मुकुट-विभूषित भाल,
भीतर जटाजूट का जाल।
ऊपर नभ, नीचे पाताल,
और बीच में तू प्रणपाल ॥
बन्धन में भी मुक्ति निवेश,
मेरे भारत! मेरे देश!

कभी मुरजमय वीणावाद,
कभी स्वरों से साम-निनाद।
कभी गगनचुम्बी प्रासाद,
कभी कुटी में ही आह्लाद ॥
नहीं कहीं भी भय का लेश,
मेरे भारत! मेरे देश!

है तेरी कृति में विक्रान्ति,
भरी प्रकृति में अविचल शान्ति।
फटक नहीं सकती है भ्रान्ति,
आँखों में है अक्षय क्रान्ति ॥
आत्मा में है अज अखिलेश,
मेरे भारत! मेरे देश!

Hindi Premi

सरस्वती का तुझ में वास,
लक्ष्मी का भी विपुल-विलास।
प्रिया प्रकृति का पूर्ण विकास,
फिर भी है तू आप उदास ॥
हे गिरीश, हे अम्बरकेश!
मेरे भारत! मेरे देश!

मस्तक में रखता है ज्ञान,
भक्ति-पूर्ण मानस में ध्यान।
करके तू प्रभु कर्म विधान,
है सत् चित् आनन्दनिधान ॥
मेटे तूने तीनों क्लेश,
मेरे भारत! मेरे देश!

इधर विविध लीला विस्तार,
उधर गुणों का भी परिहार।
जिधर देखिये पूर्णाकार,
किधर कहें हम तेरा द्वार ?
हृदय कहीं से करे प्रवेश,
मेरे भारत! मेरे देश!

तन से सब भोगों का भोग,
मन से महा अलौकिक योग।
पहले संग्रह का संयोग,
स्वयं त्याग का फिर उद्योग!
अद्भुत है तेरा उद्देश,
मेरे भारत! मेरे देश!

बनकर तू चिर साधन धाम,
हुआ स्वयं ही आत्माराम।
लिया नहीं तब तक विश्राम–
जब तक पूरा किया न काम ॥
दिये तुझी ने सब उपदेश,
मेरे भारत! मेरे देश!

Hindi Premi

स्वर्ग-सहोदर

जितने गुणसागर नागर हैं,
कहते यह बात उजागर हैं—
अब यद्यपि दुर्बल, आरत है,
पर भारत के सम भारत है ॥

बसते वसुधा पर देश कई,
जिनकी सुषमा सविशेष नई।
पर है किसमें गुरुता इतनी—
भरपूर भरी इसमें जितनी?

गुण गुम्फित हैं इसमें इतने—
पृथिवी पर हैं न कहीं जितने!
किसकी इतनी महिमा वर है?
इस पै सब विश्व निछावर है ॥

जन तीस करोड़ यहाँ गिन के—
कर साठ करोड़ हुए जिनके।
जग में वह कार्य्य मिला किसको,
यह देश न साध सके जिसको?

उपजें सब अन्न सदा जिसमें—
अचला अति विस्तृत है इसमें।
ज़ग में जितने प्रिय द्रव्य जहाँ,
समझो सबकी भवभूमि यहाँ ॥

प्रिय दृश्य अपार निहार नये;
छवि-वर्णन में कवि हार गये।

Hindi Premi

उपमा इसकी न कहीं पर है,
धरणी-धर ईश-धरोहर है!

जल-वायु महा हितकारक है,
रुजहारक, स्वास्थ्य-प्रसारक है।
द्युतिमन्त दिगन्त मनोरम है,
क्रम षड्ऋतु का अति उत्तम है ॥

सुखकारक ऊपर श्याम घटा,
दुखहारक भू पर शस्य-छटा।
दिन में रवि-लोक-प्रकाशक है,
निशि में शशि ताप-विनाशक है ॥

छविमान कहीं पर खेत हरे,
वन-बाग़ कहीं फल-फूल-भरे।
गिरि तुंग कहीं मन मोह रहे,
सब ओर जलाशय सोह रहे ॥

रतनाकर की रसना पहने,
बहु पुष्प-समूह बने गहने।
परिधान किये तृण-चीर हरा,
अति सुन्दर है यह दिव्य धरा ॥

बहु चम्पक, कुन्द कदम्ब बड़े,
बकुलादि अनन्त अशोक खड़े।
कितने न इसे वर वृक्ष मिले,
अति चित्र-विचित्र प्रसून खिले ॥

मृदु[1], बेर, मुखप्रिय[2] जम्बु फले,
कदली, शहतूत, अनार भले ॥
फलराज रसाल[3] समान कहीं—
फल और मनोहर एक नहीं ॥

कृषि केसर की भरपूर यहाँ,
मृगगन्ध[4] कुसुम्भ, कपूर यहाँ।

1. अमरूद। 2. नारंगी। 3. आम। 4. कस्तूरी।

Hindi Premi

समझो मधु का बस कोष इसे,
रस हैं इतने उपलब्ध किसे?

अमृतोपम अद्भुत-शक्तिमयी–
जिनकी सु-गुणश्रुति नित्य नयी।
इसमें बहु ओषधियाँ खिलतीं,
जल में थल में, तल में मिलतीं!

कृषि में इसने जग जीत लिया,
किसने इस-सा व्यवसाय किया?
सन, रेशम, ऊन, कपास अहो!
उपजा इतना किस ठौर कहो?

अवनी-उर में बहु रत्न भरे,
कनकादिक धातु-समूह धरे।
वह कौन पदार्थ मनोरम है–
जिसका न यहाँ पर उद्गम है ?

कवि, पण्डित, वीर, उदार यहाँ,
प्रकटे मुनि धीर अपार यहाँ।
लख के जिनकी गति के मग को–
गुरु ज्ञान सदा मिलता जग को ॥

बहु भाँति बसे पुर-ग्राम घने,
अब भी नभचुम्बक धाम बने।
सब यद्यपि जीर्ण-विशीर्ण पड़े,
पर पूर्वदशास्मृति-चिह्न खड़े ॥

अब भी वन में मिल के चरते–
बहु गो-गण हैं मन को हरते।
इन सा उपकारक जीव नहीं,
पय-तुल्य न पेय पदार्थ कहीं ॥

मद-मत्त कहीं गज झूम रहे,
मुद मान कहीं मृग घूम रहे।
शुक, चातक, कोकिल बोल रहे,
कर नृत्य शिखी-गण डोल रहे ॥

Hindi Premi

शतपत्र कहीं पर फूल रहे,
मधु-मुग्ध मधुव्रत भूल रहे।
कल हंस कहीं रव हैं करते,
जल जीव प्रमोद भरे तरते ॥

शुचि शीतल-मन्द सुगन्ध-सनी—
फिरती पवन प्रिय नारि बनी।
हरती सब का श्रम सेवन में,
भरती सुख है तन में, मन में ॥

जगती तल में वह देश कहाँ—
निकले गिरि गन्ध विशेष जहाँ?
इसमें मलयाचल शोभन है—
घन चन्दन का जिसमें वन है!

सिर है गिरिराज अहो! इसका,
इस भाँति महत्त्व कहो, किसका?
तुहिनालय यद्यपि नाम पड़ा—
विभवालय है वह किन्तु बड़ा ॥

वर विष्णुपदी[1] बहती इसमें,
रवि की तनया[2] रहती इसमें।
अघनाशक तीर्थ अनेक यहाँ,
मिलती मन को चिर शान्ति जहाँ ॥

क्षिति-मण्डल था जब अज्ञ सभी,
यह था अति उन्नत, सभ्य तभी।
बहु देश समुन्नत जो अब हैं—
शिशु-शिष्य इसी गुरु के सब हैं ॥

शुचि शौर्य्य-कथा इतनी किसकी—
जग-विश्रुत है जितनी इसकी?
अमरों तक का यह मित्र रहा,
अति दिव्य चरित्र, पवित्र रहा ॥

ध्रुव धर्म्ममयी इसकी क्षमता—
रखती न कहीं अपनी समता।

---

1. गंगा। 2. यमुना।

Hindi Premi

गरिमा इसकी न कहाँ पर है?
किस से न लिया इसने कर है ॥

श्रुति, शास्त्र, पुराण तथा स्मृतियाँ,
बहु अन्य सुधी-गण की कृतियाँ।
नय-नीति-नियन्त्रित तन्त्र बने,
सब ही विषयों पर ग्रन्थ घने ॥

कविता, कल नाट्य, सुशिल्पकला,
इस भाँति-बढ़ी किस ठौर भला?
किस पै न रहा इसका कर है?
किस सद्गुण का न यहाँ घर है?

सुख-मूल सनातन धर्म्म रहा,
अनुकूल अलौकिक कर्म रहा।
वर वृत्त बढ़े इतने किसके?
नर क्या, सुर भी वश थे इसके!

सुख का सब साधन है इसमें,
भरपूर भरा धन है इसमें।
पर हा! अब योग्य रहे न हमीं,
दुख की जड़ है इस हेतु जमीं ॥

सुन के इसकी सब पूर्व कथा,
उठती उर में अब घोर व्यथा।
इसमें इतना घृत-क्षीर बहा—
जितना न कहीं पर नीर रहा!

अब दीनदयालु! दया करिये,
सब भाँति दरिद्र-दशा हरिये।
भरिये फिर वैभव नित्य नया,
चिरकाल हुआ सुख छूट गया ॥

अवलम्ब न और कहीं इसको,
लीजिये हरि, हाय! नहीं इसको।
खलता दुख-दैत्य महोदर है,
यह भारत 'स्वर्ग-सहोदर' है ॥

Hindi Premi

मातृभूमि

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है,
सूर्य्य-चन्द्र युग मुकुट, मेखला रत्नाकर है;
नदियाँ प्रेम-प्रवाह, फूल तारे मण्डन हैं;
वन्दीजन खग-वृन्द, शेष-फन सिंहासन हैं;
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेष की।
है मातृभूमि, तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की ॥

मृतक समान अशक्त, विवश आँखों को मीचे
गिरता हुआ विलोक गर्भ से हमको नीचे;
करके जिसने कृपा हमें अवलम्ब दिया था,
लेकर अपने अतुल अंक में त्राण किया था,
जो जननी का भी सर्वदा थी पालन करती रही।
तू क्यों न हमारी पूज्य हो? मातृभूमि, माता मही!

जिसकी रज में लोट लोट कर बड़े हुए हैं,
घुटनों के बल सरक सरक कर खड़े हुए हैं;
परमहंस-सम बाल्यकाल में सब सुख पाये,
जिसके कारण 'धूल भरे हीरे' कहलाये;
हम खेले-कूदे हर्ष युत जिसकी प्यारी गोद में।
हे मातृभूमि, तुझको निरख मग्न क्यों न हों मोद में?

पालन, पोषण और जन्म का कारण तू ही,
वक्ष-स्थल पर हमें कर रही धारण तू ही;
अभ्रंकष प्रासाद और ये महल हमारे,
बने हुए हैं अहो तुझी से तुझ पर सारे;

Hindi Premi

हे मातृभूमि, हम जब कभी शरण न तेरी पायँगे।
बस, तभी प्रलय के पेट में सभी लीन हो जायँगे ॥

हमें जीवनाधार अन्न तू ही देती है,
बदले में कुछ नहीं किसी से तू लेती है;
श्रेष्ठ एक से एक विविध द्रव्यों के द्वारा,
पोषण करती प्रेम भाव से सदा हमारा;
हे मातृभूमि, उपजें न जो तुझ से कृषि-अंकुर कभी।
तो तड़प तड़प कर जल मरें, जठरानल में हम सभी ॥

पाकर तुझ से सभी सुखों को हमने भोगा,
तेरा प्रत्युपकार कभी क्या हम से होगा?
तेरी ही यह देह, तुझी से बनी हुई है,
बस, तेरे ही सुरस-सार से सनी हुई है;
फिर अन्त समय तू ही इसे अचल देख अपनायगी।
हे मातृभूमि, यह अन्त में तुझ में ही मिल जायगी ॥

जिन मित्रों का मिलन मलिनता को है खोता,
जिस प्रेमी का प्रेम हमें मुददायक होता;
जिन स्वजनों को देख हृदय हर्षित हो जाता,
नहीं टूटता कभी जन्म भर जिनसे नाता;
उन सब में तेरा सर्वदा व्याप्त हो रहा तत्त्व है।
हे मातृभूमि, तेरे सदृश किसका महा महत्त्व है?

निर्मल तेरा नीर अमृत के सम उत्तम है,
शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन हर लेता श्रम है;
षट्ऋतुओं का विविध दृश्य युत अद्भुत क्रम है,
हरयाली का फर्श नहीं मख़मल से कम है;
शुचि सुधा सींचता रात में तुझ पर चन्द्रप्रकाश है।
हे मातृभूमि, दिन में तरणि करता तम का नाश है ॥

सुरभित, सुन्दर सुखद सुमन तुझ पर खिलते हैं,
भाँति भाँति के सरस, सुधोपम फल मिलते हैं,
ओषधियाँ हैं प्राप्त एक से एक निराली,
खानें शोभित कहीं धातु-वर रत्नों वाली;

Hindi Premi

जो आवश्यक होते हमें, मिलते सभी पदार्थ हैं।
हे मातृभूमि, वसुधा धरा, तेरे नाम यथार्थ हैं ॥

दीख रही है कहीं दूर तक शैलश्रेणी,
कहीं घनावलि बनी हुई है तेरी वेणी;
नदियाँ पैर पखार रही हैं बनकर चेरी,
पुष्पों से तरु-राजि कर रही पूजा तेरी;
मृदु मलय-वायु मानो तुझे चन्दन चारु चढ़ा रही।
हे मातृभूमि, किसका न तू सात्विक भाव बढ़ा रही?

क्षमामयी, तू दयामयी है, क्षेममयी है,
सुधामयी, वात्सल्यमयी, तू प्रेममयी है;
विभवशालिनी, विश्वपालिनी, दुखहर्त्री है,
भयनिवारिणी, शान्तिकारिणी, सुखकर्त्री है;
हे शरणदायिनी देवि, तू करती सब का त्राण है।
हे मातृभूमि, सन्तान हम, तू जननी, तू प्राण है ॥

आते ही उपकार याद हे माता! तेरा,
हो जाता मन मुग्ध भक्ति-भावों का प्रेरा;
तू पूजा के योग्य, कीर्ति तेरी हम गावें,
मन होता है—तुझे उठा कर शीश-चढ़ावें;
वह शक्ति कहाँ, हा! क्या करें, क्यों हम को लज्जा न हो?
हम मातृभूमि, केवल तुझे शीश झुका सकते अहो!

कारण वश जब शोक-दाह से हम दहते हैं,
तब तुझ पर ही लोट-लोट कर दुख सहते हैं।
पाखण्डी भी धूल चढ़ाकर तन में तेरी,
कहलाते हैं साधु, नहीं लगती है देरी;
इस तेरी ही शुचि धूलि में मातृभूमि वह शक्ति है—
जो क्रूरों के भी चित्त में उपजा सकती भक्ति है!

कोई व्यक्ति विशेष नहीं तेरा अपना है,
जो यह समझे हाय! देखता वह सपना है;
तुझ को सारे जीव एक से ही प्यारे हैं,
कर्म्मों के फल मात्र यहाँ न्यारे न्यारे हैं;

Hindi Premi

हे मातृभूमि, तेरे निकट सब का सब सम्बन्ध है।
जो भेद मानता वह अहो! लोचनयुत भी अन्ध है ॥

जिस पृथिवी में मिले हमारे पूर्वज प्यारे,
उससे हे भगवान! कभी हम रहें न न्यारे;
लोट लोट कर वहीं हृदय को शान्त करेंगे,
उसमें मिलते समय मृत्यु से नहीं डरेंगे;
उस मातृभूमि की धूल में जब पूरे सन जायँगे।
होकर भव-बन्धन-मुक्त हम आत्मरूप बन जायँगे ॥

Hindi Premi

शिक्षण

भय-रहित भव-सिन्धु तरना सीख ले कोई यहाँ।
विश्व में आकर विचरना सीख ले कोई यहाँ ॥
ज्ञान् पूर्वक, भक्ति पूर्वक कठिन कर्म्मक्षेत्र में,
चाहिए कैसे उतरना? सीख ले कोई यहाँ।
मुक्ति तो है साथ ही हम सर्वदा स्वच्छन्द हैं,
वासना बन्धन-कतरना सीख ले कोई यहाँ ॥
कर्म्म हैं जितने सभी प्रभु नाम पर होते रहें,
एक मन से ध्यान धरना सीख ले कोई यहाँ ॥
आपदा में, सम्पदा में, हर्ष में या शोक में,
चित्त को चंचल न करना सीख ले कोई यहाँ।
जानते हैं हम कि है आचार की सीमा कहाँ,
पुण्य के भाण्डार भरना सीख ले कोई यहाँ ॥
त्याग में सर्वस्व क्या, उत्सर्ग करना आप को,
स्वार्थ से सर्वत्र डरना सीख ले कोई यहाँ।
ऋषि जनों की रीति थी—अपने लिए जीते न थे,
प्रेम में निर्मोह मरना सीख ले कोई यहाँ ॥

Hindi Premi

ब्रह्मचर्य्याश्रम

ज्ञान हमारा ध्यान हमारा
मस्तक में, मन में था।
शम दम-साधन निगमाराधन
पुण्य तपोवन में था ॥

उटज बने थे विटप घने थे
खग-मृग हिलेमिले थे।
कन्द-मूल-फल विमल नदी जल
सुरभित सुमन खिले थे ॥

पवनालोडित गगनाक्रोडित
होम-धूम उठते थे।
सूर्य-सुधाकंर कर फैला कर
चिबुक चूम उठते थे ॥

शुद्ध कुशासन ऋषि का शासन
जो था परहित-रत था।
पूर्ण तितिक्षा सच्ची शिक्षा
ब्रह्मचर्य्य का व्रत था ॥

शास्त्र-पाठ था अजब ठाठ था
नृप भी नत रहते थे।
सब विषयों पर प्रश्नोत्तर कर
सुनते थे, कहते थे ॥

Hindi Premi

वेद-गान वह सुधा-पान वह
देवों को भी भाता।
मेट ताप को स्वयं आप को
जीवन मुक्त बनाता ॥

सब प्रकाशमय सभी निरामय
शीलवान थे सच्चे।
एक देश के एक वेश के
एक पिता के बच्चे ॥

जहाँ भेद है वहाँ खेद है
हम सब में समता थी।
वर विनोद था मनोमोद था
मोह न था, ममता थी ॥

किसी छात्र पर न था शुल्क कर
गुरु भोजन भी देते।
वे थे त्यागी परम विरागी
बदले में क्या लेते?

न कुछ सोच था न संकोच था
न थीं जगत की घातें।
कहाँ शोक था? भिन्न लोक था
विद्या की थीं बातें ॥

ज्ञान-कर्म्म का भक्ति-धर्म्म का
बोध यहाँ होता था।
तत्व तत्व का सत्य सत्व का
शोध यहाँ होता था ॥

यहीं पढ़े हम यहीं बढ़े हम
मति, गति बल पाया की।
उलझी उलझी गाँठें सुलझीं
ब्रह्म, जीव माया की ॥

Hindi Premi

वायु खींचकर नेत्र मींच कर
प्राणायाम बढ़ाते।
योग-सिद्धि की आयुवृद्धि की
शिक्षा थे सब पाते ॥

वह पारायण हे नारायण!
अमर भाव भरता था।
सारे संशय सारे भव-भय
छिन्न भिन्न करता था ॥

हे भारत, अब वे बातें सब
कहाँ दिखाई देतीं?
चित्र-फलक पर झलक-झलक कर
यहाँ दिखाई देतीं!

Hindi Premi

प्राचीन भारत

सुख सभी जिसको तुम ने दिये,
विविध रूप धरे जिसके लिये।
न कुछ वस्तु अलभ्य रही जहाँ,
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

न जिसमें जन एक दुखी रहा,
सतत जो सब भाँति सुखी रहा।
कुशल मंगल का गृह था जहाँ,
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

सुन पड़ा न अकाल जहाँ कभी,
मुदित निर्भय थे रहते सभी।
विपुल था धन-धान्य भरा जहाँ,
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

ऋतु विपर्यय था न हुआ कभी,
अखिल आयु प्रसन्न रहे सभी।
विवश थे सब रोग सदा जहाँ,
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

सब मनुष्य जहाँ मतिमान थे,
सब विरोग तथा बलवान थे।
सब जितेन्द्रिय, सज्जन थे जहाँ,
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

यदपि वर्ण-विभेद-विचार था,
पर परस्पर प्रेम अपार था।

Hindi Premi

कलह कारक द्वेष न था जहाँ,
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

सदुपदेशक थे द्विज सत्क्रिय,
सुजन-रक्षक क्षत्रिय थे प्रिय।
विभव-वर्द्धक वैश्य रहे जहाँ,
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

सुकवि, शिल्पि, गुणी, नट, गायक,
कुशल कोविद, चित्र-विधायक।
सब असंख्यक थे मिलते जहाँ,
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

विपुल वाणिज-वृत्ति जहाँ बढ़ी,
समय के सिर उन्नति थी चढ़ी।
त्रुटि रही न किसी गुण की जहाँ,
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

समय पै घन नीर दिया किये,
स्वजन के सम काम किया किये।
कृषि यथेष्ट सदैव हुई जहाँ,
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

सब प्रकार परस्पर प्रीति थी,
विगत भीति सु-शासन नीति थी।
लख पड़ी न कुरीति कहीं जहाँ,
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

सुन पड़ी न कहीं छल छिद्रता,
कर सकी न प्रवेश दरिद्रता।
डर किसी रिपु का न रहा जहाँ,
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

विदित है जिसकी वर वीरता,
निरुपमेय रही ध्रुव-धीरता।
सब समृद्ध, स्वतन्त्र रहे जहाँ,
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

Hindi Premi

रति रही सब की निज धर्म्म में,
मति रही सब काल सुकर्म्म में।
गति रही श्रुति पद्धति में जहाँ,
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

ऋषि तथा मुनि मंगल-धाम थे,
तप जहाँ करते अविराम थे।
प्रचुर पुण्य तपोवन थे जहाँ,
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

हवन-अग्नि जहाँ न रुकी कभी,
श्रुति-पुराण-सुधा न चुकी कभी।
सुकृत का अति संचय था जहाँ
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

सुगुण शीलवती कुलकामिनी,
सहज थीं सब सत्पथगामिनी।
तनिक भी कुविचार न था जहाँ
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

रुदन-नीर जहाँ न कभी बहा,
श्रवण-गोचर गान सदा रहा।
सतत उत्सव थे रहते जहाँ,
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

जगत ने जिसके पद थे छुए,
सकल देश ऋणी जिसके हुए।
ललित लाभ-कला सब थीं जहाँ,
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

गुण कहाँ तक यों उसके कहें?
उचित है अब तो चुप हो रहें।
सुख-कथा दुखदायक है यहाँ!
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

Hindi Premi

ब्रह्मचर्य्य का अभाव

"रस बिना कविता वृथा है" ठीक है यह बात;
पर किसे भीषण कथा रस-पूर्ण होगी ज्ञात?
ब्रह्मचर्य्य-व्रत बिना है जो हमारा हाल,
मित्र उसका चित्र दर्शन है बड़ा विकराल!

बढ़ रहे अब क्यों निरन्तर नित्य नूतन रोग?
क्यों न होते पूर्व के-से शक्तिशाली लोग?
सर्वथा स्वल्पायु होकर घट रहे क्यों आर्य्य?
पूर्वजों के तुल्य क्यों होते न हम से कार्य्य?

एक उत्तर है यहाँ पर—'ब्रह्मचर्य्याभाव',
कर रहा घुस कर यही घर पर भयंकर घाव!
वीर्य्य बल का मूल है, संसार में जो सार;
ब्रह्मचर्य्याश्रम बिना उसका कहाँ आधार?

ब्रह्मचर्य्याभाव है जब, वीर्य्य का क्या काम?
वीर्य्य जब तनु में नहीं, बल का कहाँ फिर नाम?
बल नहीं जब देह में, हों क्यों न नाना रोग?
रोग-युक्त शरीर कै दिन भोग सकता भोग?

वीर्य्य दैहिक शक्ति का ही है नहीं आगार,
मानसिक बल-बुद्धि का भी है यही आधार!
कुछ विचार किया जहाँ, मस्तक हुआ सविकार!
इस दशा में किस तरह हो ज्ञान का विस्तार?

एक वे हैं, कर रहे जो अद्भुताविष्कार;
एक हम हैं, खोल बैठे मूर्खता का द्वार!

Hindi Premi

वीर्य्य-बल-सम्पन्न हैं वे, हम विपन्न, अशक्त;
भेद हम में और उनमें क्यों न हो फिर व्यक्त?

वीर्य्य से ही धीरता को धार सकते धीर,
वीर्य्य से ही वीरता को प्राप्त होते वीर।
वीर्य्य से ही भीष्म में थी आत्मशक्ति असीम,
वीर्य्य से ही हाथियों को फेंकते थे भीम ॥

पुत्र ने माँ का अभी छोड़ा नहीं पय-पान,
पौत्र-दर्शन की हमें इच्छा हुई बलवान!
स्वल्प वय में ही तनय का कर दिया बस ब्याह,
आह! इस वात्सल्य की भी है भला कुछ थाह!!!

वीर्य्य-रक्षा का जिन्हें मिलता न अवसर हाय!
क्यों न वे अल्पायु होकर नष्ट हों निरुपाय?
प्राण से प्यारे सुतों का भूल कर परिणाम—
कर रहे माता पिता ही शत्रुओं का काम!

वीर्य्य की परिपुष्टता से हैं स्वयं जो हीन,—
क्यों न हो सन्तान उनकी क्षीण और मलीन?
कर कभी सकते न अंकुर बीज-गुण-विच्छेद;
ईश-नियमों में कभी होता न विनिमय-भेद।

हाय! मेधा शक्ति अब देती नहीं है साथ,
मक्खियाँ कैसे उड़ें, उठते नहीं हैं हाथ!
पूर्णयौवनकाल ही में हो गया कृश गात,
ब्रह्मचर्य्याभाव के हैं ये सभी उत्पात ॥

पूर्वजों के बुद्धि बल की बात कहते आज,—
हाय! क्यों हम पर न गिरती लाज रूपी गाज?
आज भी जिनके अलौकिक कार्य्य हैं अविलीन,
क्या वही पूर्वज हमारे थे हमीं-से दीन?

ब्रह्मचर्य्य-व्रत सहित कर शास्त्रशीलन शुद्ध,
था प्रथम होना कहाँ तो पुष्ट और प्रबुद्ध।
हा! कहाँ अब जन्म से ही ये विषय के साज,
पतित होगा क्या हमारा और अधिक समाज?

Hindi Premi

मनुज में मनुजत्व का है चिह्न केवल शील,
ब्रह्मचर्य्य बिना हुई उस शील में भी ढील।
आत्मसंयम-हेतु है बस ब्रह्मचर्य्य प्रधान,
ब्रह्मचर्य्य मनोदमन का है प्रथम सोपान ॥

वीर्य्य-रक्षा के बिना होते न अवयव पुष्ट,
क्यों न अवनति हो हमारी, क्यों न हों रुज रुष्ट?
रोक सकती औषधें क्या यह अपार अनर्थ?
नष्टमूल मरीरुहों को सींचना है व्यर्थ ॥

नियम के प्रतिकूल जो करने गये हैं काम,—
हो गया है नाश उनका, मिट गया है नाम।
यदि न चेतेंगे, हमें भी क्यों न होगा दण्ड?
प्रकृति-शासन में दया का है अभाव अखण्ड ॥

भाग्य पर करते वृथा हम रोष या सन्तोष,
समय के सिर थोपते हैं व्यर्थ ही सब दोष।
कर्म्म-फल के भोग का गाता न कोई गीत,
समय क्या विपरीत है, बस हैं हमीं विपरीत ॥

हो उठे यदि फिर यहाँ पर ब्रह्मचर्य्य-स्फूर्ति,
तो हमारी हीनता की हो सहज ही पूर्ति।
प्राप्त हो फिर से हमें वह बुद्धि और विवेक—
जन्म लें घर घर यहाँ पर 'राममूर्ति' अनेक ॥

वीर्य्य-रक्षण जो हमें होगा न अब भी इष्ट—
तो हमारा नाम ही रह जायगा अवशिष्ट।
दीखती सर्वत्र है बलवान की ही चाह,
लोक में निर्बल जनों का है नहीं निर्वाह ॥

हर हरे! हा दीनबन्धो! हा विभो! विश्वेश!
कौन हर सकता हमारा तुम बिना यह क्लेश?
दीजिए दृढ़ मति दयामय, कीजिए मद-मुक्त;
हो सकें जिसमें पुनः हम पूर्व-गौरव युक्त ॥

Hindi Premi

ब्राह्मणों से विनय

हे अग्रजन्म, भूदेव, पूज्यपद विप्रवरो!
इस निज विनीत जन की विनती पर ध्यान धरो।
क्या थे तुम, अब क्या हुए, विचारो, दया करो;
सब बातें सोच-विचार शीघ्र दुख-दोष हरो ॥

इस समय तुम्हारी दशा बहुत ही हीन हुई,
यह जाति तुम्हारी, देखो कैसी दीन हुई!
वह शक्ति अलौकिक सकल मूल से क्षीण हुई,
हा! पूर्व काल की कथा आज सब लीन हुई ॥

अब वह तप-तेज विचित्र कहो, सब कहाँ गया?
वह अनुपम ज्ञान पवित्र अहो! सब कहाँ गया?
भस्मावशेष पावक-सम तुम निःशक्त हुए,
वे धर्म्म-कर्म्म हा हन्त! आज सब त्यक्त हुए!

देखो तो तुम से जगत आज है क्या कहता,
लोकापवाद का सदा न किसको डर रहता?
है किन्तु नहीं उसका भी अब कुछ ध्यान तुम्हें!
मानापमान का भी न रहा क्या ज्ञान तुम्हें?

रच सकते थे जो सृष्टि दूसरी निज बल से,
कर सकते थे भव-भस्म अंजली के जल से!
हा! द्वार द्वार फिरते हो अब तुम लोग वही,
है अहो! तुम्हारे योग्य कहो, क्या काम यही?

Hindi Premi

हे देव, तुम्हारी तनिक दृष्टि ही की गति से—
हो सकते थे कुछ अधिक रंक भी भूपति से।
हा! वही आज तुम—हैं जो मद में सने हुए—
उद्धत धनियों के चाटुकार हो बने हुए!

तुम हो कर भी कुशपाणि विश्व के शासक थे,
वर विक्रम-बुद्धि-विकास, त्रास-दुख नाशक थे।
करते थे प्रकट प्रभाव नित्य तुम नये नये,
बोलो तो अब वे कर्म्म तुम्हारे कहाँ गये?

श्रीपरशुराम, कृप, द्रोण-तुल्य थे वीर तुम्हीं,
गौतम, वशिष्ठ की भाँति विदित थे धीर तुम्हीं।
सुरपति भी जिन से रण-सहायता लेते थे,—
वे नृप सिंहासन तुम्हें देख तज देते थे ॥

हे याज्ञवल्क्य, व्यासादिक के कुल-वीर वरो,
भृगु, भरद्वाज, पाराशर मुनि के वंशधरो!
होकर सचेत जागो, निज कर्म्म प्रकाश करो,
मत नेत्र मूँद कर अपना आप विनाश करो ॥

संसार देख कर जिन्हें चकित होता मन में,
करता है शिक्षा ग्रहण आत्महित-साधन में।
वे ग्रन्थ तुम्हारे ही पुरखों के रचे हुए—
हैं अब भी अनुपम और नाश से बचे हुए ॥

तुम डूबे ब्रह्मानन्द नाम के थे रस में,
मन के समेत सम्पूर्ण इन्द्रियाँ थीं बस में।
पर हाय! देखकर तुम्हें प्राण रोते अब हैं,
वे बातें स्वप्न-समान जान पड़ती सब हैं!

तत्वज्ञ-वृन्द सब जिसे भक्ति-वश है कहता,
सहचर-सा वह सर्वेश तुम्हारा था रहता।
सोचो तो कैसे वृत्त तुम्हारे बढ़े रहे,
आध्यात्मिक उन्नति-शिखरों पर तुम चढ़े रहे ॥

Hindi Premi

दिखला दो अब फिर वही पूर्व का मान यहाँ,
फैला दो फिर वह ज्ञान और विज्ञान यहाँ।
सम्पूर्ण समाजों के प्रधान थे एक तुम्हीं,
सब विषयों का करते थे देव, विवेक तुम्हीं ॥

उन्नति के पीछे अवनति होती है जैसे,–
अवनति के पीछे उन्नति भी होती वैसे।
अतएव उठो, अब लेकर उन्नति के मग को;
बतला दो अपनी शक्ति शीघ्र सारे जग को ॥

यदि अब भी तुम कर्तव्य न पालोगे अपना,–
तो रह जावेगा पूर्वकाल निश्चय सपना।
हिन्दू-समाज के दोष तुम्हीं पर आते हैं,
सब बातों में अगुआ ही पूछे जाते हैं ॥

Hindi Premi

बैठे हैं

मत पूछो, कैसे बैठे हो? ख़ाली यहाँ खड़े बैठे हैं;
कोरी कुल की ऐंठ दिखाकर, घर में बने बड़े बैठे हैं।
बन्धु-बान्धवों से टुकड़ों पर श्वान समान लड़े बैठे हैं;
घर घर भीख माँगने को हम पत्थर हुए अड़े बैठे हैं!
पके बेर के पेड़ों जैसे बारम्बार झड़े बैठे हैं;
बनकर बिगड़ चुके हैं फिर भी सोते सदा पड़े बैठे हैं।
परवश विषयों के जालों में जड़ बन कर जकड़े बैठे हैं;
अपने भूत पूर्व गौरव पर फिर भी हम अकड़े बैठे हैं।
बने कूप मंडूक, निरुद्यम चौड़े में सकड़े बैठे हैं!
दो हाथों से एक दैव का पिण्ड मात्र पकड़े बैठे हैं !!

Hindi Premi

वृद्ध-विवाह

आज उदार बना है सूम।
बूढ़े भारत के घर देखो, मची ब्याह की धूम ॥
सुख-सामग्री जुटती है,
भंग भवानी घुटती है।
आतिशबाज़ी छुटती है,
फुलवारी भी लुटती है ॥
मीठी ज्योनारों के मारे—
यारों की दम घुटती है।
महफिल की सजीव शोभा भी रही राग में झूम!
आज उदार बना है सूम ॥
क्या रुपया, क्या धेली है,
बहू बड़ी अलबेली है।
सुख से खाई-खेली है,
सब कुछ वही अकेली है।
नाम सुनोगे? सुनो, मीत है,
कैसी नई नवेली है!
स्वर्ग-सौख्य भोगो वर-बाबा! शय्या पर मुँह चूम।
आज उदार बना है सूम ॥

Hindi Premi

चेतना

अरे भारत! उठ, आँखें खोल,
उड़कर यन्त्रों से, खगोल में घूम रहा भूगोल!

अवसर तेरे लिए खड़ा है,
फिर भी तू चुपचाप पड़ा है।
तेरा कर्मक्षेत्र बड़ा है,
पल पल है अनमोल।
अरे भारत! उठ, आँखें खोल ॥

बहुत हुआ, अब क्या होना है,
रहा सहा भी क्या खोना है?
तेरी मिट्टी में सोना है,
तू अपने को तोल।
अरे भारत! उठ, आँखें खोल ॥

दिखला कर भी अपनी माया,–
अब तक जो न जगत ने पाया;
देकर वही भाव मन भाया,
जीवन की जय बोल।
अरे भारत! उठ, आँखें खोल ॥

तेरी ऐसी वसुन्धरा है–
जिस पर स्वयं स्वर्ग उतरा है।
अब भी भावुक भाव भरा है,
उठे कर्म-कल्लोल।
अरे भारत उठ, आँखें खोल!

Hindi Premi

जगौनी

उठो हे भारत, हुआ प्रभात।
तजो यह तन्द्रा, जागो तात!

मिटी है कालनिशा इस वार,
हुआ है नवयुग का संचार।
उठो, खोलो अब अपना द्वार,
प्रतीक्षा करता है संसार।
हृदय में कुछ तो करो विचार,
पड़े हो कब से पैर पसार!
करो अब और न अपना घात।
उठो, हे भारत, हुआ प्रभात॥

जगत को देकर शिक्षा-दान,
बने हो आप स्वयं अज्ञान!
सुनाकर मधुर मुक्ति का गान,
हुए हो सहसा मूक-समान।
सँभालो अब भी अपना भान,
सहारा देंगे श्री भगवान।
बनेगी फिर भी बिगड़ी बात।
उठो, हे भारत, हुआ प्रभात॥

Hindi Premi

प्रेरणा

भारत! न अब देरी लगा।
तू जाग और हमें जगा ॥

धर्म्म-ध्वजा ऊँची उड़ा,
निज पूर्वजों का जी जुड़ा;
आलस्य से पल्ला छुड़ा,
मत आप अपने को ठगा।
भारत! न अब देरी लगा ॥

मत भूल झूठे गर्व में,
मिल प्रेम के प्रिय पर्व में;
सर्वेश को पा सर्व में;
संसार भर का हो सगा।
भारत! न अब देरी लगा ॥

सच्चे समय का साथ दे,
परिवर्तनों में हाथ दे;
साहाय्य त्रिभुवन नाथ दे,
तू आप को प्रभु में पगा।
भारत! न अब देरी लगा ॥

प्राचीन भावासक्त हो,
सु-नवीन से न विरक्त हो;
तू भक्त किन्तु सशक्त हो,
जय लाभ कर, भय को भगा।
भारत! न अब देरी लगा ॥

Hindi Premi

स्वप्नोत्थित

सोया मैं, सदियों तक सोया!
ऐसा सोया हूँ कि आप ही मैं अपने से खोया!
किन्तु नींद जो मुझ को आई,
वह कुछ भी विश्रान्ति न लाई।
सौ स्वप्नों ने धूम मचाई,
अपनी अपनी छटा दिखाई।
चिन्ता, शोक विषाद और भय सब ने घोर घटा छाई।
और रुधिर-धारा बरसाई ॥
बहकर, उसने मुझे बहाया और दबोच डुबोया!
सोया मैं, सदियों तक सोया!
उन स्वप्नों का ऐसा क्रम था—
बस, प्रत्यक्ष भाव का भ्रम था।
लूट-मार से नाकों दम था,
न मैं था न मेरा आश्रम था।
धरा धसकती, नभ फटता था, धुआँधार दुस्तर तम था।
और दस्यु दल अति दुर्दम था ॥
अब भी वही प्रहार निरन्तर सहता हूँ मैं गोया!
सोया मैं सदियों तक सोया!
पर अब आँख खुली है मेरी,
और दृष्टि भी मैंने फेरी।
फिर भी है सब ओर अँधेरी,
प्रभा प्रकाशित हो अब तेरी।
देखूँ मैं क्या गया, रहा क्या, न कर दयामय! देरी।
बजने दे फिर जीवन-भेरी ॥

Hindi Premi

किसी प्रकार भार यह मैंने जीवित रह कर ढोया।
सोया मैं, सदियों तक सोया!
तेरी पुण्य-पताका फहरे,
मुक्त मुक्ति-पट उसका लहरे।
आँधी उठे, घटा भी घहरे,
मेरी दृष्टि उसी पर ठहरे।
लाख लाख कण्टक हों पथ में, चलूँ जिधर वह छहरे।
भय विघ्नों से हृदय न हहरे॥
पद पद पर उसका फल भोगे, जो जिसने हो बोया।
सोया मैं, सदियों तक सोया!

Hindi Premi

अनिश्चय

विश्व, तुम्हारा भारत हूँ मैं?
हूँ या था, चिन्ता-रत हूँ मैं!
मैं ही हूँ वह जन-मनभाया?
आर्य्य जाति ने जिसे बसाया
नाम 'भरत' से जिसने पाया?
सचमुच ही क्या भारत हूँ मैं?
हूँ या था, चिन्ता-रत हूँ मैं!
वही भीष्म-सू का तो जल है,
जो कि भगीरथ-तप का फल है।
पर क्या मुझ में शोणित-बल है?
नहीं, नहीं, ऐं भारत हूँ मैं?
हूँ या था, चिन्ता-रत हूँ मैं!
अभी हिमालय तो सुस्थिर है,
वह मेरा ही ऊँचा सिर है।
किधर तपोवन-पुण्याजिर है?
कैसे कहूँ कि भारत हूँ मैं?
हूँ या था, चिन्ता-रत हूँ मैं!
शेष सप्त पुरियाँ हैं, जब भी;
इन्द्रप्रस्थ, पुष्पपुर अब भी।
है क्या नहीं, न जाने, तब भी!
कोई कहे कि भारत हूँ मैं।
हूँ या था, चिन्ता-रत हूँ मैं!
त्याग आज भी परम धर्म्म है,
आत्म भाव ही मुक्ति-मर्म्म है।
किन्तु योग मय कहाँ कर्म्म है?

Hindi Premi

किससे पूछूँ, भारत हूँ मैं
हूँ या था, चिन्ता-रत हूँ मैं!

क्या यह साम-गान होता है?
सुनूँ, अरे, अवसर रोता है।
कहता है—'भारत सोता है!'
सुप्त कि जाग्रत भारत हूँ मैं?
हूँ या था, चिन्ता-रत हूँ मैं!

धन्य किया है मुझे राम ने,
गण्य किया है घनश्याम ने।
काम बिगाड़ा किन्तु काम ने,
अब भी क्या वह भारत हूँ मैं?
हूँ या था, चिन्ता-रत हूँ मैं!

वह बोधिद्रुम गया, कहाँ है?
महावीर की दया कहाँ है?
जो कुछ है, सब नया यहाँ है;
वही पुरातन भारत हूँ मैं?
हूँ या था, चिन्ता-रत हूँ मैं!

क्या मैं सोता ही था? कब से?
सदियाँ बीत गईं, क्या जब से?
स्वप्न देखता था, हा! तब से?
फिर भी जीवित भारत हूँ मैं?
हूँ या था, चिन्ता-रत हूँ मैं!

धरती, हिलकर नींद भगा दे,
वज्रनाद से व्योम जगा दे!
देव, और कुछ लाग लगा दे,
निश्चय करूँ कि भारत हूँ मैं।
हूँ या था, चिन्ता-रत हूँ मैं!

Hindi Premi

चेतावनी

सौ सौ युगों की साधना भारत, न सो जावे कहीं।
तेरी अमृत आराधना आरत न हो जावे कहीं ॥
वह तीव्र तप की धीरता, बल-वीर्य्य की वर वीरता,
धन, जन मयी गम्भीरता, तुझको न रो जावे कहीं ॥
वह दुःख की दमनीयता, चिरकीर्ति की कमनीयता,
भय शोच की शमनीयता, सहसा न खो जावे कहीं ॥
तेरी प्रसिद्ध पुनीतता; वह शीलपूर्ण विनीतता,
पर बुद्धि की विपरीतता, अब विष न बो जावे कहीं ॥
वह उच्चता आचार की, विश्वस्तता व्यवहार की,
अनुरक्तता उपकार की, तेरी न धो जावे कहीं ॥
तेजस्विता वह त्याग की, उन्मुक्तता अनुराग की,
सुख-सम्पदा भव-भाग की, लुट कर न ढो जावे कहीं ॥
फिर सिद्ध हों शत सिद्धियाँ, लोटें पदों पर ऋद्धियाँ,
फिर हों यहाँ वे वृद्धियाँ, तू जाग जो जावे कहीं ॥

Hindi Premi

काल की चाल

भगवान जानें, काल की कैसी निराली चाल है!
हे काल! तू ही तो बता, कैसा हमारा हाल है?

है भेद ऐसा कौन जो संसार में तुझसे छिपा?
फैला अभी तक हाय! हम पर क्रूर, तेरा जाल है!
उत्कर्ष कह कर तू बता अपकर्ष भारतवर्ष का,
ऐं क्या कहा? जो व्योम में था जा रहा पाताल है!
आकर अमर नररूप में करते विहार रहे जहाँ,
देखो कि जीना भी वहाँ अब हो रहा जंजाल है!
जिसने सिखाई थीं जगत को सर्व विद्याएँ कभी,
वह निज हिताहित-बोध तक में बाल से भी बाल है!
सब सिद्धियों का धाम, जो संसार का बस, सार था;
दारिद्र्य का बाहुल्य उसमें बढ़ रहा विकराल है!
उद्योग, उद्यम, धैर्य्य, साहस, सर्व गुण जिसमें रहे;
'दुर्भाग्य' कहकर पीटता वह आज अपना भाल है!
निज कर्म्म फल करता रहा जो भगवदर्पण भक्ति से,
स्वार्थानुरक्त तथापि अब वह दीखता कंगाल है!
सिद्धान्त-'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' प्रसिद्ध रहा जहाँ,
हा! बन्धु शोणित से वहाँ अब बन्धु का कर लाल है।
हा! क्या कहें हम कौन हैं, जो हों कभी, अब कुछ नहीं;
अब तो जहाँ हम देखते हैं, दीख पड़ता काल है!

Hindi Premi

आत्म-स्मृति

किस लिए भारत, भला यह दीनता है?
विभवजन्मा, क्यों भवोदासीनता है?

कर्म्मयोगी, किस लिए तू दुःख भोगी?
लक्ष्य तेरा मुक्ति है, स्वाधीनता है ॥
क्यों भला जीवन समर में पैर पीछे?
आत्मबल रहते उचित क्या हीनता है?
आपको भूला हुआ है आज तू क्यों?
ज्ञात तेरी आत्मचिन्तालीनता है ॥
दिनकरोदय की दिशा का देश है तू,
क्यों निराशा-पूर्ण मोह मलीनता है?
आंजनेय-समान निज बल ध्यान में ला,
सहज जिससे व्योम की उड्डीनता है ॥

Hindi Premi

होली

जो कुछ होनी थी, सब होली!
धूल उड़ी या रंग उड़ा है,
हाथ रही अब कोरी झोली।
आँखों में सरसों फूली है,
सजी टेसुओं की है टोली।
पीली पड़ी अपत, भारत-भू,
फिर भी नहीं तनिक तू डोली!

Hindi Premi

श्रीरामनवमी

है अद्वितीय, अपूर्व, अनुपम दिन अलौकिक आज का,
सब ओर सुखमय दृश्य है शुभ सत्व गुण के साज का।
भू-भार-हारक ईश के अवतार का अवसर मिला,
ऋतुराज में क्या ही मनोहर पुण्य कुसुमाकर खिला ॥

श्रीरामनवमी नामकी है आज पावन तिथि वही,
जिस दिन स्वयं सर्वेश हरि ने स्वर्गमय की थी मही।
अवतीर्ण होकर आज ही रघुराज ने नरलोक में,
सन्मार्ग था दर्शित किया निज रूप के आलोक में ॥

उपदेश देने को हमें प्रभु ने मनुज-लीला रची,
शिक्षा न रामचरित्र से है एक भी बाहर बची।
करके कृपा संकट मिटाया सुख सभी हमको दिये,
क्या क्या नहीं करता पिता सन्तान के हित के लिए?

किस भाँति करना चाहिए वह लोक-रंजन सर्वदा,
किस भाँति रखना चाहिए ध्रुव धर्म-मर्यादा सदा।
कर्तव्य कहते हैं किसे, है शील की सीमा कहाँ,
आती सहज ही ध्यान में हैं आज ये बातें यहाँ ॥

मुनि-यज्ञ-रक्षा की तथा अबला अहल्या तार दी,
ब्याही विदेह-सुता, पिता पर राज्यलक्ष्मी वार दी।
मारे निशाचर-गण अहा! कण भी न छोड़ा पाप का,
हे राम! हम भूलें कभी वह राम-राज्य न आपका ॥

Hindi Premi

फिर एक बार दयानिधे! निज दिव्य दर्शन दीजिए,
इस रामनवमी नाम को भगवान! सार्थक कीजिए।
फिर दुःख-पारावार से संसार का उद्धार हो,
दुष्कर्म का संहार हो, सद्धर्म का विस्तार हो ॥

जिन कारणों से आप का अवतार होता है हरे!
वे सब उपस्थित हो चुके अब भूरि-भीषणताभरे।
प्राबल्य पापों का बड़ा है, पुण्य पंगु हुआ पड़ा,
दुष्काल दानव-सा अड़ा है, रोग राक्षस-सा खड़ा ॥

अति तीक्ष्ण तापों से हमारे प्राण मानो जल रहे,
दुख-पूर्ण आँखों से अहो! अविराम आँसू चल रहे।
विकराल जीवन भी हमें अब काल जैसा हो रहा,
विश्वेश! देखो तो हमारा हाल कैसा हो रहा!!!

दुख, शोक, पापाचारता के नाट्य हम दिखला चुके,
आँसू न जिनको देखकर सहृदय जनों के हैं रुके।
हे लोक-नाटक-सूत्रधर! अब और कुछ आज्ञा मिले,
लाखों करोड़ों खेल हैं मन की कली जिनसे खिले ॥

Hindi Premi

जन्माष्टमी

गगन में घुमड़े हैं घन घोर;
क्या अन्धेरे अँधेरे के मिष छाया है सब ओर!
काली अर्द्ध यामिनी छाई,
आली भीति-भामिनी आई;
उसे दुरन्त दामिनी लाई,
चौंक उठे हैं चोर।
वन्दी वे दम्पति बेचारे
बैठे हैं अब भी मन मारे;
अब तो हे संसार-सहारे!
करो कृपा की कोर।
राजा जो सबका रक्षक है,
बना आज उलटा भक्षक है;
मार चुका शिशु तक तक्षक है
कंस नृशंस कठार।
सहसा बन्धन खुल जाते हैं,
वन्दी प्रभु-दर्शन पाते हैं;
मुक्ति मार्ग वे दिखलाते हैं,
करके विश्व विभार।

Hindi Premi

विजयदशमी

जानकी जीवन, विजय दशमी तुम्हारी आज है,
दीख पड़ता देश में कुछ दूसरा ही साज है।
राघवेन्द्र! हमें तुम्हारा आज भी कुछ ज्ञान है,
क्या तुम्हें भी अब कभी आता हमारा ध्यान है?

वह शुभस्मृति आज भी मन को बनाती है हरा,
देव! तुम को आज भी भूली नहीं है यह धरा।
स्वच्छ जल रखती तथा उत्पन्न करती अन्न है,
दीन भी कुछ भेट लेकर दीखती सम्पन्न है ॥

व्योम को भी याद है प्रभुवर तुम्हारी वह प्रभा!
कीर्ति करने बैठती है चन्द्र-तारों की सभा।
भानु भी नव-दीप्ति से करता प्रताप प्रकाश है,
जगमगा उठता स्वयं जल, थल तथा आकाश है ॥

दुःख में ही हा! तुम्हारा ध्यान आया है हमें,
जान पड़ता किन्तु अब तुमने भुलाया है हमें।
सदय होकर भी सदा तुमने विभो! यह क्या किया,
कठिन बनकर निज जनों को इस प्रकार भुला दिया ॥

है हमारी क्या दशा सुध भी न ली तुमने हरे?
और देखा तक नहीं जन जी रहे हैं या मरे।
बन सकी हम से न कुछ भी किन्तु तुम से क्या बनी?
वचन देकर ही रहे, हो बात के ऐसे धनी!

Hindi Premi

आप आने को कहा था, किन्तु तुम आये कहाँ?
प्रश्न है जीवन-मरण का हो चुका प्रकटित यहाँ।
क्या तुम्हारे आगमन का समय अब भी दूर है?
हाय तब तो देश का दुर्भाग्य ही भरपूर है!

आग लगने पर उचित है क्या प्रतीक्षा वृष्टि की,
यह धरा अधिकारिणी है पूर्ण करुणा दृष्टि की।
नाथ इसकी ओर देखो और तुम रक्खो इसे,
देर करने पर बताओ फिर बचाओगे किसे?

बस तुम्हारे ही भरोसे आज भी यह जी रही,
पाप पीड़ित ताप से चुपचाप आँसू पी रही।
ज्ञान, गौरव, मान, धन, गुण, शील सब कुछ खो गया,
अन्त होना शेष है बस और सब कुछ हो गया ॥

यह दशा है इस तुम्हारी कर्म्मलीला भूमि की,
हाय! कैसी गति हुई इस धर्म्म-शीला भूमि की।
जा घिरी सौभाग्य-सीता दैन्य-सागर-पार है,
राम-रावण-वध बिना सम्भव कहाँ उद्धार है?

शक्ति दो भगवन् हमें कर्तव्य का पालन करें,
मनुज होकर हम न परवश पशु-समान जियें मरें।
विदित विजय-स्मृति तुम्हारी यह महामंगलमयी,
जटिल जीवन-युद्ध में कर दे हमें सत्वर जयी ॥

Hindi Premi

पर्वमयी

भारतमाता, वृथा विलखती,
लख कर भी अपने को अब तू कभी नहीं लखती।
तेरी एक एक तिथि सौ सौ पूर्वस्मृतियाँ रखती,
कभी न फूट फैलती यदि तू उनकी ओर निरखती।
यह राखी, विजया, दीवाली वह होली वह अखती,
पर्वमयी भी क्यों न हाय! तू प्रेम-सुधा रस चखती॥

Hindi Premi

नैराश्य-निवारण

क्यों तुम यों हताश होते हो?
भारत हुआ श्मशान हाय! यह कहकर क्यों रोते हो?

तुम में इतना ज्ञान बना है,
उर में उसका ध्यान बना है,
यदि वह महाश्मशान बना है,
तो भी शिव का स्थान बना है!

शिव हैं जहाँ शक्ति भी होंगी, धीरज क्यों खोते हो?
क्यों तुम यों हताश होते हो?

उसमें शत सृतियाँ पाओगे,
पुरखों की स्मृतियाँ पाओगे,
वीरों की कृतियाँ पाओगे,
धीरों की धृतियाँ पाओगे,

उठो, सींचते हो जिसको क्यों उसे नहीं बोते हो?
क्यों तुम यों हताश होते हो?

Hindi Premi

भाषा का सन्देश

भाषा का सन्देश सुनो, हे
भारत! कभी हताश न हो।
बात क्या कि फिर अरुणोदय से
उज्ज्वल भाग्याकाश न हो ॥

दिन खोटे क्यों न हों तुम्हारे किन्तु आप तुम खरे रहो,
साथ छोड़ दे क्यों न सफलता किन्तु धैर्य्य तुम धरे रहो।
खाली हाथ हुए, हो जाओ, पर साहस से भरे रहो,
हरि के कर्म्मक्षेत्र! हरे हो और सर्वदा हरे रहो।
बात क्या कि फिर देश तुम्हारा
पूरा पुनर्विकाश न हो।
भाषा का सन्देश सुनो, हे
भारत! कभी हताश न हो ॥

मार्ग सूझता नहीं, न सूझे, किन्तु अटल तुम अड़े रहो,
आगे बढ़ना कठिन हुआ तो हटो न पीछे, खड़े रहो।
विविध बन्धनों में जकड़े हो, रहो, किन्तु तुम कड़े रहो,
जी छोटा मत करो, बड़ों के वंशज हो तुम बड़े रहो।
बात क्या कि फिर यहाँ तुम्हारा
पावन पूर्व प्रकाश न हो।
भाषा का सन्देश सुनो, हे
भारत! कभी हताश न हो ॥

तुम में हो या न हो शेष कुछ पर हो तो तुम आर्य्य अभी,
सूख गया तनु तक तो सूखे, रक्त-मांस हो या कि न भी।

Hindi Premi

अरे, हड्डियाँ तो शरीर में बनी हुई हैं वही अभी–
जिनसे विश्रुत वज्र बना था, सिद्ध हुए सुर-कार्य्य सभी!
बात क्या कि फिर देश तुम्हारे
पाप पतन का नाश न हो।
भाषा का सन्देश सुनो, हे
भारत! कभी निराश न हो॥

नहीं रहे अधिकार तुम्हारे, न रहें, पर वे मिटे नहीं,
जन्म-सिद्ध अधिकार किसी के मिट सकते हैं भला कहीं?
भूमि वहीं है, जहाँ निरन्तर सभी सिद्धियाँ सिद्ध रहीं,
जगत जानता है कि हुआ था आत्मबोध उत्पन्न वहीं॥
बात क्या कि फिर छिन्न-भिन्न यह
पराधीनता-पाश न हो।
भाषा का सन्देश सुनो, हे
भारत! कभी निराश न हो॥

Hindi Premi

अपनी भाषा

करो अपनी भाषा पर प्यार।
जिसके बिना मूक रहते तुम, रुकते सब व्यवहार ॥

जिसमें पुत्र पिता कहता है, पत्नी प्राणाधार,
और प्रकट करते हो जिसमें तुम निज निखिल विचार।
बढ़ाओ बस उसका विस्तार।
करो अपनी भाषा पर प्यार ॥

भाषा बिना व्यर्थ ही जाता ईश्वरीय भी ज्ञान,
सब दानों से बहुत बड़ा है ईश्वर का यह दान।
असंख्यक हैं इसके उपकार।
करो अपनी भाषा पर प्यार ॥

यही पूर्वजों का देती है तुमको ज्ञान-प्रसाद,
और तुम्हारा भी भविष्य को देगी शुभ संवाद।
बनाओ इसे गले का हार।
करो अपनी भाषा पर प्यार ॥

Hindi Premi

मेरी भाषा

मेरी भाषा में तोते भी राम राम जब कहते हैं,
मेरे रोम रोम में मानो सुधा-स्रोत तब बहते हैं।
सब कुछ छूट जाय मैं अपनी भाषा कभी न छोड़ूँगा,
वह मेरी माता है उससे नाता कैसे तोड़ूँगा ॥
कहीं अकेला भी हूँगा मैं तो भी सोच न लाऊँगा,
अपनी भाषा में अपनों के गीत वहाँ भी गाऊँगा।
मुझे एक संगिनी वहाँ भी अनायास मिल जावेगी,
मेरा साथ प्रतिध्वनि देगी कली कली खिल जावेगी ॥
मेरा दुर्लभ देश आज यदि अवनति से आक्रान्त हुआ,
अन्धकार में मार्ग भूलकर भटक रहा है भ्रान्त हुआ।
तो भी भय की बात नहीं है भाषा पार लगावेगी,
अपने मधुर स्निग्ध, नाद से उन्नत भाव जगावेगी ॥

Hindi Premi

महत्ता

धरती सब हमने छानी;
लेकर अपनी पवन पिया है देश देश का पानी।
कह कर अभी नई दुनिया जो है औरों ने जानी;
सप्रमाण है सिद्ध हमारी बस्ती वही पुरानी।
पुरातत्व में प्राण हमीं हैं, बतलाते हैं ज्ञानी;
कहो, हमारी पुण्य-पताका कहाँ नहीं फहरानी?
किसी ओर भी रुके नहीं हम जब चलने की ठानी;
जल को भी थल बना चुके हैं, अब भी बची निशानी।
प्रथम सूर्य के साथ हमारी प्रभा सभी ने मानी;
प्राची के प्रकाश में ही तो सारी सृष्टि समानी।
जो ऊँची ऊँची इमारतें दीख रहीं लासानी,
आर्य्य-कला की समाधियाँ-सी हैं नवीनता-सानी।
आज भले ही वे सब बातें समझी जाय कहानी;
होकर ऋणी हमारे ही तो धनी हुए यूनानी।
खुदते हुए खँडहरों में से गूँज रही यह वाणी;
भारतजननी स्वयं सिद्ध है सब देशों की रानी ॥

Hindi Premi

खुला द्वार

आजा हे संसार! खुला है सोने के भारत का द्वार
प्रहरी नहीं, किन्तु साक्षी है अटल हिमालय उच्च उदार।
किसका भय हो हमें, लोभ ही नहीं किसी का किसी प्रकार,
जो जिसको लेना हो, ले ले, अक्षय है अपना भण्डार ॥
धन के लिए यहाँ जो आया उस लोलुप का है धिक्कार,
जीवन की शिक्षा देकर हम करते हैं सुमुक्ति-संचार।
राम, कृष्ण, जिन, बुद्ध आदि के रखते हैं आदर्श अपार,
रज भी है इस पुण्य भूमि की सबके माथे का श्रृंगार ॥

Hindi Premi

प्रश्न

सिर क्या सगर्व फिर हम ऊँचा न कर सकेंगे?
जो घाव हो गये हैं क्या अब न भर सकेंगे?
इस भूमि पर कि जिस पर सुर भी कृतार्थ होते,
बनकर मनुज न फिर क्या अब हम विचर सकेंगे?
वह त्याग जो प्रतिष्ठित था उच्च आत्म पद पर
खोकर उसे अहो! क्या अब हम न धर सकेंगे?
वह वीरता कि थी जो गम्भीर धीरता में
वर के समान हम क्या अब फिर न वर सकेंगे?
उपकार जो कि पर को अपना बना चुका था
करके स्वदेश का क्या दुख हम न हर सकेंगे?
उस मार्ग से कि जिससे पूर्वज गये हमारे
जाकर न मृत्यु से क्या अब हम न डर सकेंगे?
भाण्डार शील के जो रहते सदा भरे थे
भरकर भवाब्धि को क्या अब हम न तर सकेंगे?
पूछें किसे दयामय, तू ही हमें बता दे
फिर आपको अमर कर क्या हम न मर सकेंगे?

Hindi Premi

प्रतिज्ञा

न अपनी हीनता को अब सहेंगे हम।
हृदय की बात ही मुँह से कहेंगे हम ॥

प्रकट होगी न क्यों आत्माभिलाषा है,
हमारी मातृभाषा राष्ट्र भाषा है।
समय के साथ उन्नति की शुभाषा है,
बने भागीरथी जो कर्मनाशा है।
बहक कर अब न विषयों में बहेंगे हम।
हृदय की बात ही मुँह से कहेंगे हम ॥

हमीं उस भाव-सागर को हिलोड़ेंगे,
करोड़ों रत्न पाकर भी बिलोड़ेंगे।
हलाहल देखकर भी मुँह न मोड़ेंगे,
पुरुष होकर कभी पौरुष न छोड़ेंगे।
अमृत पीकर अमर होकर रहेंगे हम।
हृदय की बात ही मुँह से कहेंगे हम ॥

Hindi Premi

आर्य्य-भार्य्या

तू धन्य आर्य्य-भार्य्ये, तू प्रेम-राज्य-रानी!
प्रत्येक धाम तेरी है रम्य राजधानी।
लक्ष्मी स्वरूपिणी तू सुख है सदैव देती;
बनता अहा! अमृत है तेरा पुनीत पानी ॥
प्रिय की अधीनता वह परतन्त्रता नहीं है;
परिणाम में कि जिसके सन्मुक्ति है समानी।
उत्सर्ग आपको ही तू आप कर चुकी है;
त्रैलोक्य में नहीं है तेरे समान दानी ॥
हे देवि, घर हमारे मन्दिर बने तुझी से;
सब दुःख दूर करती सन्तोष पूर्ण वाणी।
शुचि-अग्निदेव साक्षी तेरे सतीत्व का है;
इतिहास कह रहा है तेरी करुण कहानी ॥
ममतामयी, कहीं भी समता मिली न तेरी;
भारत हुआ तुझी से भूस्वर्ग, लोकमानी।
अर्द्धांगिनी बनाते कैसे तुझे न हिन्दू?
शिव शक्ति-हीन शव हों जो छोड़ दे भवानी ॥

Hindi Premi

मातृ-मंगल

हे माताओ, आओ,
उठकर हमें उठाओ ॥

हमने तुम्हें बिसार दिया हो, हमको तुम न बिसारो माँ!
अवनत अपनी आर्य्य जाति को अब तुम उठो, उबारो माँ!

सुख देकर सुख पाओ।
हे माताओ, आओ ॥

हम मरते हैं स्तन्य दान कर हमें बचाओ, क्षमता दो;
देखें कौन घृणा करता है, हमको तुम निज ममता दो।
करुणा स्रोत बहाओ।
हे माताओ, आओ ॥

सीता का सतीत्व हो तुम में, सावित्री की शक्ति रहे;
सरस्वती की कला-कुशलता और उमा की भक्ति रहे।
गौरव के गुण गाओ।
हे माताओ, आओ ॥

घर की लक्ष्मी तुम्ही हमारी, लालन पालन करो, उठो,
पुण्य भूमि भारत के सारे दुःख, शोक तुम हरो, उठो।
उसे न और भुलाओ।
हे माताओ, आओ ॥

हम हताश हो चुके हार कर, बिदुला बनकर शिक्षा दो;

Hindi Premi

नीच समझते हैं सब हमको उच्च भाव की भिक्षा दो।
चलना हमें सिखाओ।
हे माताओ, आओ ॥

हम रोगी हैं अमृतकरों से हमें पथ्य का दान करो;
भ्रम में पड़कर भटक रहे हैं, हमें तथ्य का दान करो।
सच्चा मार्ग दिखाओ।
हे माताओ, आओ ॥

दया, दान दाक्षिण्य तुम्हीं से हो सकते हैं प्राप्त हमें;
आत्मत्याग, अनुराग तुम्हीं में मिलते हैं बस व्याप्त हमें।
जय की ज्योति जगाओ।
हे माताओ, आओ ॥

स्वजनों की सेवा की हमको रीति बता दो, श्रान्त न हो;
पुण्यलोक पूर्वजों की कुलनीति बता दो, भ्रान्त न हो।
अपने गुण अपनाओ।
हे माताओ, आओ ॥

भारत की लज्जा, सुशीलता दोनों की हो मूर्ति तुम्हीं;
इस जीवन की स्फूर्त्ति तुम्हीं हो, सुख, सम्पद की पूर्त्ति तुम्हीं।
अखिल अभाव मिटाओ।
हे माताओ, आओ ॥

बीती रात, प्रभात हुआ है, बस, अब हमें जगा दो तुम;
भीति भगा दो प्रीति पगा दो, बेड़ा पार लगा दो, तुम।
हमें सपूत बनाओ।
हे माताओ, आओ ॥

Hindi Premi

भारत-सन्तान

जय भारत, जिसकी कीर्ति
सुरों ने गाई।
हम हैं भारत-सन्तान–
करोड़ों भाई ॥

हाँ, गूँज उठे आकाश अनिल के द्वारा;
अगणित कण्ठों से बहे एक स्वर-धारा।
कह दो, पुकार कर, सुने चराचर सारा;
है अब तक भी अस्तित्व अखण्ड हमारा ॥
अब तक भी है कुल-कीर्ति
हमारी छाई।
हम हैं भारत-सन्तान–
करोड़ों भाई ॥

घन घोषित कर दे, उक्ति भूमि भारत है;
कह दे समीर यह युक्तिभूमि भारत है।
ध्वनि उठे धरा से, भुक्ति भूमि भारत है;
गूँजे अनन्त नभ, मुक्ति भूमि भारत है ॥
देवों को भी यह दिव्य
देश मुददायी।
हम हैं भारत-सन्तान–
करोड़ों भाई ॥

अच्युत ने हमको आत्म भाव दिखलाया;
श्री राम-कृष्ण ने धर्म्म-कर्म्म सिखलाया।
जिन और बुद्ध ने दया-प्रेम दरसाया;
क्यों न हो हमें इस मातृभूमि की माया?

Hindi Premi

भगवत् को भी यह पुण्य-
भूमि मन भाई।
हम हैं भारत-सन्तान-
करोड़ों भाई ॥

बस, इसी दिशा से प्रथम प्रकाश हुआ था;
शुभ साम-गान से मोह-विनाश हुआ था।
पृथ्वी तल का पशुभाव हताश हुआ था;
मानव-कुल में मनुजत्व विकास हुआ था ॥
हमसे जीवन की ज्योति
जगत ने पाई।
हम हैं भारत-सन्तान-
करोड़ों भाई ॥

उत्पन्न मुक्ति भी हुई अहा! भारत में;
मनु ने स्वतन्त्र को सुखी कहा भारत में।
अधिकार-गर्व यों अटल रहा भारत में;
भाई भाई तक लड़े महाभारत में ॥
शर-शय्या पर भी राज-
नीति समझाई।
हम हैं भारत-सन्तान—
करोड़ों भाई ॥

सब बातों में हम रहे सदा आगे हैं;
विघ्नों के भय से कहीं नहीं भागे हैं।
सदियों तक सोये, किन्तु पुनः जागे हैं;
अब भी हम ने निज भाव नहीं त्यागे हैं ॥
फिर बारी हे संसार!
हमारी आई।
हम हैं भारत-सन्तान—
करोड़ों भाई ॥

Hindi Premi

काले बादल

क्या कहा?—काले?—हाँ, हम श्वेत नहीं,
किन्तु क्या निर्मल-नीर-निकेत नहीं?
बरसते हैं क्या साम्य समेत नहीं?
हरे रखते हैं क्या सब खेत नहीं?

हमें तुम भूल न जाओ, पहचानो;
आँख रखते हो तो अंजन जानो ॥

सफल करते हैं पद-विन्यास हमीं,
बुझाते हैं पृथ्वी की प्यास हमीं।
उगाते हैं हे पशुओ! घास हमीं,
दूर रहकर भी रहते पास हमीं।

श्वेत वक-वृन्द हमीं में उड़ता है,
जगत का जलता जी भी जुड़ता है ॥

सरस हैं, पर हम शक्ति विहीन नहीं,
आर्द्र होकर भी क्या घन पीन नहीं?
देख लो दाता हैं हम, दीन नहीं;
समय के साथी किन्तु अधीन नहीं।

भरी है हम में, नस नस में बिजली,
किन्तु हम रखते हैं बस में बिजली ॥

Hindi Premi

फुहारें फूलों सी बरसादें हम,
और सूखे को भी सरसादें हम।
खिंचें यदि तो दुकाल दरसादें हम,
बूँद के लिए तुम्हें तरसादें हम।

बनें जल भी थल जो हम तन जावें,
बना दें तो थल भी जल बन जावें ॥

विपुल ब्रह्माण्ड हमीं तो सेते हैं,
विश्व का विस्तृत बेड़ा खेते हैं।
हृदय में रवि-शशि को रख लेते हैं,
जुगुनुओं तक को अवसर देते हैं।

वायु-वाहन पर व्योम-विहारी हैं,
धनुष-मिष सब रंगों के धारी हैं ॥

घेर सकता है कौन, स्वयं घिरते;
फिरा सकता है कौन, स्वयं फिरते।
झिरा सकता है कौन, स्वयं झिरते,
गरज सुनकर क्या गर्भ नहीं गिरते?

प्रलय कर दें, यदि भृकुटि फिरा दें हम;
उपल बरसादें, गाज गिरादें हम ॥

समझते हैं हम रोग श्वेतपन को,
रिक्त ही पाओगे तुम सितघन को।
क्या करें लेकर उस उज्ज्वल तन को—
न पावें जिसमें हम शुचि जीवन को?

गर्व है काले होने का हमको,
मिला घनश्याम नाम पुरुषोत्तम को ॥

न होती छटा हमारी जो काली,
कहाँ से आती तो यह हरयाली?

Hindi Premi

न सजती सौ सौ अन्नों से थाली,
न रहता कोई राग रंगशाली।

करें यदि हम करुणा कर वृष्टि नहीं,
जान रक्खो, तो तुम क्या, सृष्टि नहीं॥

तुम्हें जब मृगतृष्णा तल छलते हैं,
जलाशय मानों आप उबलते हैं।
शिलाएँ फटती हैं, वन जलते हैं;
हमीं तब रक्षा करने चलते हैं।

किसी का नीर नहीं जो पीते हैं,
हमीं से वे चातक भी जीते हैं॥

हमीं तो घर की याद दिलाते हैं,
और बिछुड़ों को हमीं मिलाते हैं,
महा मुरझे भी सुमन खिलाते हैं,
स्वजीवन देकर तुम्हें जिलाते हैं।

बरसते हैं अपने को आप हमीं,
शान्त करते हैं भव-सन्ताप हमीं॥

चलें तो अन्ध आँधियाँ चला करें,
जलें तो आक, जवा से जला करें,
सु-फल पुण्य-क्षेत्रों में फला करें।
हमारी बूँदें सब का भला करें।

व्यर्थ के झगड़ों की मत सृष्टि करो,
इधर देखो, कुछ ऊँची दृष्टि करो॥

Hindi Premi

विजय-भेरी

जीवन-रण में फिर बजे विजय की भेरी।
भारत, फिर भी हो सफल साधना तेरी ॥
आत्मा का अक्षय भाव जगाया तू ने,
इस भाँति मृत्यु-भय मार भगाया तू ने।
है पुनर्जन्म का पता लगाया तू ने,
किस ज्ञेय तत्त्व का गीत न गाया तू ने।
चिरकाल चित्त से रही चेतना चेरी।
भारत, फिर भी हो सफल साधना तेरी ॥
तू ने अनेक में एक भाव उपजाया,
सीमा में रहकर भी अ-सीम को पाया।
उस परा प्रकृति से पुरुष-मिलाप कराया,
पाकर यों परमानन्द मनाई माया।
पाती है तुझ में प्रकृति पूर्णता मेरी।
भारत, फिर भी हो सफल साधना तेरी ॥
शक, हूण, यवन इत्यादि कहाँ हैं अब वे,
आये जो तुझ में कौन कहे, कब कब वे।
तू मिला न उनमें, मिले तुझी में सब वे,
रख सके तुझे, दे गये आप को जब वे।
अपनाया सब को, पीठ न तू ने फेरी।
भारत, फिर भी हो सफल साधना तेरी ॥
हे देश, धर्म्म के लिए धर्म्म है तेरा;
फल ईश्वर का है और कर्म्म है तेरा।
चारित्र्य चर्म्म, विश्वास वर्म्म है तेरा,
इस जीवन में ही मुक्ति मर्म्म है तेरा।

Hindi Premi

तेरी आभा से मिटी अपार अँधेरी।
भारत, फिर भी हो सफल साधना तेरी ॥

गिरि, मन्दिर, उपवन, विपिन, तपोवन तुझ में;
द्रुम, गुल्म, लता, फल, फूल, धान्य, धन तुझ में।
निर्झर, नद, नदियाँ, सिन्धु, सुशोभन तुझ में;
स्वर्णातप, सित चन्द्रिका, श्याम घन तुझ में।
तेरी धरती में धातु-रत्न की ढेरी।
भारत, फिर भी हो सफल साधना तेरी ॥

Hindi Premi

भारत की जय

न हमको कोई भी भय हो।
दयामय, भारत की जय हो ॥

अलसता पर तन की जय हो,
चपलता पर मन की जय हो,
कृपणता पर धन की जय हो,
मरण पर जीवन की जय हो,
पवित्रात्मा का प्रत्यय हो।
दयामय, भारत की जय हो ॥

हमारी असि न रुधिर-रत हो,
न कोई कभी हताहत हो,
शक्ति से शक्ति न अवनत हो,
भक्तिवश जगत एकमत हो,
वैरियों का वैर-क्षय हो।
दयामय, भारत की जय हो ॥

भीति पर प्रीति विजय पावे,
रीति पर नीति विजय पावे,
द्रोह का काम न रह जावे,
मोह का नाम न रह जावे,
तुम्हारा निश्चल निश्चय हो।
दयामय, भारत की जय हो ॥

Hindi Premi

कर्म्म को कभी न हम त्यागें,
धर्म्म में अनुरागें, पागें;
भुक्ति को छोड़ न हम भागें,
मुक्ति के लिए सदा जागें,
हृदय निर्मल निस्संशय हो।
दयामय, भारत की जय हो॥

देह तक के हम दानी हों,
मनुजता के अभिमानी हों,
सभी तत्त्वों के ज्ञानी हों,
तुम्हारे सच्चे ध्यानी हों,
त्याग के हित ही संचय हो।
दयामय, भारत की जय हो॥

रहे कटि कसी पुण्य-पथ में,
बढ़े उद्योग मनोरथ में,
न हठ हो कभी यथायथ में,
शान्ति इति में हो सुख अथ में,
सर्व संसार सदाशय हो।
दयामय, भारत की जय हो॥

वृत्तियाँ बनी रहें बस में,
न विष मिलने पावे रस में,
बहे शुचि शोणित नस नस में,
कमी हो कभी न साहस में,
आप अपना ही आश्रय हो।
दयामय, भारत की जय हो॥

सफलता मिले परिश्रम में,
न बाधा हो कार्य्य-क्रम में,
भरा उत्साह रहे हम में,
लगे हम रहें सदुद्यम में,
मही पर ही स्वर्गोदय हो।
दयामय, भारत की जय हो॥

Hindi Premi

भजन

भजो भारत को तन-मन से।
बनो जड़ हाय! न चेतन से ॥

करते हो किस इष्ट देव का आँख मूँद कर ध्यान?
तीस कोटि लोगों में देखो तीस कोटि भगवान।

मुक्ति होगी इस साधन से।
भजो भारत को तन-मन से ॥

जिसके लिए सदैव ईश ने लिये आप अवतार,
ईश-भक्त क्या हो यदि उसका करो न तुम उपकार।

पूछ लो किसी सुधी जन से।
भजो भारत को तन-मन से ॥

पद पद पर जो तीर्थ भूमि है, देती है जो अन्न,
जिसमें तुम उत्पन्न हुए हो करो उसे सम्पन्न।

नहीं तो क्या होगा धन से?
भजो भारत को तन-मन से ॥

हो जावे अज्ञान-तिमिर का एक बार ही नाश,
और यहाँ घर घर में फिर से फैले वही प्रकाश।

जियें सब नूतन जीवन से।
भजो भारत को तन-मन से ॥

Hindi Premi

कर्तव्य

भावुक! भरा भाव-रत्नों से,
भाषा के भाण्डार भरो।
देर करो न देशवासी गण,
अपनी उन्नति आप करो॥
एक हृदय से, एक ईश का,
धरो, विविध विध ध्यान धरो।
विश्व-प्रेम-रत, रोम रोम से—
गद्‌गद निर्झर-सदृश झरो॥
मन से, वाणी से, कर्म्मों से,
आधि, व्याधि, उपाधि हरो।
अक्षय आत्मा के अधिकारी,
किसी विघ्न-भय से न डरो॥
विचरो अपने पैरों के बल,
भुजबल से भव-सिन्धु तरो।
जियो कर्म्म के लिए जगत में—
और धर्म्म के लिए मरो॥

Hindi Premi

व्यापार

करो तुम मिलजुल कर व्यापार।
देखो, होता है कि नहीं फिर भारत का उद्धार॥
बहुत दिनों तक देख चुके हो दासपने का द्वार।
अब अपना अवलम्ब आप लो, समझो उसका सार॥
यह दारुण दारिद्र्य दशा क्यों, क्यों यह हाहाकार?
भिक्षा-वृत्ति नहीं कर सकती इस विपत्ति से पार॥
भरते हो तुम अपने धन से औरों के भाण्डार!
ले जाता है लाभ तुम्हारा हँस-हँस कर संसार॥
भारतजननी के अंचल का अल्प नहीं विस्तार।
बहती है जब भी उसमें से सरस सुधा की धार॥
दूध बहुत है, पर हा! मक्खन कौन करे तैयार?
मथ लेते हैं उसे विदेशी छाँछ छोड़ कर छार!
अपने में स्वतन्त्र जीवन का कर देखो संचार।
नहीं रहेगी और हीनता होगा पुनः प्रसार॥
औरों की उन्नति, निज दुर्गति सोचो वारंवार।
उद्यम में ही रत्नाकर है ख़ारा पारावार!

Hindi Premi

नूतन वर्ष

नूतन वर्ष!
आते हो? स्वागत, आओ;
नूतन हर्ष,
नूतन आशाएँ लाओ।
हमें खिलाकर खिल जाओ ॥
तुम गत वर्ष!
जाते हो? रोकें कैसे?
हा! हतवर्स!
जाओ, नैश स्वप्न जैसे।
निश्वासों में मिल जाओ ॥
जाने को नव वर्ष चला है,
और न आने को गत वर्ष।
भुक्ति-मुक्ति के लिए भला है,
आवागमनशील संघर्ष ॥

Hindi Premi

नवयुग का स्वागत

आ, हे प्रकृति-हृदय के हार,
खुला हुआ है मेरा द्वार;

तेरा गन्ध
है निर्बन्ध,
तुझे याद है मुझसे अपना मूल-बीज-सम्बन्ध?
मुझे याद है,
इसीलिए आनन्द और आह्लाद है।
स्वागत नवयुग तेरा, करता है मन मेरा,
आँधी और चक्करों को, जल की प्रबल टक्करों को,
और ईश ने जो कुछ और दिया,
सिर माथे पर जिसने उसे लिया,
वह—बूढ़े भारत का बेड़ा—तुझे क्यों न लेगा हे पार!
आ, हे प्रकृति-हृदय के हार!

तब साहित्य,
नव नव नित्य,
पश्चिम में भी अस्त नहीं है जिसका प्रतिभादित्य,
अति अनूप है,
तू उसका प्रत्यक्ष कल्पना-रूप है।
सच्चा स्वप्न सुकवि का, इन्द्रजाल-सा छवि का,
आवश्यकता जन जन की, जय है तेरे जीवन की;

Hindi Premi

आडम्बर में है तू पड़ा सही,
मिला रहा पर अम्बर और मही।
सहज सरलता पूर्वक ही मैं करता हूँ तेरा सत्कार।
आ, हे प्रकृति-हृदय के हार!

तू सुनवीन,
मैं प्राचीन,
दोनों का सम्मिलन प्रौढ़ता प्रकट करे स्वधीन;
इसी युक्ति से
मिले मुक्ति से भुक्ति-मुक्ति भी भुक्ति से;
नर ही फिर निर्जर हों, और अमर ही नर हों,
तेरी शक्ति लसे मुझमें, मेरी भक्ति बसे तुझ में,
जियें धर्म के ऊपर और मरें,
बनें उभय नर-देव, सुकर्म करें।
फिर संसार स्वर्ग हो सबका और स्वर्ग सबका संसार
आ, हे प्रकृति-हृदय के हार!

भौतिक शोध
आत्मिकबोध
दोनों दूर करें हिलमिल कर अन्तर्बाह्य विरोध;
मूढ़ लोग हैं,
करते जो विपरीत आज उद्योग हैं।
वह भी तेरे बल से, एक राज्य के छल से,
किन्तु आत्मरक्षा भी अब, करें कलह करके वे सब,
राज्य नहीं एकार्थ, प्रजार्थ बना,
सावधान! सुन रक्खें स्वार्थमना;
उद्घोषित करता है तू भी बस, सबके समान अधिकार।
आ, हे प्रकृति हृदय के हार!

तेरे हाव
मेरे भाव
शान्त करें धन जन सम्बन्धी वह विग्रह बर्ताव।

Hindi Premi

जहाँ लोभ है,
वहाँ पाप है और परस्पर क्षोभ है।
हो भर्तृत्व न पूरा, तो कर्त्तृत्व अधूरा,
घात जहाँ प्रतिघात वहाँ, दिन भी होगा रात जहाँ,
यह उत्तुंग हिमालय खड़ा अभी,
पूछ, कहा था मैंने आप कभी—
जीव एक है, ब्रह्म एक है, माया के अनेक व्यवहार!
आ, हे प्रकृति हृदय के हार!

साहसहीन,
दुर्बल, दीन,
कभी नहीं हो सकते प्रभु के पुण्य-तत्त्व में लीन।
मुझे ज्ञात है,
'बलहीनेन न लभ्य' मन्त्र विख्यात है।
आखिर किसका डर है? आत्मा अविनश्वर है;
प्राप्ति सत्य, शिव सुन्दर की, व्याप्ति बनें जीवन भर की,
रहें कहीं हम ऊँचा सिर होगा,
कारागार कृष्ण-मन्दिर होगा।
शूली? वह ईशा की शोभा, प्रस्तुत हूँ मैं सभी प्रकार।
आ, हे प्रकृति हृदय के हार!

Hindi Premi

अहोभाग्य

स्वागत करते हैं हम लोग—
अपने अहोभाग्य का, जिससे पाया यह संयोग।
कष्ट उठाकर भी कितने ही आप यहाँ पर आ गये;
योगिजनों को भी अगम्य शुभ धर्म्म आज हम पा गये;
पावे शक्ति भक्ति का भोग।
स्वागत करते हैं हम लोग ॥
आप अतिथियों की पद-रज का अंजन आज लगायँगे,
मंजु मातृभाषा की बाँकी झाँकी हम भी पायँगे;
मिट जावेंगे मन के रोग।
स्वागत करते हैं हम लोग ॥
इस अनुपम अवसर पर मन में उठते अगणित भाव हैं,
पर वे भाषा बिना कहीं क्या पा सकते प्रस्ताव हैं?
करिये उसका आप प्रयोग।
स्वागत करते हैं हम लोग ॥
सत्याग्रह-संग्राम-विजेता नेता अपना आज है,
जिसके सिक्के ने हिन्दी की रक्खी अब भी लाज है;
विफल नहीं होते उद्योग।
स्वागत करते हैं हम लोग ॥

Hindi Premi

स्वागत

स्वागत प्यारे बन्धु हमारे!
भारत माता तुमको प्यारी,
तुम भारत माता को प्यारे।
देती है प्रेमाश्रु-अर्घ्य वह,
जान तुम्हें आँखों के तारे।
प्रकट करो निज भाव प्रेम से,
हरो देश के संकट सारे ॥

142707

Hindi Premi

छूत

श्री कबीर, रैदास कौन थे, सोचो बारम्बार;
उनसे कौन घृणा करता है, जिन पर प्रभु का प्यार।
शुद्धाचार, विचार, चाहिए और सत्य व्यवहार;
धारण करो साधुता, लेगा पद-रज तक संसार ॥
पूतकर्म कर मातृभूमि के बनो विशेष सपूत;
छूत बुरी है, अहोभाग्य है यदि हम हुए अछूत ॥

Hindi Premi

अछूत

हम अछूत जब तक हिन्दू हैं,
अचरज हैं अब तक हिन्दू हैं!
मुसलमान, ईसाई हैं तो
देखें फिर कब तक हिन्दू हैं।

Hindi Premi

सत्याग्रह

हुई आग भी हिम की धारा!
सत्याग्रह था उसे तुम्हारा ॥
राजा और पिता, दोनों ने, उसका किया विरोध,
हेतु था हरे! तुम्हारा बोध;
किन्तु न करता था वह मन में कभी किसी पर क्रोध,
कि निष्क्रिय था उसका प्रतिरोध;
हठकर भी वह कभी न हारा।
सत्याग्रह था उसे तुम्हारा ॥
उसके लिए किये राजा ने निर्मित नव नव दण्ड,
एक से एक अपूर्व प्रचण्ड;
पर मद-मलिन-गण्ड-गज-हित वे सिद्ध हुए एरण्ड,
प्रेम था उसका अतुल-अखण्ड;
क्या कर सका पिता बेचारा?
सत्याग्रह था उसे तुम्हारा ॥
छोड़े गये क्रोध कर उस पर मतवाले मातंग,
और बहु विषधर भीम भुजंग;
गये जलाये और डुबाये उसके कोमल अंग,
किन्तु प्रण हुआ न उसका भंग!
संकट उलटा हुआ सहारा!
सत्याग्रह था उसे तुम्हारा ॥
बालक ही तो था वह, उसका था सुकुमार शरीर,
किन्तु था हृदय धुरन्धर धीर;

Hindi Premi

वैररहित था विश्व-बन्धु वह सहनशील, व्रत-वीर;
तुम्हारा नामोच्चारक कीर;
वैरी भी था उसका प्यारा
सत्याग्रह था उसे तुम्हारा ॥
"बाल हो कि वार्द्धक्य कि यौवन, हैं तीनों ही काल,
जन्म है धूर्त मरण की चाल;
करो साधना, शुभाराधना, तोड़ो बन्धन-जाल।
सुनो हे बढ़ते वय के बाल!"
गिरि पर चढ़ वह यही पुकारा।
सत्याग्रह था उसे तुम्हारा ॥
किया आत्म-बल से पशु-बल का निग्रह अपने आप,
बिठा दी क्रूरों पर भी छाप;
प्रेम-सहित, आतंक-रहित था उसका प्रबल प्रताप,
पुण्य है पुण्य, पाप है पाप;
कभी, किसी का, चला न चारा
सत्याग्रह था उसे तुम्हारा ॥
राज-द्रोही, कुल-कुठार भी, कहा गया वह भक्त,
स्वयं था जीवन-मुक्त, विरक्त;
होकर भी अव्यक्त हुए थे उसके हित तुम व्यक्त,
कि था वह तुम में ही आसक्त;
सब में उसने तुम्हें निहारा।
सत्याग्रह था उसे तुम्हारा ॥
देखा गया न उसके मुँह पर कभी विकार, विषाद,
इसी से नाम पड़ा—'प्रह्लाद'
सुना गया वह हमें तुम्हारा भक्ति-भरा संवाद;
करें हम तुम्हें कि उसको याद?
पथ-प्रदर्शक वही हमारा।
सत्याग्रह था उसे तुम्हारा ॥

Hindi Premi

स्वराज्य

जो पर-पदार्थ के इच्छुक हैं,
वे चोर नहीं तो भिक्षुक हैं
हम को तो 'स्व' पद-विहीन कहीं
है स्वयं राज्य भी इष्ट नहीं!!

Hindi Premi

अफ़्रीका प्रवासी भारतवासी

(1)

दीन हैं, हम किन्तु रखते मान हैं;
भव्य भारतवर्ष की सन्तान हैं।
हाँ, वही भारत हमारा देश है–
शेष जिसके आज भी कुछ गान हैं।
कर्मकर हैं, पर किसी से कम नहीं;
सब नरों के स्वत्व एक समान हैं।
न्याय से अधिकार अपना चाहते;
कब किसी से माँगते हम दान हैं॥

(2)

भेद मानों रंग का तो भ्रान्त हो,
तुम महामति भंग के दृष्टान्त हो।
रक्त तुम में लाल जो हम में वही;
व्यर्थ ही क्यों भेद-भावाक्रान्त हो!
जान रक्खो अब भलाई है तभी–
जब कि हम तो शान्त हों तुम क्षान्त हो।
अन्तरंग अभिन्नता ही सिद्ध है,
बाह्य दर्शन में वृथा क्यों श्रान्त हो॥

Hindi Premi

(3)

नीचता का भी भला कुछ पार है!
क्या तुम्हारे ही लिए संसार है?
तुम हमारे देश को लूटा करो—
पर यहाँ आना हमारा भार है!
दम्भ दिखलाओ न सत्ता का हमें,
सत्य पर कितना तुम्हें अधिकार है।
हैं मनुज हम भी इसे भूलो नहीं;
कुछ हमारा भी यहाँ अधिकार है ॥

(4)

वीर बोथा! व्यर्थ अत्याचार है,
सत्य का किससे हुआ प्रतिकार है?
म्यान कर लो खंग अपना शान्त हो;
ज्ञात हमको खूब उसकी धार है।
ट्रांसवाली युद्ध में हम थे न क्या?
क्या तुम्हें भी याद वह व्यापार है?
सामना है आज न्यायान्याय का;
और जय का हेतु जगदाधार है ॥

(5)

यह न समझो तुम कि हम डर जायँगे,
प्राप्य अपना छोड़कर घर जायँगे।
चित्त में यह ठान हमने है लिया—
मोद पाकर मान पर मर जायँगे।
दण्ड-धाराएँ बहाओ तुम बड़ी,
धीरता से हम उन्हें तर जायँगे।
रह नहीं सकते कभी फूटे बिना;
पाप के ज्यों ही के घड़े भर जायँगे ॥

Hindi Premi

(6)

शत्रु मत समझो हमें अपना अहो!
मित्रता के साथ हिलमिल कर रहो।
हम मितव्यय-तुम अपव्यय-शील हो;
दोष इसमें क्या हमारा है कहो?
क्या यही कहना तुम्हारा धर्म है–
"हम सुखी हों, और तुम सब दुख सहो।"
बात तो यह है कि गुरु समझो हमें,
और संचय-बोध से वंचित न हो ॥

(7)

मन न होगा रुद्ध कारागार से,
प्राण मर सकते भला किस मार से?
देख ली हैं घोर नादिरशाहियाँ!
क्या डराते हो हमें तलवार से?
मिट नृशंसों के गये हैं वंश भी,
पर हमारा कुछ न बिगड़ा वार से
जो न दो साहाय्य हमको तुम यहाँ–
तो सताओ तो न यों अविचार से ॥

(8)

आर्य गान्धी! देश का सन्देश सारा भेज दो;
शीघ्र भारतवर्ष को वर्णन हमारा भेज दो।
यह, हमारी ओर रो लिख दो कि "प्यारे भाइयो–
बस हमें समवेदना का तुम सहारा भेज दो।
दृढ़ रहें यों ही यहाँ हम, ईश से अनुनय करो,
और शुभ-संवाद अपना तार द्वारा भेज दो।
विघ्न बाधाएँ हमारी सब यहाँ बह जायँगी,
जो हमें तुम एक अपनी अश्रुधारा भेज दो ॥"

Hindi Premi

स्वराज्य की अभिलाषा

शत शत सम्राटों के स्वामी!
हे अनन्त! हे अन्तर्यामी!
सुख का स्वप्न है कि आशा है यह स्वराज्य की अभिलाषा?
किसने इसको उदित किया है?
मुरझे मन को मुदित किया है;
तुमने केवल तुमने-प्रभुवर! कहती है अन्तर्भाषा ॥
बैठ तुम्हारे साहस-रथ में
हम न रुकेंगे अपने पथ में;
नाथ! तुम्हारी इच्छाओं को बाधाएँ ही बल देंगी।
सत्य और विश्वास मिलेंगे;
काँटों में ही फूल खिलेंगे;
उद्योगों की कल्पलताएँ मनमानें शुभ फल देंगी ॥
काला रंग न बाधक होगा,
गोरों का गुण साधक होगा;
एक हृदय का मिलन हमारा तीर्थराज संगम होगा।
उन्नति में न रुकावट होगी,
होंगे योग्य उच्चपद-भोगी;
आत्मा की सच्ची समता से मनुज मनुज के सम होगा ॥
कभी न नैतिक घातें होंगी,
मुक्त मानसिक बातें होंगी;
विधि-विधान में फिर निजत्व का हमको अटल गर्व होगा।
पक्षपात, मतभेद न होगा
ग्लानि न होगी, खेद न होगा;
न्याय-सभाओं में विचार का प्रकटित पुण्य पर्व होगा ॥
सुलभ सभी को होगी शिक्षा,
नहीं माँगनी होगी भिक्षा;

Hindi Premi

फिर सारे व्यापार हमारे अपने ही करगत होंगे।
उपनिवेश यमपुर न रहेंगे,
वहाँ न हम अपमान सहेंगे।
उनके वे उद्धत अधिवासी अपने आप प्रणत होंगे ॥
निम्नश्रेणी के अधिकारी,
रह न सकेंगे स्वेच्छाचारी;
जान-माल की रक्षा के मिस प्रजा न पिसने पावेगी।
शासक और शासितों में फिर—
चिर विश्वास रहेगा, सुस्थिर;
समस्नेह से नियम-चक्र की धुरी न घिसने पावेगी ॥
हिंस्र जन्तु कुछ कर न सकेंगे,
हम उनसे यों डर न सकेंगे;
हरी-भरी खेती को सूकर फिर यों नहीं उजाड़ेंगे।
होंगे स्वयं शस्त्रधारी हम,
वीर भाव के अधिकारी हम;
निज साम्राज्य-सत्व-रक्षा का झण्डा हम सब गाड़ेंगे ॥
परमात्मन् ऐसा कब होगा?
जब होगा बस तब सब होगा;
ब्रिटिश जाति का गौरव होगा, उच्च हमारा सिर होगा।
वह इंग्लैण्ड और यह भारत,
होंगे एक भाव में परिणत;
दोनों के यश का दिगन्त में पुण्य पाठ फिर फिर होगा ॥

Hindi Premi

शीतल छाया

घूम फिरा चिरकाल मनोमृग,
देख मरीचिका रूपिणी माया!
जीवन हाय! गँवाया वृथा,
पर पानी का एक भी बूँद न पाया।
सोच अरे, अब भी मन में थक,
हार चुका, मरने पर आया।
भागीरथी निकली जिनसे बस,
देंगे वही पद शीतल छाया ॥

कैसे मनुष्य कहो तुम हो यदि,
हो न तुम्हें निज देश की माया।
जन्म दिया जिसने तुम को फिर,
पाला, बराबर अन्न खिलाया।
नाक की नाक तुम्हारे लिए यहीं,
चन्द्र की चाँदी जो चाँदनी लाया।
और जो अन्त में देगा, तुम्हें निज
गोद में शान्ति की शीतल छाया ॥

भारत, मेरे पुरातन भारत,
नूतन भाव से तू मन भाया।
भूतल छान चुके, तुझ-सा पर
देश कहीं पर दृष्टि न आया।
भाव कि भाषा कि भेस सदा
अपना, अपना है, पराया, पराया।
माता, पिता, सुत जाया जहाँ,
बस है वहीं प्रेम की शीतल छाया ॥

Hindi Premi

वारिदों से अभिषेक करा,
नव भानुकरों से शरीर पुछाया।
गन्ध मला मलयानिल से,
जगतीतल में यश सौरभ छाया ॥
शेष फणों पर बैठ गया,
हरयाली ने आसन आप बिछाया।
भारत तू ने प्रदान की विश्व को
शान्त स्वराज्य की शीतल छाया ॥

Hindi Premi

गाँधी-गीत

(महात्मा गाँधी की भावना के अनुसार)

सुनो, सुनो, भारत-सन्तान!
हिन्दू, मुसलमान सब भाई निज-नवीन जय गान!

हरी-भरी जिस पुण्य-भूमि पर बहती है गंगा की धार,
वैष्णव, बौद्ध, जैन आदिक हम उस पर हिंसा करें कि प्यार।
सत्याग्रह है कवच हमारा, कर देखे कोई भी वार,
हार मान कर शत्रु स्वयं ही यहाँ करेंगे मित्राचार!
नहीं मारने में, मरने में है विक्रम, यश मान!
सुनो, सुनो, भारत-सन्तान!

भय ही नहीं किसी का है जब, करें किसी पर हम क्यों क्रोध?
जिएँ विरोधी भी विरोध ही पावेगा हम से परिशोध!
अस्त्र अपूर्व अमोघ हमारा निश्चित है निष्क्रिय प्रतिरोध;
प्रतिपक्षी भी, रण में, हमसे पावें, प्रेम, प्रसाद, प्रबोध!
रक्तपात वीरत्व नहीं, वह है वीभत्स-विधान!
सुनो, सुनो, भारत-सन्तान!

जबकि मुक्ति के अधिकारी हैं, रह सकते हम नहीं अधीन,
(अमर आत्म-बल के आगे क्या पशु-बल हो सकता है पीन?)
सत्त्व हमारे हैं समान जब रहें कहो, फिर हम क्या दान?
कर, पद, मन, मस्तक, दृग रहते सोचो हम हैं किससे हीन?
होगा, होगा, निश्चय होगा, नित्य नया उत्थान!
सुनो, सुनो, भारत-सन्तान!

Hindi Premi

ओ बारडोली!

ओ, विश्वस्त बारडोली, ओ,
भारत की 'थर्मापोली।'
नहीं, नहीं, फिर भी सशस्त्र थी,
ग्रीक सैनिकों की टोली।
'हल्दी घाटी' के रण की भी,
वही पूर्व-परिपाटी थी।
बढ़ बढ़कर वैरी की सेना,
वीर-वरों ने काटी थी ॥
पर तू है निःशस्त्र तपस्विनि,
फिर कैसे समता होगी?
उपमा आप बनेगी तू यदि
क्षोणी में क्षमता होगी।
लोहे को शनि-दान मान कर,
तूने स्वीकृत किया नहीं।
बुड्ढों का अवलम्ब जानकर,
लकड़ी की को भी लिया नहीं ॥
उठी नहीं तू कि जो बुरा है,
उसे नष्ट कर देने को।
तुली हुई है किन्तु बुरे को,
आज भला कर लेने को।
शुभे, सफलता दें तुझको हरि,
यही प्रार्थना है मेरी।
स्वयं सिद्धि से भी बढ़कर है,
साधु साधना यह तेरी ॥

Hindi Premi

फिर भी अपनी शक्ति तोल तू,
और विपक्षी का बल भी।
संगीनें मेशीन गनें, बम,
और उधर है कौशल भी।
न हो विजय का निश्चय जिनको
साक्षी होकर हट जावें।
बढ़कर पग न हटें फिर पीछे,
चाहे सिर भी कट जावें।
करती है कानून-भंग तू,
पर कैसे कानून भला?
ऐसे, न्याय न्याय कह कर जो,
यहाँ फाँसते रहे गला?
खौल उठेगा खून न किसका,
पीडन और प्रहारों से?
संयम तुझे दिखाना है पर,
निज विनीत व्यवहारों से?
आज महात्मा-द्वारा तूने,
आत्मा का बल जाना है।
परमात्मा ने दिया जिसे यह,
सत्याग्रह का बाना है।
भय दे सकता है क्या तुझको,
घोर आयुधों का घेरा?
प्रतिपक्षी के लिए 'सहन' है,
'प्रहरण' से भीषण तेरा!
सावधान! बाधाएँ तुझको,
व्रत से विचलित कर न सकें।
झेले जायँ वार हँस हँस कर,
छकें विपक्षी और थकें!
शोणित चाहें तो इतना लें,
हिंसक उसमें डूब उठें।
घृणा करें अपने ऊपर वे,
और आप ही ऊब उठें॥
सूरत में ही कोठी पहले,
नौकरशाही ने खोली।

Hindi Premi

सूरत से ही चली हटाने
अब तू उसे बारडोली!
पर संगम गोरों से अपना,
गंगा - यमुना - तुल्य रहे।
दोनों के भीतर समता की,
सरस्वती का स्रोत-बहे ॥

Hindi Premi

जय बोल

खुली है कूट-नीति की पाल;
महात्मा गाँधी की जय बोल।
नया पन्ना पलटे इतिहास,
हुआ है नूतन वीर्य विकास।
विश्व, तू ले सुख से निःश्वास,
तुझे हम देते हैं विश्वास।
आत्म-बल धारण कर अनमोल;
महात्मा गाँधी की जय बोल!
देख कर बैर, विरोध, विनाश,
पड़ गया है नीला आकाश!
किन्तु अब पशु-बल हुआ हताश,
कटेगा पराधीनता - पाश।
उठा ईश्वर का आसन डोल
महात्मा गाँधी की जय बोल!

Hindi Premi

विचित्र संग्राम

अस्थिर किया टोप वालों को
गान्धी-टोपी वालों ने।
शस्त्र बिना संग्राम किया है
इन माई के लालों ने।
अपने निश्चय पर ये दृढ़ हैं,
मारो, पीटो बन्द करो!
अजब बाँकपन दिखलाया है
इनकी सीधी चालों ने।
यहाँ जमाई है अपनी जड़,
पश्चिम के जिन पौधों ने।
असहयोग के फल उपजाये,
उनकी ऊँची डालों ने।
मैंचेस्टर में बनी कभी की,
सोने की दीवारें हैं।
हम नंगों की लज्जा रक्खी,
है मकड़ी के जालों ने।
गाढ़ा आड़े हुआ, नहीं तो,
हमें फँसाये रखने को।
रंग रंग के जाल बुने हैं,
मेशीनों की मालों ने।
अपने को भी भूल गये हम,
स्वप्न देखकर औरों के।
ऐसा रंग जमाया हम पर,
उनके मद के प्यालों ने।

Hindi Premi

जीते रहे पूर्वजों के ही,
पुण्यों से ज्यों त्यों कर के।
दास्य, दैन्य दुर्भिक्ष दिये हैं,
हमें अनेकों सालों ने।
देना पड़े रक्त भी चाहे,
पर अपना पानी रखना।
मर कर भी पानी भर रक्खा,
पशुओं तक की खालों ने!
वीर धीरता से करते हैं,
सदा सामना विघ्नों का।
जकड़ा सभी जातियों को है,
जीवन के जंजालों ने।
टाला किये बराबर ही वे,
कोरी बातें कह कह कर।
बातें समझी हैं अब उनकी
भूले भोले-भालों ने।
कच्चा हमें समझते हैं वे,
अब भी अपने शासन में।
पका कलेजा यहाँ, पकाया,
अपने का इन बालों ने।
उनसे अल्प योग्यता हमने,
नहीं दिखाई अवसर पर।
फिर भी वंचित किया हमें है,
केवल काले भालों ने।
भय में सच्चा प्रेम कहाँ है?
प्रेम नहीं तो क्षेम कहाँ?
वश कर पाया कहाँ प्रजा को,
पशु-बल से भूपालों ने?
धारण किया स्वयं सेवा व्रत,
भारत के हित आज अहा!
सबने, वृद्धों ने, युवकों ने,
वनिताओं ने, बालों ने।

Hindi Premi

कहीं आज तक स्वतन्त्रता का,
रंग उड़ाये उड़ा नहीं।
धुआँ उड़ाया है अपना ही,
बन्दूकों की नालों ने।
कभी बन्द कर पाया है क्या
मधुर मुक्ति के भावों को
जेलों की उन दीवारों ने–
जंजीरों ने, तालों ने?
करता है जो काल स्वयं ही,
उससे अधिक किसी जन का।
क्या कर लिया मशीनगनों ने,
संगीनों ने, भालों ने?
बनी रही जो कहीं स्वदेशी
तो दर्शक ही देखेंगे।
गोलों को भी उड़ा दिया है
यहाँ रुई के गालों ने॥
कैसा भी दृढ़ रहे गर्व-गढ़,
स्वयं शीघ्र ढा जाता है।
किसके गौरव की रक्षा की,
कहो ढोंग की ढालों ने?
उदय-दिशा के रहने वाले
कब तक रहें अँधेरे में?
जग को जगमग ज़ुगा दिया है,
अपने ही उजियालों ने।
गये दिनों में भी भारत ने,
निज गौरव दिखलाया है।
अब भी 'सत्याग्रह' सिखलाया–
है, गोरों को कालों ने॥

Hindi Premi

मातृ-मूर्ति

जय भारत-भूमि-भवानी!
अमरों ने भी तेरी महिमा वारंवार बखानी।
तेरा चन्द्र-वदन वर विकसित शान्ति-सुधा बरसाता है;
मलयानिल-निश्वास निराला नवजीवन सरसाता है।
हृदय हरा कर देता है यह अंचल तेरा धानी;
जय जय भारत-भूमि-भवानी!

उच्च हृदय-हिमगिरि से तेरी गौरव-गंगा बहती है;
और करुण-कालिन्दी हमको प्लावित करती रहती है।
मौन मग्न हो रही देखकर सरस्वती-विधि वाणी;
जय जय भारत-भूमि-भवानी!

तेरे चित्र विचित्र विभूषण हैं फूलों के हारों के;
उन्नत-अम्बर-आतपत्र में रत्न जड़े हैं तारों के।
केशों से मोती झरते हैं या मेघों से पानी?
जय जय भारत-भूमि-भवानी!

बरद-हस्त हरता है तेरे शक्ति-शूल की सब शंका;
रत्नाकर-रसने, चरणों में अब भी पड़ी कनक लंका।
सत्य-सिंह-वाहिनी बनी तू विश्व-पालिनी रानी;
जय जय भारत-भूमि-भवानी!

करके माँ, दिग्विजय जिन्होंने विदित विश्वजित याग किया,
फिर तेरा मृत्पात्र मात्र रख सारे धन का त्याग किया।
तेरे तनय हुए हैं ऐसे मानी, दानी, ज्ञानी—
जय जय भारत-भूमि-भवानी!

Hindi Premi

तेरा अतुल अतीत काल है आराधन के योग्य समर्थ;
वर्त्तमान साधन के हित है और भविष्य सिद्धि के अर्थ।
भुक्ति मुक्ति की युक्ति, हमें तू रख अपना अभिमानी;
जय जय भारत-भूमि-भवानी!

Hindi Premi

भारत का झण्डा

भारत का झण्डा फहरै।
छोर मुक्ति-पट का क्षोणी पर,
छाया करके छहरै ॥
मुक्त गगन में, मुक्त पवन में,
इसको ऊँचा उड़ने दो।
पुण्य-भूमि के गत गौरव का,
जुड़ने दो, जी जुड़ने दो।
मान-मानसर का शतदल यह,
लहर लहर कर लहरै।
भारत का झण्डा फहरै ॥
रक्तपात पर अड़ा नहीं यह,
दया-दण्ड में जड़ा हुआ।
खड़ा नहीं पशु-बल के ऊपर,
आत्म-शक्ति से बड़ा हुआ।
इसको छोड़ कहाँ वह सच्ची,
विजय-वीरता ठहरै।
भारत का झण्डा फहरै ॥
इसके नीचे अखिल जगत का,
होता है अद्‌भुत आह्वान!
कब है स्वार्थ मूल में इसके?
है बस, त्याग और बलिदान ॥
ईर्षा, द्वेष, दम्भ, हिंसा का,
हृदय हार कर हहरै।
भारत का झण्डा फहरै ॥

Hindi Premi

पूज्य पुनीत मातृ-मन्दिर का,
झण्डा क्या झुक सकता है?
क्या मिथ्या भय देख सामने,
सत्याग्रह रुक सकता है?
घहरै दिग-दिगन्त में अपनी
विजय दुन्दभी घहरै।
भारत का झण्डा फहरै ॥

Hindi Premi

वैदिक विनय

विभो, विनती है वारंवार,
धर्म्म-कर्म्म पर अटल रहें हम,
बढ़ें विशुद्ध विचार।
ब्राह्मण व्रती शुभाचारी हों,
क्षत्रिय तेजोबलधारी हों,
वैश्य सदाशय व्यापारी हों,
शूद्र करें उपचार ॥
युवक हमारे उपकारी हों,
रूप शील युत नर नारी हों,
पशु हों पुष्ट, धेनु प्यारी हों,
बहे दूध की धार ॥
मेघ समय पर जल बरसावें,
लता-वृक्ष फल-फूल-बढ़ावें,
योग क्षेम जड़ जंगम पावें,
बढ़े विमल-विस्तार ॥

Hindi Premi

सैरन्ध्री

Hindi Premi

Hindi Premi

श्रीगणेशाय नमः

सैरन्ध्री

सुफल-दायनी रहें राम-कर्षक की सीता;—
आर्य-जनों की सुरुचि-सभ्यता-सिद्धि पुनीता।
फली धर्म-कृषि, जुती भर्म-भू* लंका जिनसे,
वही एक हैं मिटे स्वजीवन-शंका जिनसे।
वे आप अहिंसा रूपिणी परम पुण्य की पूर्ति-सी,
अंकित हों अन्तः क्षेत्र में मर्यादा की मूर्ति-सी।

बुरे काम का कभी भला परिणाम न होगा,
पापी जन के लिए कहीं विश्राम न होगा।
अविचारी का काल भाल पर ही फिरता है;
कहीं सँभलता नहीं शील से जो गिरता है।
होते हैं कारण आप ही अविवेकी निज नाश में;
फँसते हैं कीचक सम स्वयं मनुजाधम यम-पाश में।

जब विराट के यहाँ वीर पाण्डव रहते थे,
छिपे हुए अज्ञात-वास-बाधा सहते थे।
एक बार तब देख द्रौपदी की शोभा अति—
उस पर मोहित हुआ नीच कीचक सेनापति।
यों प्रकट हुई उसकी दशा दृगोचर कर रूपवर,
होता अधीर ग्रीष्मार्त्त गज ज्यों पुष्करिणी देखकर।

यद्यपि दासी बनी, वस्त्र पहने साधारण,
मलिनवेश द्रौपदी किये रहती थी धारण।

---

* भर्म-भू—स्वर्ण-भू।

Hindi Premi

वसन-वह्नि-सी तदपि छिपी रह सकी न शोभा,
उस दर्शक का चित्र और भी उस पर लोभा।
अति लिपटी भी शैवाल में कमल-कली है सोहती;
घन-सघन-घटा में भी घिरी चन्द्रकला मन मोहती।

छिपी हुई भी प्रकट रही मानो पांचाली;
छिप सकती थी कहाँ कान्ति की कला निराली?
वह अंगों की गठन और अनुपम अलकाली,
जा सकती थी कहाँ चाल उसकी मतवाली?
काली काली आँखें बड़ी कानों से थीं लग रहीं,
गुण और रूप की ज्योतियाँ स्वाभाविक थी जग रहीं।

सतियाँ पति के लिए सभी कुछ कर सकती हैं,
और अधिक क्या, मोद मानकर मर सकती हैं।
नृप विराट की विदित सुदेष्णा थी जो रानी,
दासी उसकी बनी द्रौपदी परम सयानी।
थी किन्तु देखने में स्वयं रानी की रानी वही—
कीचक की, जिसको देखकर सुध-बुध सब जाती रही।

कीचक मूढ़, मदान्ध और अति अन्यायी था,
नृप का साला तथा सुदेष्णा का भाई था।
भट-मानी वह मत्स्यराज का था सेनानी,
गर्व-सहित था सदा किया करता मनमानी।
रहते थे स्वयं विराट भी उससे सदा सशंक-से;
कह सकते थे न विरुद्ध कुछ अधिकारी आतंक से।

तृप्त न होकर रम्य रूप-रस की तृष्णा से,
बोला वह दुर्वृत्त एक दिन यों कृष्णा से—
"सैरन्ध्री, किस भाग्यशील की भार्या है तू?
है तो दासी किन्तु गणों से आर्या है तू!
मारा है स्मर ने शर मुझे तेरे इस भ्रू-चाप से!
और कब तक तड़पूँगा भला विरह-जन्य सन्ताप से?"

Hindi Premi

उसके ऐसे वचन श्रवण कर राजसदन में,
कृष्णा जलने लगी रोष से अपने मन में।
किन्तु समय को देख किसी विध धीरज धर के,
उससे कहने लगी शान्ति से शिक्षा करके।
होता आवेश विशेष है यद्यपि मनोविकार में;
समयानुसार ही कार्य बुध करते हैं संसार में।

"सावधान हे वीर, न ऐसे वचन कहो तुम,
मन को रोको और संयमी बने रहो तुम।
है मेरा भी धर्म, उसे क्या खो सकती हूँ?
अबला हूँ, मैं किन्तु न कुलटा हो सकती हूँ।
मैं दीना हीना हूँ सही, किन्तु लोभ-लीना नहीं,
करके कुकर्म संसार में मुझको है जीना नहीं।

पर नारी पर दृष्टि डालना योग्य नहीं है,
और किसी का भाग्य किसी को भोग्य नहीं है।
तुमको ऐसा उचित नहीं, यह निश्चय जानो,
निन्द्य कर्म से डरो, धर्म का भी भय मानो।
हैं देख रहे ऊपर अमर नीचे नर क्या कर रहे,
दुष्कृत में सुख है तो सुजन सुकृतों पर क्यों मर रहे?

मेरे पति हैं पाँच देव अज्ञात निवासी,
तन-मन-धन से सदा उन्हीं की हूँ मैं दासी।
बड़े भाग्य से मिले मुझे ऐसे स्वामी हैं,
धर्म-रूप वे सदा धर्म के अनुगामी हैं।
इसलिए न छेड़ो तुम मुझे, सह न सकेंगे वे इसे,
श्रुत भीम पराक्रम-शील वे मार नहीं सकते किसे?"

कीचक हँसने लगा और फिर उससे बोला–
"सैरन्ध्री तेरा स्वभाव है सचमुच भोला।
तुझसे बढ़कर और पुण्य का फल क्या होगा?
जा सकता है यहीं स्वर्ग-सुख तुझसे भोगा।
भय रहने दे जय बोल तू, मेरा कीचक नाम है,
तेरे प्रभु-पंचक से मुझे चिन्त्य पंचशर काम है।

Hindi Premi

मैं तेरा हो चुका, तू न होगी क्या मेरी?
पथ-प्रतीक्षा किया करूँगा कब तक तेरी?
आज रात में दीप-शिखा-सी तू आ जाना,
दृष्टि-दान कर प्राण-दान का पुण्य कमाना।
जो मूर्ति हृदय में है बसी वही सामने हो खड़ी,
आ जावे झट-पट वह घड़ी यही लालसा है बड़ी।''

यह कह कर वह चला गया उस समय दम्भ से;
कृष्णा के पद हुए विपद-भय-जड़-स्तम्भ-से!
जान पड़ा वह राज भवन गिरि-गुहा सरीखा;
उसमें भीषण हिंस्र-जन्तु-सा उसको दीखा।
वह चकित मृगी-सी रह गयी आँखें फाड़ बड़ी-बड़ी,
पर-कटी पक्षिणी व्योम को देखे ज्यों भू पर पड़ी।

बड़ी देर तक खड़ी रही वह हिली न डोली,
फिर अचेत-सी अकस्मात चिल्ला कर बोली—
"है क्या कोई मुझे बचाओ, करो न देरी,
मैं अबला हूँ आज लाज लुट जाय न मेरी!
ऊपर नीचे कोई सुनें मेरी यही पुकार है—
जिसको सद्धर्म-विचार है उस पर मेरा भार है।

हरे! हरे! गोविन्द, कृष्ण, तुम आज कहाँ हो?
अथवा ऐसा ठौर कौन तुम नहीं जहाँ हो?
रक्खी मेरी लाज तुम्हीं ने बीच सभा में,
हे अनन्त, पट तुम्हीं बने थे नीच-सभा में।
फिर आज विकट संकट पड़ा निकट पुकारूँ मैं किसे?
यह अश्रु-वारि ही अर्घ्य है आओ अच्युत, लो इसे!''

भीगी कृष्णा इधर आँसुओं के पानी से,
कीचक ने यों कहा उधर जाकर रानी से—
"सैरन्ध्री-सी सखी कहाँ से तुमने पायी?
बहन, बताओ कि यह कौन है, कैसे आयी?
देवी-सी दासी-रूप में दीख रही यह भामिनी;
बन गयी तुम्हारी सेविका मेरे मन की स्वामिनी !''

Hindi Premi

सुन भाई की बात बहन ठिठकी, फिर बोली—
"ठहरो भैया, ठीक नहीं इस भाँति ठिठोली।
भाभी है क्या यहाँ चिढ़े जो यह कहने से?
और मोद हो तुम्हें विनोद-विषय रहने से!
अपमान किसी का जो करे वह विनोद भी है बुरा,
यह सुनकर ही होगी न क्या सैरन्ध्री क्षोभातुरा!

मैं भी उसको पूर्णरूप से नहीं जानती,
एक विलक्षण बधू मात्र हूँ उसे मानती।
सुनो, कहूँ कुछ हाल कि वह है कैसी नारी?
उस दिन जब अवतीर्ण हुई सन्ध्या सुकुमारी—
बैठी थी मैं वह विश्रान्ति से सहचरियों के संग में,
होता था वचन-विलास कुछ हास्य-पूर्ण रस-रंग में।

वह सहसा आ खड़ी हुई मेरे प्रांगण में,
जय-लक्ष्मी प्रत्यक्ष खड़ी हो जैसे रण में!
वेश मलिन था किन्तु रूप आवेश भरा था,
था उद्देश्य अवश्य किन्तु आदेश भरा था।
मुख शान्त दिनान्त समान ही, निष्प्रभ किन्तु पवित्र था;
नभ के अस्फुट नक्षत्र-सा हार्दिक भाव विचित्र था।

मुझ पर आदर दिखा रही थी, पर निर्भय थी,
अनुनय उसमें न था, सहज ही वह सविनय थी।
नेत्र बड़े थे, किन्तु दृष्टि भी सूक्ष्म बड़ी ही,
सबके मन में पैठ-बैठ वह गयी खड़ी ही!
वह हास्य बीच में ही रुका सन्नाटा-सा छा गया!
मेरे गौरव में भी स्वयं कुछ घाटा-सा आ गया!

मुद्रा वह गम्भीर देख सब रुकी, जकी सी,
और दृष्टियाँ एक साथ सब झुकीं थकी सी।
काले-काले बाल-कन्धरा ढके खुले थे,
गुँथे हुए से व्याल मुक्ति के लिए तुले थे!
दृक्पात न करती थी तनिक सौध-विभव की ओर वह,
क्या कहूँ सौम्य या घोर थी कोमल थी कि कठोर वह!

Hindi Premi

सहसा मैं उठ खड़ी हुई, उठ खड़ी हुईं सब;
पर नीरव थी, भ्रान्त भाव में पड़ी हुईं सब।
किया ससम्भ्रम प्रश्न अन्त में मैंने ऐसे—
'भद्रे, तुम हो कौन? और आयी हो कैसे?'
उसके उत्तर के भाव का लक्ष्य न जाने था कहाँ—
'मैं? हाँ मैं अबला हूँ तथा आश्रयार्थ आयी यहाँ.।'

इस पर निकला यही वचन तब मेरे मुख से—
'अपना ही घर समझ यहाँ ठहरो तुम सुख से।'
आश्रयार्थिनी नहीं असल में अतिथि बनी वह,
नहीं सेविका, किन्तु हुई मेरी स्वजनी वह।
अनुचरियों को साहस नहीं समझें उसे सामने वे;
रह सकती नहीं किये बिना उसका आदर मान वे।

बहुधा अन्यमनस्क दिखाई पड़ती है वह,
मानों नीरव आप-आप से लड़ती है वह!
करती करती काम अचानक रुक जाती है,
करके ग्रीवा-भंग झौंक से झुक जाती है!
बस भर सँभाल कर चित्त को श्रम से वह थकती नहीं;
पर भूल करे तो भर्त्सना मैं भी कर सकती नहीं।

कार्य-कुशलता देख-देख उसकी विस्मय से,
इच्छा होती है कि बड़ाई करें हृदय से,
किन्तु दीर्घ निश्वास उसे लेते विलोक कर,
रखना पड़ता मौन-भाव ही सहज शोक कर?
कुछ भेद पूछने से उसे होता मन में खेद है,
अति असन्तोष है पर उसे यांचा से निर्वेद है।

ऐसी ही दृढ़ जटिल चरित्रा है वह नारी,
दुखिया है, पर कौन कहे उसको बेचारी।
जब तक उसको देख भीति होती है मन में,
तो भी उस पर परम प्रीति होती है मन में।
अपना आदर मानो दया—करके वह स्वीकारती,
पर दया करो तो वह स्वयं, घृणा-भाव है धारती!

Hindi Premi

वृक्ष-भिन्न-सी लता तदपिं उच्छिन्न नहीं वह,
मेरा सद्व्यवहार देखकर खिन्न नहीं वह।
जान सकी मैं यही बात उस गुण वाली की,
आली है वह विश्व-विदित उस पांचाली की।
जो पंच पाण्डवों की प्रिया प्रिय-समेत प्रच्छन्न है,
बस इसीलिए वह सुन्दरी सम्प्रत्ति व्यग्र विपन्न है।

किन्तु तुम्हें यह उचित नहीं जो उसको छेड़ो,
बुनकर अपना शौर्य यशः पट यों न उधेड़ो।
गुप्त पाप ही नहीं, प्रकट भय भी है इसमें;
आत्म-पराजय मात्र नहीं, क्षय भी है इसमें।
सब पाण्डव भी होंगे प्रकट, नहीं छिपेगा पाप भी,
सहना होगा इस राज्य को अबला का अभिशाप भी।

सुन्दरियों का क्या अभाव है तुम्हें, बताओ,
जो तुम होकर शूर उसे इस भाँति सताओ।
जीत सके मन भी न वीर तुम कैसे फिर हो?
कहलाते हो धीर और इतने अस्थिर हो!
हम अबलाएँ तो एक की, होकर रहती हैं सदा।
तुम पुरुषों को सौ भी नहीं, होती हैं तृप्ति-प्रदा!"

"बहन, किसे यह सीख सिखाती हो तुम, मुझको?
किसे धर्म का मार्ग दिखाती हो तुम, मुझको?
व्यर्थ! सर्वथा व्यर्थ! सुनूँ. देखूँ क्या अब मैं?
सारी सुध-बुध उधर गँवा बैठा हूँ जब मैं।
उस मृगनयनी की प्राप्ति ही है सुकीर्ति मेरी सुनो।
चाहो मेरा कल्याण तो, कोई जाल तुम्हीं बुनो।

सुन्दरियों का क्या अभाव है मुझे, नहीं है!
प्राप्त वस्तु से किन्तु हुआ सन्तोष कहीं है?
आग्रह तो अप्राप्त वस्तु का ही होता है,
हृदय उसी के लिए हाय! हठ कर रोता है।
उसके पाने में ही प्रकट, होती है वर वीरता।
सोचो समझो, इस तत्त्व की तनिक तुम्हीं गम्भीरता॥"

Hindi Premi

वह कामी निर्लज्ज नीच कीचक यह कहकर,
चला गया, मानों अधैर्य धारा में बहकर।
उसकी भगिनी खड़ी रही पाषाण-मूर्ति-सी–
भ्राता के भय और लाज की स्वयं पूर्ति-सी!
देखा की डगमग चाल वह उसकी अपलक दृष्टि से,–
जो भीग रही थी आप निज, घोर घृणा की वृष्टि से।

"राम राम! यह वही–बली मेरा भ्राता है,
कहलाता जो एक राज्य भर का त्राता है!
जो अबला से आज अचानक हार रहा है,
अपना गौरव, धर्म, कर्म, सब वार रहा है।
क्या पुरुषों के चरित्र्य का, यही हाल है लोक में?
होता है पौरुष पुष्ट क्या, पशुता के ही ओक में?

सुन्दरता यदि वघे, वासना उपजाती है,
तो कुल-ललना हाय! उसे फिर क्यों पाती है?
काम-रीति की प्रीति नाम नर देते हैं बस,
कीट तृप्ति के लिए लूटते हैं प्रसून-रस।
यदि पुरुष जनों का प्रेम है पावन नेम निवाहता,
तो कीचक मुझ-सा क्यों नहीं, सैरन्ध्री को चाहता?

सैरन्ध्री यह बात श्रवण कर क्या न कहेगी?
वह मनस्विनी कभी मौन अपमान सहेगी?
घोर घृणा की दृष्टि मात्र वह जो डालेगी,
मुझको विष में बुझी भाली-सी वह सालेगी!
ऐसे भाई की बहन मैं, हूँगी कैसे सामने;
होते हैं शासन-नीति के दोषी जैसे सामने।

किन्तु इधर भी नहीं दीखती है गति मुझको,
उभय ओर कर्तव्य कठिन है सम्प्रति मुझको।
विफल काम यदि हुआ हठी कीचक कामातुर,
तो क्या जाने कौन मार्ग ले वह मदान्ध-उर।
राजा भी डरते हैं उसे वह मन में किससे डरे?
क्या कह सकता है कौन, वह–जो कुछ भी चाहे, करे।

Hindi Premi

इससे यह उत्पात शान्त हो तभी कुशल है,
विद्रोही विख्यात बली कीचक का बल है।
नहीं मानता कभी क्रूर वह कोई बाधा,
राज-सैन्य को युक्ति-युक्त है उसने साधा।
सैरन्ध्री सम्मत हो कहीं, तो फिर भी सुविधा रहे।
पर मैं रानी दूती बनूँ, इसे हृदय कैसे सहे?"

मन ही मन यह सोच सोच कर सभय सयानी,
सैरन्ध्री से प्रेम सहित बोली तब रानी—
"इतने दिन हो गये यहाँ तुझको सखि, रहते,
देखी गयी न किन्तु स्वयं तू कुछ भी कहते।
क्या तेरी इच्छा-पूर्ति की पा न सकूँगी प्रीति मैं?
विस्मित होती हूँ देखकर, तेरी निस्पृह नीति मैं!"

सैरन्ध्री उस समय चित्र-रचना करती थी,
हाथ तुला था और तूलिका रंग भरती थी।
देख पार्श्व से मोड़ महा ग्रीवा, कुछ तन कर,
हँस बोली वह स्वयं एक सुन्दर छवि बनकर—
"मैं क्या माँगूँ जब आपने, यों ही सब कुछ है दिया?
आज्ञानुसार वह दृश्य यह, लीजे, मैंने लिख दिया।"

"क्रिया-सहित तू वचन-विदग्धा भी है आली,
है तेरी प्रत्येक बात ही नयी, निराली।"
यह कह रानी देख द्रौपदी को मुसकाई;
करने लगी सुचित्र देखकर पुनः बड़ाई।
"अंकित की है घटना विकट, किस पटुता के साथ में,
सच बतला जादू कौन-सा है तेरे इस हाथ में?"

कुछ पुलकित कुछ चकित और कुछ दर्शक शंकित,
नृप विराट युत एक ओर थे छवि में अंकित।
एक ओर थी स्वयं सुदेष्णा चित्रित अद्भुत—
बैठी हुई विशाल झरोखों में परिकर युत,
मैदान बीच में था जहाँ, दो गज मत्त असीम थे;
उन दृढ़दन्तों के बीच में, वल्लव रूपी भीम थे।

Hindi Premi

यही भीम-गज-युद्ध चित्र का मुख्य विषय था,
जय निश्चय के साथ-साथ ही सबको भय था।
पर्शों से भुजदण्ड वीर के चिपट रहे थे,
उनमें युग कर-शुण्ड नाग-से लिपट रहे थे।
गज अपनी-अपनी ओर थे उन्हें खींचते कक्ष से,
पर खिंचे जा रहे थे स्वयं, भीम-संग प्रत्यक्ष-से।

निकल रहा था वक्ष वीर का आगे तनकर;
पर्वत भी पिस जाय, अड़े जो बाधक बनकर।
दक्षिण-पद बढ़ चुका वाम अब बढ़ने को था,
गौरव-गिरि के उच्च शृंग पर चढ़ने को था।
मद था नेत्रों में दर्प का, मुख पर थी अरुणच्छटा,
निकला हो रवि ज्यों फोड़कर, युगल गजों की घन घटा।

रानी बोली—"धन्य तूलिका है सखि तेरी,
कला-कुशलता हुई आप ही आकर चेरी।
किन्तु आपको लिखा नहीं तूने क्यों इसमें?
वल्लव की प्रत्यक्ष जयश्री रहती जिसमें?
उस पर तेरा जो भाव है, मैं उसको हूँ जानती,
हँसती है लज्जा-युक्त तू, तो भी भौंहें तानती।

दोष जताने से न प्यार कर रंग छिपेगा,
सौ ढोंगों से भी न कभी वह ढंग छिपेगा।
विजयी वल्लव लड़ा वन्य जीवों से जब-जब—
सहमी सबसे अधिक अन्त तक तू ही तब-तब।
फल देख युद्ध का अन्त में बची साँस-सी ले अहा!
तेरे मुख का वह भाव है, मेरे मन में बस रहा।

कह तो लिख दूँ उसे अभी इस चित्र-फलक पर!
बात नहीं जो मुकर सके तू किसी झलक पर।
कह तो आँखें लिखूँ नहीं जो यह सह सकतीं,
न तो देख सकतीं न बिना देखे रह सकतीं।
या लिखूँ कनौखी दृष्टि वह विजयी वल्लव पर पड़ी?
नीचे मुख की मुसकान में मुग्ध हृदय की हड़बड़ी!

Hindi Premi

वल्लव फिर भी सूपकार, साधारण जन है,–
और उच्च पद-योग्य धन्य यह यौवन-धन है।''
कृष्णा बोली–''देवि, आप कुछ कहें भले ही,
मुझको संशय-योग्य समझती रहें भले ही।
पर करती नहीं कदापि हूँ, कोई अनुचित कर्म में,
दासी होकर भी आपकी, रखती हूँ निज धर्म में।

लड़ता है नर एक क्रूर पशुओं से डटकर,
कौतुक हम सब लोग देखते हैं हट हट कर।
उस पर तदपि सहानुभूति भी उदित न हो क्या?
और उसे फिर जयी देख मन मुदित न हो क्या?
यदि इतने से ही मैं हुई, संशय योग्य कुघोष से,
तो क्षमा कीजिए आप भी–बचेंगी न इस दोष से।

पद से ही मैं किन्तु मानती नहीं महत्ता,
चाहे जितनी क्यों न रहे फिर उसमें सत्ता।
स्थिति से नहीं, महत्त्व गुणों से ही बढ़ता है;
यों मयूर से गीध अधिक ऊँचे चढ़ता है।
वल्लव-सम वीर बलिष्ठ का, पक्षपात किसको न हो,
क्या प्रीति नाम में ही प्रकट काम वासना है अहो!''

रानी ने हँस कहा–''दोष क्या तेरा इसमें?
रहती नहीं अपूर्व गुणों की श्रद्धा किसमें?
स्वाभाविक है काम-वासना भी हम सबकी,
और नहीं तो सृष्टि नष्ट हो जाती है कब की?
मेरा आशय था बस यही–तू उस जन के योग्य है,
अच्छी से अच्छी वस्तु इस भव की जिसको भोग्य है।

रहने दे इस समय किन्तु यह चर्चा, जा तू,
कीचक को यह चारु चित्र जाकर दे आ तू।
भाई के ही लिये इसे मैंने बनवाया,
वल्लव का यह युद्ध बहुत था उसको भाया।
मेरा भाई भी है बड़ा, वीर और विश्रुत बली,
ऐसे कामों में ही सदा, खिलती है उसकी कली।''

Hindi Premi

त्योरी तत्क्षण बदल गयी कृष्णा की सहसा,
रानी का यह कथन हुआ उसको दुस्सह-सा।
पालक का जी पली सारिका यथा जला दे,
हाथ फेरते समय अचानक चोंच चला दे!
वह बोली—"क्या यह भूमिका, इसलिये थी आपकी?
यह बात 'महत्पद' के लिए है कितने परिताप की?"

कहा सुदेष्णा ने कि—"अरे तू क्या कहती है?
अपने को भी आप सदा भूली रहती है।
करती हूँ सम्मान सदा स्वजनी-सम तेरा,
तू उलटा अपमान आज करती है मेरा!
क्या मैंने आश्रय था दिया, इसीलिये तुझको, बता—
तू कौन और मैं कौन हूँ, इसका भी कुछ है पता।"

रानी के आत्माभिमान ने धक्का खाया,
सैरन्ध्री को भी न कार्य अपना यह भाया।
"क्षमा कीजिए देवि, आप महिषी मैं दासी,
कीचक के प्रति न था हृदय मेरा विश्वासी।
इसलिये न आपे में रही, सुनकर उसकी बात मैं,
सहती हूँ, लज्जा-युक्त हा! उसके वचनाघात मैं।

होकर उच्च पदस्थ नीच-पथ-गामी है वह,
पाप-दृष्टि से मुझे देखता,—कामी है वह।
नर होकर भी हाय! सताता है नारी को,
अनाचार क्या कभी उचित है बलधारी को?
यों तो पशु महिष वराह भी, रखते साहस सत्व हैं,
होते परन्तु कुछ और ही, मनुष्यत्व के तत्त्व हैं।

मुझे न उसके पास भेजिए, यही विनय है,
क्योंकि धर्म्म के लिए वहाँ जाने में भय है।
रखिए अबला-रत्न आप अबला की लज्जा,
सुन मेरा अभियोग कीजिए शासन-सज्जा।
हा! मुझे प्रलोभन ही नहीं, कीचक ने भय भी दिया,
मर्यादा तोड़ी धर्म्म की, और असंयम भी किया।"

Hindi Premi

रानी कहने लगी—"शान्त हो, सुन सैरन्ध्री,
अपनी धुन में भूल न जा, कुछ गुन सैरन्ध्री!
भाई पर तो दोष लगाती है तू ऐसे;
पर मेरा आदेश भंग करती है कैसे?
क्या जाने से ही तू वहाँ, फिर आने पाती नहीं?
होती हैं बातें प्रेम की, सफल भला बल से कहीं!

तू जिसकी यों बार-बार कर रही बुराई,
भूल न जा, वह शक्ति-शील है मेरा भाई।
करता है वह प्यार तुझे तो यह तो तेरा—
गौरव ही है, यही अटल निश्चय है मेरा।
तू है ऐसी गुण-शालिनी, जो देखे मोहे वही,
फिर इसमें उसका दोष क्या, चिन्तनीय है बस यही।

तू सनाथिनी हो कि न हो उस नर पुंगव से,
उदासीन ही रहे क्यों न वैभव से, भव से।
पर तू चाहे लाख गालियाँ दीजो मुझको,
मैं भाभी ही कहा करूँगी अब से मुझको!
जा, दे आ अब यह चित्र तू जाकर अपनी चाल से।"
हो गयी मूढ़-सी द्रौपदी, इस विचित्र वाग्जाल से।

बोली फिर—"आदेश आपका शिरोधार्य है,
होने को अनिवार्य किन्तु कुछ अशुभ कार्य है!
पापी जन का पाप उसी का भक्षक होगा।
मेरा तो ध्रुव-धर्म सहायक रक्षक होगा।"
चलते चलते उसने कहा, नभ की ओर निहार के—
"द्रष्टा हो दिनकर देव, तुम, मेरे शुद्धाचार के।"

ठोका उसने मध्य मार्ग में आकर माथा—
"रानी करने चली आज है मुझे सनाथा!
विश्वनाथ हैं तो अनाथ हम किसको मानें?
मैं अनाथ हूँ या सनाथ, कोई क्या जानें?
मुझको सनाथ करके स्वयं, पाँच बार संसार में,
हे विधे बहाता है बता, अब तू क्यों मँझधार में?

Hindi Premi

हठ कर मेरी ननद चाहती है वह होना,
आवे इस पर हँसी मुझे या आवे रोना?
पहले मेरी ननद दुःशला ही तो हो ले?
बन जाते हैं कुटिल वचन भी कैसे भोले!
मैं कौन और वह कौन है, मैं यह भी हूँ जानती।''
कर आप अधर दंशन चली कृष्णा भौंहें तानती।

''आ, विपत्ति, आ, तुझे नहीं डरती हूँ अब मैं,
देखूँ बढ़कर आप कि क्या करती हूँ अब मैं।
भय क्या है, भगवान भाव ही में है मेरा,
निश्चय निश्चय जिये हृदय, दृग-निश्चय तेरा।
मैं अबला हूँ तो क्या हुआ? अबलों का बल राम है,
कर्मानुसार भी अन्त में शुभ सबका परिणाम है।''

सैरन्ध्री को देख सहज अपने घर आया,
कीचक ने आकाश-शशि भूपर-सा पाया।
स्वागत कर वह उसे बिठाने लगा प्रणय से,
किन्तु खड़ी ही रही काँप कर कृष्णा भय से।
चुपचाप चित्र देकर उसे ज्यों ही वह चलने लगी,
त्यों ही कीचक की कामना उसको यों छलने लगी—

''सुमुखि सुन्दरी मात्र तुझे मैं समझ रहा था,
पर तू इतनी कुशल! बहन ने ठीक कहा था।
इस रचना पर भला तुझे क्या पुरस्कार दूँ?
तुझ पर निज सर्वस्व बोल मैं अभी वार दूँ!''
बोली कृष्णा मुख नत किये—''क्षमा कीजिए बस मुझे;
कुछ, पुरस्कार के काम में, नहीं दीखता रस मुझे।

रचना के ही लिए हुआ करती है रचना।''
कृष्णा चुप हो गयी कठिन था तब भी बचना।
बोला खल—''पर दिखा चुकी जो ललित कला यह,
क्या चूमा भी जाय कुशलता-कर न भला वह?
सैरन्ध्री, कहूँ विशेष क्या, तू ही मेरी सम्पदा;
मेरे वश में है राज्य यह, मैं तेरे वश में सदा।

Hindi Premi

हे अनुपम आनन्द-मूर्ति, कृशतनु, सुकुमारी,
बलिहारी यह रुचिर रूप की राशि तुम्हारी!
क्या तुम हो इस योग्य, रहो जो बनकर चेरी,
सुध-बुध जाती रही देखकर तुमको मेरी।
इन दृग्बाणों से विद्ध यह मन मेरा जब से हुआ,
है खान-पान-शयनादि सब विष-समान तब से हुआ।

अब हे रमणीरत्न, दया कर इधर निहारो,
मेरी ऐसी प्रीति नहीं कि प्रतीति न धारो।
मैं तो हूँ अनुरक्त, तनिक तुम भी अनुरागो,
रानी होकर रहो, वेश दासी का त्यागो।
होती है यद्यपि खान में किन्तु नहीं रहती पड़ी;
मणि, राज-मुकुट में ही प्रिये, जाती है आखिर जड़ी।''

''अहो वीर बलवान, विषम विष की धारा-से,
बोलो ऐसी बात न तुम मुझ पर-दारा से।
तुम जैसे ही बली कहीं अनरीति करेंगे,
तो क्या दुर्लभ जीव धर्म का ध्यान धरेंगे?
नर होकर इन्द्रिय-वश अहो! करते कितने पाप हैं;
निज अहित-हेतु अविवेक जन होते अपने आप हैं।

राजोचित सुख-भोग तुम्हीं को हों सुख-दाता,
कर्मों के अनुसार जीव जग में फल पाता।
रानी ही यदि किया चाहता मुझको धाता,
तो दासी किसलिए प्रथम ही मुझे बनाता।
निज धर्म-सहित रहना भला, सेवक बनकर भी सदा;
यदि मिले पाप से राज्य भी, त्याज समझिए सर्वदा।

इस कारण हे वीर, न तुम यों मुझे निहारो,
फणि-मणि पर निज कर न पसारो, मन को मारो।
प्रेम करूँ, मैं बन्धु, मुझे तुम बहन बिचारो,—
पाप-गर्त से बचो, पुण्य-पथ पर पद धारो।
अपने इस अनुचित कर्म के लिए करो अनुताप तुम;
मत लो मस्तक का वज्र-सम सती-धर्म का शाप तुम।''

Hindi Premi

कृष्णा ने इस भाँति उसे यद्यपि समझाया,
किन्तु एक भी वचन न उसके मन को भाया।
मद-मत्तों को यथा-योग्य उपदेश सुनाना,
है ऊपर में यथा वृथा पानी बरसाना।
कर सकते हैं जो जन नहीं मनोदमन अपना कभी;
उसके समक्ष शिक्षा-कथन निष्फल होता है सभी।

"रहने दो यह ज्ञान, ध्यान, ग्रन्थों की बातें!
फिर फिर आती नहीं सुयौवन की दिन-रातें।
करिए सुख से वही काम, जो हो मनमाना,
क्या होगा मरणोपरान्त किसने यह जाना?
जो भावी की आशा किये वर्तमान सुख छोड़ते,
वे मानों अपने आप ही निज-हित से मुँह मोड़ते।"

कह कर ऐसे वचन वेग से बिना बिचारे,
आतुर हो अत्यन्त, देह की दशा विसारे।
सहसा उसने पकड़ लिया कर पांचाली का,
मानो किसलय-गुच्छ नाग ने नत डाली का!
कीचक की ऐसी नीचता देख सती क्षोभित हुई;
कर चक्षु चपल-गति से चकित शम्पा-सी शोभित हुई।

जो सकम्प तनु-यष्टि झूलती रज्जू सदृश थी,
शिथिल हुई निर्जीव दीख पड़ती अति कृश थी,
आहा! अब हो उठी अचानक वह हुंकारित;
ताव-पेंच खा बनी कालफणिनी फुंकारित।
भ्रम न था रज्जु में सर्प का उपमा पूरी घट गयी,
कीचक के नीचे की धरा मानों सहसा हट गयी।

"अरे नराधम, तुझे नहीं लज्जा आती है?
निश्चय तेरी मृत्यु मुण्ड पर मँडराती है।
मैं अबला हूँ किन्तु न अत्याचार सहूँगी,
तुझ दानव के लिए चण्डिका बनी रहूँगी।
मत समझ मुझे तू शशि-सुधा खल, निज कल्मष-राहु की,
मैं सिद्ध करूँगी पाशता अपने वामा-बाहु की।

Hindi Premi

होता है यदि पुलक हमारी ग्रल-बाहों में;–
तो कालानल नित्य निकलता है आहों में!"
यों कहकर झट हाथ छुड़ाने को उस खल से,
तत्क्षण उसने दिया एक झटका अति बल से।
तब सहसा मुँह के बल वहाँ मदोन्मत्त वह गिर पड़ा,
मानों झंझा के वेग से पतित हुआ पादप बड़ा।

तब विराट की न्याय-सभा की नींव हिलाने,
उस कामी को कुलि-कर्म का दण्ड दिलाने,
कच-कुच और नितम्ब-भार से खेदित होती,
गयी किसी विध शीघ्र द्रौपदी रोती रोती।
पीछे से उसको मारने उठकर कीचक भी चला;
उस अबला द्वारा भूमि पर गिरना उस खल को खला।

कृष्णा पर कर कोप शीघ्र-झपटा वह ऐसे–
थकी मृगी की ओर तेंदुआ लपके जैसे।
भरी सभा में लात उसे उस खल ने मारी,
छिन्न लता-सी गिरी भूमि पर वह बेचारी।
पर सँभला कीचक भी नहीं निज बल-वेग विशेष से;
फिर मुँह की खाकर गिर पड़ा दुगने विगलित वेष से।

धर्मराज भी कंक बने थे वहाँ विराजे;
लगा वज्र सा उन्हें मौलि पर घन-से गाजे।
सँभले फिर भी किसी तरह वे 'हरे, हरे' कह!
हुए स्तब्ध-से सभी सभासद 'अरे, अरे' कह!
करके न किन्तु दृक्पात तक कीचक उठा, चला गया;
मानो विराट ने चित्त में यही कहा कि 'भला गया'!

सम्बोधन कर सभा-मध्य तब मत्स्यराज को,
बोली कृष्णा कुपित, सुनाकर सब समाज को।
मधुर कण्ठ से क्रोध-पूर्ण कहती कटु वाणी,
अद्भुत छवि को प्राप्त हुई तब वह कल्याणी।
ध्वनि यद्यपि थी आवेग-मय, पर वह कर्कश थी नहीं,
मानो उसने बातें सभी वीणा में होकर कहीं।

Hindi Premi

"भय पाती है जहाँ राजगृह में ही नारी,
होता अत्याचार यथा उस पर है भारी।
सब प्रकार विपरीत जहाँ की रीति निहारी,
अधिकारी ही जहाँ आप हैं अत्याचारी।
लज्जा रहनी अति कठिन है कुल-बधुओं की भी जहाँ,
हे मत्स्यराज, किस भाँति तुम हुए प्रजा रंजक वहाँ?

छोड़ धर्म की रीति, तोड़ मर्यादा सारी,
भरी सभा में लात मुझे कीचक ने मारी,
उसका यह अन्याय देखकर भी भय-दायी,
न्यायासन पर रहे मौन तुम बनकर न्यायी,
हे वयोवृद्ध नरनाथ क्या, यही तुम्हारा धर्म है?
क्या यही तुम्हारे राज्य की राजनीति का मर्म है?

तुममें यदि सामर्थ्य नहीं है अब शासन का,
तो क्यों करते नहीं त्याग तुम राजासन का?
करने में यदि दमन दुर्जनों का डरते हो,
तो छूकर क्यों राज-दण्ड दूषित करते हो!
तुम से निज पद का स्वाँग भी, भली भाँति चलता नहीं;
अधिकार-रहित इस छत्र का भार तुम्हें खलता नहीं?

प्राणसखी जो पंच पाण्डवों की पांचाली,
दासी भी मैं उसी द्रौपदी की हूँ आली।
हाय! आज दुर्दैव-विवश फिरती हूँ मारी,
वचन, बद्ध हो रहे वीरवर वे व्रत-धारी।
करता प्रहार उन पर न यों दुर्विधि यदि कर्कश कशा,
तो क्यों होती मेरी यहाँ इस प्रकार यह दुर्दशा?

अहो! दयामय धर्मराज, तुम आज कहाँ हो?
पाण्डु-वंश के कल्पवृक्ष नरराज, कहाँ हो?
बिना तुम्हारे आज यहाँ अनुचरी तुम्हारी,
होकर यों असहाय भोगती है दुख भारी।
तुम सर्वगुणों के शरण यदि विद्यमान होते यहाँ,
तो इस दासी पर देव, क्यों पड़ती यह विपदा महा?

Hindi Premi

तुम-से प्रभू की कृपा-पात्र होकर भी दासी,
मैं अनाथिनी-सदृश यहाँ जाती हूँ त्रासी!
जब अजातरिपु, बात याद मुझको यह आती,
छाती फटती हाय! दुःख दूना मैं पाती।
कर दी है जिसने लोप-सी नाग भुजंगों की कथा,
हा! रहते उस गाण्डीव के हो मुझको ऐसी व्यथा!

जिस प्रकार है मुझे यहाँ कीचक ने घेरा,
होता यदि वृतान्त विदित तुमको यह मेरा।
तो क्या दुजन, दुष्ट, दुराचारी यह कामी,
जीवित रहता कभी तुम्हारे कर से स्वामी!
तुम इस अधर्म अन्याय को देख नहीं सकते कभी;
हे वीर! तुम्हारी नीति की उपमा देते हैं सभी।

क्रूर दैव ने दूर कर दिया तुमसे जिसको,
संकट मुझको छोड़ और पड़ता यह किसको?
यह सब है दुरदृष्ट-योग इसका क्या कहना?
मेरा अपने लिए नहीं कुछ अधिक उलहना।
पर जो मेरे अपमान से तुम सबका अपमान है।
हे कृतलक्षण, मुझको यही चिन्ता महामहान है!"

सुनकर निर्भय वचन याज्ञसेनी के ऐसे,
वैसी ही रह गयी सभा, चित्रित हो जैसे।
कही हुई सावेग गिरा उसकी विशुद्ध वर,
एक साथ ही गूँज गयी उस समय वहाँ पर।
तब ज्यों-त्यों करके शीघ्र ही अपने मन को रोक के,
यों धर्मराज कहने लगे उसकी ओर विलोक के—

"हे सैरन्ध्री, व्यग्र न हो तुम, धीरज धारो,
नरपति के प्रति वचन न यों निष्ठुर उच्चारो।
न्याय मिलेगा तुम्हें शीघ्र महलों में जाओ,
नृप हैं अश्रुतवृत्त न उनको दोष लगाओ।
शर-शक्ति पाण्डवों की किसे ज्ञात नहीं संसार में?
पर चलता है किसका कहो, वश विधि के व्यापार में?"

Hindi Premi

धर्मराज का मर्म समझकर नत मुख वाली,
अन्तःपुर को चली गयी तत्क्षण पांचाली।
किन्तु न तो वह गयी किसी के पास वहाँ पर,
और न उसके पास आ सका कोई डर कर।
वह रही अकेली भीगती दीर्घ-दृगों के मेह में,
जब हुई नैश निस्तब्धता गयी भीम के गेह में।

बन्द किये भी नेत्र वृकोदर जाग रहे थे;
पड़े पड़े निःश्वास बड़े वे त्याग रहे थे।
राह उसी की देख रहे थे धीरज खोकर,
वे भी सारा हाल सुन चुके थे हत होकर।
हो गयी अधीरा और भी उन्हें देखकर द्रौपदी;
हिम-राशि पिघल रवि-तेज से बढ़ा ले चले ज्यों नदी।

''जागो, गाओ अहो! भूल सुध, सोने वाले!
ओ अपना सर्वस्व आप ही खोने वाले!''
उठ बैठे झट भीम उन्होंने लोचन खोले,
और–''दैवि, मैं जाग रहा हूँ'' वे यों बोले।
''जब तक तुम हो सर्वस्व भी अपना अपने संग है,
सो नहीं रहा था मैं प्रिये निद्रा तो चिर भंग है।''

''मैं तो ऐसा नहीं समझती'' कृष्णा बोली–
''करो सजगता की न नाथ, तुम और ठिठोली!
आज आत्म-सम्मान तुम्हारा जाग रहा क्या?
अब ही निद्रा शौर्य्य-वीर्य्य वह त्याग रहा क्या!
आघात हुए इतने तदपि नहीं हुआ प्रतिघात कुछ,
आती है मेरी समझ में नहीं तुम्हारी बात कुछ!

भोगा सब निज धर्म-भीरुता पर मर जी कर,
कोसूँ फिर क्यों उसे न मैं पानी पी पी कर!
गिना चलूँ मैं कहो सहा है मैंने जो जो,
सिद्ध करूँ सब सत्य, कहा है मैंने जो जो।
सहने को अत्याचार को बाध्य करे, वह धर्म है,
तो इस निर्मम संसार में और कौन दुष्कर्म है?

Hindi Premi

भोजन में विष दिया जिन्होंने और जलाया,
राज-पाट सब लूट-लाट वन-पथ दिखलाया।
माथा ऊँचा किये रहें वे छिपे फिरें हम,
राज्य करें वे, दास्य-गर्त्त में हाय! गिरें हम।
फिर भी कहते हो तुम कि मैं जगता हूँ सोता नहीं,
अच्छा होता हे नाथ, तुम सोते ही होते कहीं!

कहते हो सर्वस्व मुझे तुम मैं जब तक हूँ,
रहने दो यह वचन-वंचना, मैं कब तक हूँ?
नंगी की जा चुकी प्रथम ही राज-भवन में,
हरी जा चुकी हाय! जयद्रथ से फिर वन में!
अब कामी कीचक की यहाँ गृध्र-दृष्टि मुझ पर पड़ी,
सहती हूँ मृत्यु बिना अहो ये विडम्बनाएँ बड़ी?

जिसके पति हों पाँच पाँच ऐसे बलशाली,
सुरपुर में भी करें कीर्ति जिनकी उजयाली।
काली हो अरि-कान्ति देखकर जिनकी लाली,
सहूँ लांछना प्रिया उनहीं की मैं पांचाली?''
कहती कहती यों द्रौपदी रह न सकी मानों खड़ी,
मूर्च्छित होकर वह भीम के चरण-शरण में गिर पड़ी।

''धिक है हमको हाय! सहो तुम ऐसी ज्वाला,''
कहते कहते उसे भीम ने शीघ्र सँभाला।
दीखी वह यों अतुल अंक आश्रय पा पति का—
विटप-काण्ड पर पड़ी ग्रीष्म-दृग्धा ज्यों लतिका।
''जागो, जागो प्राणप्रिये, बतलाओ मैं क्या करूँ?
यदि न करूँ तो संसार के सभी पाप सिर पर धरूँ।''

जल-सिंचन कर, और व्यजन कर, हाथ फेर कर,
किया भीम ने सजग उसे कुछ भी न देर कर।
फिर आश्वासन दिया और विश्वास दिलाया,
वचनामृत से सींच सींच हत हृदय जिलाया।
प्रण किया उन्होंने अन्त में कीचक के संहार का,
फिर दोनों ने निश्चय किया साधन सहज प्रकार का।

Hindi Premi

पर दिन कृष्णा सहज भाव से दीख पड़ी यों,
घटना कोई वहाँ घटी ही न हो बड़ी ज्यों।
कीचक से भी हुई सहज ही देखा देखी,
मानों ऐसी सन्धि ठीक ही उसने लेखी।
''सैरन्ध्री'' कीचक ने कहा, ''अब तो तेरा भ्रम गया?
मेरे विरुद्ध देखा न सब निष्फल तेरा श्रम गया?

अब भी मेरा कहा मान हठ छोड़ हठीली,
प्रकृति भली है सरल और तनु-यष्टि गठीली!''
सुनकर उसकी बात द्रौपदी कुछ मुसकाई,
मन में घृणा, परन्तु वदन पर लज्जा लाई।
कीचक ने समझा अरुणिमा आयी है अनुराग की,
मुँह पर मल दी है प्रकृति ने मानो रोली फाग की!

बोली वह—''हे वीर, मनुज का मन चंचल है,
किन्तु सत्य है स्वल्प, अधिक कौशल या छल है।
प्रत्यय रखती नहीं इसी से मेरी मति भी,
भूल गये हैं मुझे अचानक मेरे पति भी!
और तुम्हीं कहो, विश्वास मैं रक्खूँ किसकी बात पर?
अँधेरे में एकाकिनी रोती हूँ बस रात भर।

रहता कोई नहीं बात तक करने वाला,
तिस पर शयन-स्थान मिला है मुझे निराला।
कहाँ उत्तरा की सुदीर्घ तौर्यत्रिक शाला,
उसका वह विश्रान्ति-वास दक्षिण दिश वाला।
कोई क्या जाने काटती कैसे उसमें रात मैं?
पागल-सी रहती हूँ पड़ी सह कर शोकाघात मैं।''

कीचक बोला, ''अहा! आज मैं आ जाऊँगा।
प्रत्यय देकर तुझे प्रेयसी पा जाऊँगा।''
''अँधेरे में कष्ट न होगा?'' कह कर कृष्णा,
मन्दहास में छिपा ले गयी विषम वितृष्णा!
''रौरव में भी तेरे लिए जा सकता हूँ हर्ष से।''
यह कहकर कीचक भी गया मानो विजयोत्कर्ष से।

Hindi Premi

यथा समय फिर यथा स्थान वह उन्मद आया,
सैरन्ध्री की जगह भीम को उसने पाया।
पर वह समझा यही कि बस यह वही पड़ी है!
बड़े भाग्य से मिली आज यह नयी घड़ी है!
झट लिपट गया वह भीम से चपल चित्त के चाव में,
आ जाय वन्य पशु आप खिंच ज्यों अजगर के दाव में।

पल में खल पिस उठा भीम के आलिंगन से,
दाँत पीसकर लगे दबाने वे घन घन से!
चिल्लाता यह क्या शब्द-सन्धि थी किधर गले की?
आ जा सकी न साँस उधर से इधर गले की!
मुख, नयन, श्रवण, नासादि से शोणितोत्स निर्गत हुआ,
बस हाड़ों की चड़ भड़ हुई यों वह उद्धत हत हुआ!

लेता है यम प्राण बोलता है कब शव से?
पटक पिण्ड-सा उसे भीम बोले नव रव से—
"याज्ञसेनि, आ देख यही था वह उत्पाती?
किन्तु चूर हो गयी आह! मेरी भी छाती!"
हँस बोले फिर वे—"बस प्रिये, छोड़ मान की टेक दे,
आकर अपनी हृदयाग्नि से अब तू मुझको सेक दे!"

देख भीम का भीम कर्म भीमा कृति भारी,
स्वयं द्रौपदी सहम गयी भय-वश बेचारी।
कीचक के लिए भी खेद उसको हो आया,
कहाँ जाय वह सदय हृदय की ममता-माया?
हो चाहे जैसा ही प्रबल यह अति निश्चित नीति है,
मारा जाता है शीघ्र ही करता जो अनरीति है।

Hindi Premi

Hindi Premi

वक-संहार

Hindi Premi

Hindi Premi

श्रीगणेशाय नमः

वक-संहार

संचित किये रक्खे हुए,
शुक-वृन्द के चक्खे हुए,
कुछ फल कि जो थे दीन शवरी के दिये;
खाकर जिन्होंने प्रीति से,
शुभ मुक्ति दी भव-भीति से,
वे राम रक्षक हों धनुर्धारण किये।

आतिथ्य और अतिथि-कथा,
तेरी पुरानी वह प्रथा,
प्राचीन भारत, आज भी सु-नवीन है।
अब अतिथि भिक्षुक मात्र हैं,
अधिकांश अज्ञ अपात्र हैं;
भिक्षा बना व्यवसाय, तू भी दीन है।

हे देश होकर भी गृही,
तू था न यों स्वार्थ-स्पृही।
वह धर्म की ध्रुवता कहाँ तेरी बता?
अब भूत चाहे भूत है,
पर वह बड़ा ही पूत है।
इतिहास देता है हमें उसका पता।

Hindi Premi

वह विप्र का परिवार था;
शुचि लिप्त घर का द्वार था;
पूजा प्रसूनाकीर्ण थी दृढ़ देहली।
आगत अतिथियों के लिए,
शीतल पवन सुरभित किये,
मानो प्रथम ही थी पड़ी पुष्पांजली।

ऊपर लिखा ओंकार था,
फिर बँधा बन्दनवार था;
शोभित वहाँ पर शान्त सन्ध्यालोक था।
भीतर अजिर चौकोर था;
दालान चारों ओर था;
सारांश एक गृहस्थ का वह ओक था।

द्विज वर्य विघ्नों से रहित,
वेदी निकट, शिशु सुत सहित,
सानन्द सन्ध्योपासना था कर रहा।
परितृप्त गृह-सुख-भोग से,
मन्त्र-स्वरों के योग से,
मानो भुवन की भावना था हर रहा।

था पास ही तुलसीघरा,
जो वायु-शोधक था हरा,
सुमुखी सुता थी दीप उस पर धर रही।
बस ब्राह्मणी-निश्चल खड़ी,
मुकुलित किये आँखें बड़ी,
कैसे कहें, किस भाव से थी भर रही।

थी शान्ति पूरे तौर से,
ध्वनि सुन पड़ी तब पौर से,—
''गृह नाथ है? मैं अतिथि हूँ, सुत साथ हैं।''
झट ब्राह्मणी चौंकी, चली,
कह कर मधुर वचनावली,—
''आओ, अहा! हम सब विशेष सनाथ हैं।''

Hindi Premi

सचमुच सनाथ हुए सभी,
ऐसे मनुज देखे कभी!
कुन्ती सहित पाण्डव अतिथि थे वे नये।
लाक्षाभवन के साथ ही,
आशा जला कुरुनाथ की,
इस एकचक्रा नगर में थे आ गये।

सबने उचित स्वागत किया,
सुख से उन्हें आश्रय दिया,
मृग-चर्म-धारी ब्रह्मचारी पाण्डुसुत
थे शास्त्र अब भी सीखते,
माँ-युक्त थे यों दीखते,—
प्रत्यक्ष मानो पंच मख थे, पूर्ति युत!

रुचिकर वहाँ का वास था,
आदेश भी था व्यास का;
इससे वहीं रहने लगे वे प्रीति से।
भिक्षान्न ले आते स्वयं,
माँ को खिला खाते स्वयं,
फिर द्विज निकट अभ्यास करते रीति से।

द्विज और भी हर्षित हुआ,
उन पर समाकर्षित हुआ;
शास्त्राब्धि मन्थन अमृत-हित होने लगा।
विष-विघ्न भी जाता कहाँ,
वक रूप में निकला वहाँ,
वह धैर्य विप्र-कुटुम्ब का खोने लगा।

जिसमें न हो सबका निधन,
प्रति दिन पुरी से एक जन,
उपहार था उस दैत्य को जाता दिया।
अब विप्र की बारी पड़ी,
कैसी कठिन थी वह घड़ी,
भय-शोक से फटने लगा सबका हिया।

Hindi Premi

माँ-बेटियाँ रोने लगीं,
अति कातरा होने लगीं।
सुत-युक्त ज्ञानी द्विज सहज गम्भीर था।
पर मृत्यु का संवाद था,
मुख पर विशेष विषाद था;
बस, एक के हित अन्य आज अधीर था।

कुछ देर सन्नाटा रहा,
तब शान्ति से द्विज ने कहा,—
"सम्पूर्ण जीवन सौख्य मैं हूँ पा चुका।
भागी हुआ भव-भाग का,
अब तृप्त हूँ, गृह-त्याग का
मेरे लिए उपयुक्त अवसर आ चुका।

निश्चिन्त हो घर-वार से,
बन कर विरत, संसार से,
सम्बन्ध अपना आप ही मैं तोड़ता।
फिर आत्म-चिन्तन-लीन हो,
दृढ़ योग-मुद्रासीन हो,
मैं यह विनश्वर देह यों ही छोड़ता।

अब काम यह भी आयगी,
निज को सफल कर जायगी।
मैं आज जाऊँगा स्वयं वक के निकट।
तुम लोक शोक करो न यों;
मत हो अधीर डरो न यों;
जब प्राकृतिक है तब मरण कैसा विकट?

संसार में देखो जहाँ,
सबके विरोधी गुण वहाँ,
जल का अनल ज्यों, त्यों अनल का शत्रु जल।
फिर मृत्यु का ही क्या कहीं,
कोई विरोधी गुण नहीं?
मेरे मरण का शत्रु है जीवन अटल।"

Hindi Premi

तब ब्राह्मणी बोली—"रहो,
स्वामी न तुम ऐसा कहो।
जीती रहूँ मैं और तुम जाकर मरो।
इससे अधिक परिताप की,
क्या बात होगी पाप की,
कहकर इसे मुझको न धर्मच्युत करो।

उस मृत्यु के मुँह से कहीं,
कोई बचा सकता नहीं।
पति के लिए मरना स्त्रियों का धर्म है।
मैं किन्तु यदि यह कर सकूँ,
तुमको बचा कर मर सकूँ,
तो कौन-सा इससे अधिक शुभ कर्म है।

यदि तुम नहीं तो फिर यहाँ,
मेरा ठिकाना ही कहाँ?
होकर अनाथा और अबला लोक में—
मैं रह सकूँगी किस तरह;
क्या जी सकूँगी इस तरह,
यह वत्स भी क्या बच सकेगा शोक में,

निश्चिन्त, मर कर भी अभी,
तुम हो नहीं सकते कभी;
चिन्ता रहेगी हम अनाथों की सदा।
पर कर नहीं सकता हरण
गृह-शान्ति यह मेरा मरण;
कारण कि होगी दूर कुल की आपदा।

ज्यों ज्यों समय है जा रहा,
गुरु-भार सिर पर आ रहा,
सुत की सुशिक्षा का, सुता के ब्याह का।
कैसे करूँगी सिर पड़े
ये कार्य मैं दो दो बड़े?
क्या यत्न होगा लोक में निर्वाह का?

Hindi Premi

अबला जनों की एक दिन
है लाज रहनी भी कठिन,
जिनके लिए पर पुरुष-मय संसार है।
यदि वे अनाथा हों यहाँ,
तो फिर कुशल उनकी कहाँ?
प्रत्येक पद पर विपद पारावार है।

कुछ काम संकट में सरे,
इस हेतु धन-रक्षा करे,
दारादि की रक्षा करे धन से सदा,
आचार यह अति शिष्ट है,
पर, आत्म रक्षा इष्ट है;
धन से तथा दारादि से भी सर्वदा।''

मैं सुत-सुता भी जन चुकी,
कुल-बर्धिनी हूँ बन चुकी।
मेरे बिना अब हानि क्या संसार की?
इस हेतु जाने दो मुझे,
यह पुण्य पाने दो मुझे,–
जिससे कि रक्षा हो सके परिवार की।

मैं एक तुम में रत यथा,
तुम एक पत्नीव्रत तथा।
मैं जानती हूँ, तुम कहो न कहो इसे।
पर तुम पुरुष हो, धीर हो,
ज्ञानी, गुणी, गम्भीर हो।
तुम सह सकोगे मैं न सह सकती जिसे।

तब शील-सद्गुण-संयुता
कहने लगी यों द्विज-सुता,–
''हे तात! हे माँ, तुम सुनो मेरी कही–
सूझी मुझे वह युक्ति है;
जिससे सहज ही मुक्ति है;
आनन्दपूर्वक मैं बताती हूँ वही।

Hindi Premi

कल हो कि आज कि हो अभी,
पर जानते हैं यह सभी–
है दान की ही वस्तु कन्या लोक में।
तो त्याग तुम मेरा करो,
आपत्ति यों अपनी हरो।
मैं भी बनूँ कुल-कीर्ति-धन्या लोक में।

चिन्तामयी मानो चिता
होती सुता है हे पिता;
आपत्ति-सी है जन्म लेती गेह में।
सम्पत्ति होने दो मुझे,
यह दुःख खोने दो मुझे;
मरने मुझे दो आज अपने स्नेह में।

यदि तुम नहीं तो माँ नहीं,
तुम हो जहाँ वे भी वहीं।
माँ के बिना बच्चा कहाँ बच पायगा?
भाई गया तो क्या रहा,
सम्पूर्ण कुल का कुल बहा।
हा! कौन किसको पिण्ड फिर पहुँचायगा!

पर मैं मरूँ तो ग्लानि क्या,
सब तो बचेंगे हानि क्या?
इससे मुझे बलि आज होने दो न क्यों?
लघु लाभ का क्यों लोभ हो,
गुरु हानि का जो क्षोभ हो।
लघु हानि कर गुरु लाभ हो तो लो न क्यों?

मैं त्याग के ही अर्थ हूँ,
बच भी रहूँ तो व्यर्थ हूँ।
फिर क्यों न मुझको आज ही तुम त्याग दो?
यह और आगे की सभी
मिट जाएँ चिन्ताएँ अभी।
मैं माँगती हूँ, पुण्य का यह भाग दो।

Hindi Premi

सन्तान वह जो तार दे,
कुल-भार· आप उतार दे।
उसको सभी हैं चाहते इस भाव से।
निज-धर्म धारूँ क्यों न मैं,
कुल को उबारूँ क्यों न मैं?
तुम भी तरो यह विपदनद इस नाव से।''

द्विजवर्य फिर कहने लगा,
करुणाश्रु जल बहने लगा;—
''डालो न मुझको मोह करके मोह में।
यह कथन है समुचित तुम्हें;
है इष्ट मेरा हित तुम्हें;
पर लाभ क्या इस व्यर्थ विद्रोह में?

पाणिग्रहण जिसका किया,
सब भार जिसका है लिया,
कैसे उसे मैं मृत्यु-मुख में छोड़ दूँ?
होमाग्नि सम्मुख विधिविहित,
जिसने किया निज में निहित,
सम्बन्ध उस सहधर्म्मिणी से तोड़ दूँ?

ब्राह्मणि, सुनो, रोओ न यों,
धीरज धरो, खोओ न यों,
निज हित इसी में तुम भले ही मान लो।
जो आप वक की बलि बनो,
नव पुत्र-सा कुल-हित जनो।
पर धर्म मेरा क्या? इसे भी जान जो।

हा! और यह कुलपालिका,
मेरी विनीता बालिका,
निज मुख वृथा ही आँसुओं से धो रही।
यह आँख मेरी दूसरी,
द्विज पाँख मेरी दूसरी,
मेरे लिए है आप ही हत हो रही।

Hindi Premi

पर, पुत्रि इसमें सार क्या?
तेरा यहाँ अधिकार क्या?
तू हर सकेगी दूसरे घर की व्यथा।
अधिकार पालन मात्र का,
मुझको कि लालन मात्र का,
सचमुच परायी वस्तु है तू सर्वथा।

जो है धरोहर मात्र ही,
लेगा जिसे सत्पात्र ही,
क्या दैत्य को दूँ मैं उसे उपहार में?
तू ले रही निश्वास है,
पर, क्या तुझे विश्वास है
मैं पड़ सकूँगा इस अधम अविचार में?

जिसके लिए तू है बनी,
तेरा बनेगा जो धनी,
आज्ञा बिना उसकी तुझे भी स्वत्व क्या?
जो तू स्वयं कुछ कर सके,
मेरे लिये भी मर सके,
हा! शान्त हो, इस वन-रुदन में तत्व क्या?

अबला सदा ही रक्ष्य है,
नर-नीति का यह लक्ष्य है।
कैसे न रक्खूँ फिर भला निज नीति मैं?
ब्राह्मणि, तुझे क्या भय वहाँ,
ध्रुव धर्म्म का है जय जहाँ;
पाता नहीं तेरे लिये कुछ भीति मैं।

माना कि अबला नारियाँ
होतीं सहज सुकुमारियाँ;
पर, वे चला सकती नहीं संसार क्या?
करुणा-मयी, ममता-मयी,
सेवा-मयी, क्षमता-मयी,
वे कर नहीं सकती यहाँ उपकार क्या?

Hindi Premi

बहु कर्म-कुशला, गुणवती,
तू है कला—शीला, सती,
निर्वाह का क्या सोच सालेगा तुझे?
करके उचित परिचालना,
इस पुत्र को तू पालना;
होकर युवक यह आप पालेगा तुझे।''

बैठी बहन के स्कन्ध पर,
रक्खे हुए निज वाम कर,
कुल दीप-सा बालक था स्थिर वहाँ।
पाकर समय उसने कहा,
थी तोतली वाणी अहा!
''मालूँ अचुल को मैं अभी वह है कहाँ?''

थी शोक की छाई घटा,
उसमें उठी विद्युत्छटा।
रोते हँसे हँसते हुए रोये सभी।
तब ब्राह्मणी ने सिर धुना,
वह शब्द कुन्ती ने सुना।
वह वायु-गति से आप आ पहुँची तभी।

''यह शोक कैसा है अरे!
तुम लोग क्यों आँसू भरे?
आपत्ति क्या तुम पर अचानक आ पड़ी।
क्या भय उपस्थित है कहो,
आत्मीय हूँ मैं भी अहो!
जो कर सकूँ, तैयार हूँ मैं हर घड़ी।''

तब विप्र ने वक की कथा,
अपनी तथा सबकी व्यथा,
उसको सुनाई दुःख से, निर्वेद से।
सारी अवस्था जानकर,
अति दुःख मन में मान कर,
कहने लगी कुन्ती वचन यों खेद से;—

Hindi Premi

"हा! देश यह असहाय है,
मरता, न करता हाय है!
मुझसे कहो, राजा यहाँ का कौन है?
कुछ यत्न वह करता नहीं;
कर्त्तव्य से डरता नहीं;
मरती प्रजा है और रहता मौन है।

यदि भीरु वह दुर्बलमना,
तो व्यर्थ क्यों राजा बना?
कर दे रहे हो तुम उसे किस बात का?
राजा प्रजा के अर्थ है,
यदि वह अपटु, असमर्थ है,
कारण वही है तो स्वयं उत्पात का।

सबके सदृश उस भूप की,
उस पाप के प्रतिरूप की,
वक के लिए बारी कभी पड़ती नहीं?
जूझे कि निज पद त्याग दे;
सबके सदृश वलि भाग दे;
न्यायार्थ क्यों उससे प्रजा लड़ती नहीं?

राजा प्रजा का पात्र है,
वह लोक-प्रतिनिधि मात्र है।
यदि वह प्रजा-पालक नहीं तो त्याज्य है।
हम दूसरा राजा चुनें,
जो सब तरह अपनी सुनें;
कारण, प्रजा का ही असल में राज्य है।

पर है यहाँ की जो प्रजा,
जो है बनी बलि की अजा;
वह भीरु है, फिर ठीक ही यह कष्ट है।
डालें नहीं तो यदि अभी,
भर धूल मुट्ठी भर सभी;
तो धूल में मिल जाय वक, सो स्पष्ट है।

Hindi Premi

जो हो, कहो हे भूमिसुर,
तुम छोड़ कर यह पापपुर,
अन्यत्र ही न चले गये कुल युक्त क्यों?
पृथ्वी पृथुल है, पार क्या?
ऐसा यहाँ था सार क्या?
जाते कहीं होते न तो वक-मुक्त यों।"

द्विज ने कहा—(कुन्ती रुकी)
"जो बात निश्चित हो चुकी,
किस भाँति मैं उससे भला मुँह मोड़ता?
अच्छा बुरा जैसा सही,
वक-संग समझौता यही,
सबने किया है, किस तरह मैं तोड़ता?

सबको विपद में छोड़कर,
किस धर्म-धन को जोड़कर,
भद्रे, यहाँ से भाग जाता हाय! मैं?
सबकी दशा जो हो यहाँ,
मैं भागता उससे कहाँ?
निज हेतु क्या सब पर करूँ अन्याय मैं?

जाकर रहे कोई कहीं,
यह देह रहने की नहीं;
आत्मा परन्तु कभी कहीं मरता नहीं।
जो कर्म तत्प्रतिकूल है,
करना उसे फिर भूल है।
मैं धर्म के प्रतिकूल कुछ करता नहीं।

मैं भाग सकता था यथा,
सब भाग सकते थे तथा;
रहती व्यवस्था ही कहाँ से फिर यहाँ?
इस मृत्यु में फिर भी नियम—
है, और सबके हेतु सम;
पर अव्यवस्थित त्राण पा सकते कहाँ?

Hindi Premi

राजा विवश है क्या करे,
यदि वह लड़े भी तो मरे।
वल है विपुल वक का, प्रजा लाचार है।
उद्योग-रत सब लोग हैं,
पर क्या सहज शुभ-योग हैं?
यों एक के सिर नित्य सबका भार है।

जन एक देता प्राण है,
होता सभी का त्राण है;
सबके लिए निज नाश करना भी भला।
फिर किस तरह मैं भागता,
निज जन्मभू को त्यागता?
दस भाइयों के साथ मरना भी भला।''

''पर मरण क्या उसका भला,—
तुष-तुल्य जो धीरे जला?
उसकी अपेक्षा भभक जाना ठीक है।
है तेज तो उसमें तनिक,
चकचौंध होती है क्षणिक।
हा! एक ही सबकी तुम्हारी लीक है!

द्विज देवता, मैं क्या कहूँ,
पर, मौन भी कैसे रहूँ?
निज जन्मभू की भी दुहाई व्यर्थ है।
क्या जन्मभू है हाय! सो,
निज मृत्युभू बन जाय जो;
विस्तीर्ण वसुधा भर हमारे अर्थ है।

पर शक्ति हममें चाहिए,
अनुरक्ति हममें चाहिए;
निर्बल जनों का विश्व में कोई नहीं।''
कुन्ती सिहर कर चुप हुई,
(घहरी घटा फिर घुप हुई)
भर नेत्र आये किन्तु वह रोयी नहीं।

Hindi Premi

धर धैर्य फिर कहने लगी,
वाणी परम प्रियता-पगी;–
"कुछ हो, अभी निश्चिन्त तुम वक से रहो।
बस है तुम्हारे एक सुत,
पर, पाँच हैं मेरे अयुत;
दूँगी तुम्हें मैं एक उनमें से अहो।"

इस बार दो आँसू चुए,
सब लोग विस्मित-से हुए;
द्विज ने कहा–"यह क्या अरे! यह क्या शुभे!
तुम अतिथि, मुझको मान्य हो,
तेजोनिधान, वदान्य हो;
माना तुम्हें, कण्टक हमारे हैं चुभे।

पर धर्म क्या मेरा यही,
सह क्या इसे लेगी मही?
आश्रय दिया था क्या तुम्हें बलि के लिए?
मुझको, न तुमको, भी सुनो,
यह उचित है, समझो गुनो।
सम्भव नहीं यह कृति स्वयं कलि के लिए।"

"हे विप्र"–कुन्ती ने कहा,
"यह भूमि है सर्वसहा।
कलि और कृत युग हैं यहाँ देखो जभी।
मिलकर सदैव बुरा-भला।
संसार जाता है चला।
होते बुरे न भले सभी जन हैं कभी।

निज धर्म तुम हो जानते;
हमको बहुत कुछ मानते;
निज धर्म मैं भी जानती हूँ फिर कहो
जिसने हमें आश्रय दिया,
सन्तुष्ट सब विध है किया,
उपकार उसका आज क्या हमसे न हो?"

Hindi Premi

''उपकार''–द्विज बोला वहीं–
''क्या प्राण देकर भी?–नहीं,
जो प्राण से भी प्रिय अधिक है सृष्टि में,
वह पुत्र बलि देकर? हरे!
क्या कह रही हो तुम अरे!
यह तेज कैसा है तुम्हारी दृष्टि में?

देवी, कहो तुम कौन हो,
क्यों मूर्ति बनकर मौन हो?
दृढ़ता नहीं देखी कहीं ऐसी कभी।
अच्छा रहो, यह तो सुनो,
तुम कौन सुत दोगी? चुनो;
दोगी तथा कैसे सुनूँ यह तो अभी?''

''हे विप्रवर, पूछो न यह।''
कुन्ती सकी आगे न कह।
द्विज-पुत्र घुटनों में लिपट कर था खड़ा।
उसको उठाकर गोद में,
मुँह चूम करुणाऽमोद में,
बोली कि–''मेरे वत्स, तू बन जा बड़ा।''

माँ बेटियाँ अब रो उठीं,
आकुल अधीरा हो उठीं,
कहने लगी सविषाद विप्र कुटुम्बिनी,–
''यह शिशु तुम्हारा ही रहे,
शत वार तुमको माँ कहे।
हो रक्षिका इसकी तुम्ही, मुख-चुम्बिनी।''

द्विजबालिका फिर कह उठी,
घृत-पुत्तली गल, बह उठी,–
''पर हेतु आय, तुम विपद में क्यों पड़ो?''
''बेटी, बड़ा सुख है यही।''
यह बात कुन्ती ने कही–
''तुम भी सदा पर-संकटों से यों लड़ो।

Hindi Premi

भोजन बनाओ, अब उठो,
निज कार्य साधो, सब उठो;
तुमको अभय-दायक वचन मैंने दिये।
मेरे लिये चिन्ता तजो,
भगवान को निर्भय भजो;
प्रभु जो करेगा सब भले के ही लिए।''

पाकर अभय का दान भी,
उसको अयाचित मान भी,
द्विज धर्म-भीरु न पा सका सन्तोष कुछ।
जिसमें परायी हानि है,
उस लाभ में भी ग्लानि है;
भरता नहीं है स्वार्थ से शुभ-कोष कुछ।

उसने कहा—''हे त्यागिनी,
हे सर्वथा शुभ भागिनी,
उपकार भी सहनीय होना चाहिए।
मैं आज इससे दब रहा,
फिर जाय यह क्यों कर सहा,
हाँ भार भी वहनीय होना चाहिए।

सब सुत तुम्हारे धन्य हैं;
गुण-रूप-शील अनन्य हैं;
बल-वीर्य, विद्या-बुद्धि से वे हैं भरे।
वे पाँच पंच बने रहें;
क्यों व्यर्थ यह बाधा सहें;
उनको बहुत से कार्य करने हैं हरे!''

''तो एक यह भी कार्य है,
यह भी उन्हें अनिवार्य है,
आशीष दो कर लें इसे भी सिद्ध वे।
या तो असुर को मार कर;
हों धन्य पुर-उपकार कर;
या कीर्ति लेकर सूर्य-मण्डल विद्ध वे!

Hindi Premi

यह कौन ऐसा भार है,
जिसका विशेष विचार है?
यह है हमारी अल्पमात्र कृतज्ञता।
कैसे न फिर यह व्यक्त हो,
तुम विप्रवर, न विरक्त हो;
कर जायँ क्या हम जानकर भी अज्ञता?"

यों प्रश्न-पूर्वक निज कथा
निःशेष कर मानो वृथा,
कुन्ती विना उत्तर लिए निर्गत हुई।
ठहरी न वह, न ठहर सकी,
अति कार्य कर मानो थकी;
बाहर अटल थी किन्तु भीतर हत हुई।

आ शीघ्र अपने स्थान पर,
सिर रख स्वभुज-उपधान पर,
वह लेटकर कहने लगी यों आप ही—
"हे प्राण, तुम पाषाण हो,
अब आप अपने शरण हो,
हा! दैव मेरे अर्थ है सन्ताप ही।

केवल कहा ही है अभी,
अविशिष्ट है करना सभी,
पर मन, अभी से तू विकल होने लगा।
ऐसे चलेगा काम क्या,
तेरा रहेगा नाम क्या?
आरम्भ में ही हाय! तू रोने लगा।

स्वामी गये शिशु छोड़कर,
राजत्व उनका जोड़कर,
वह भी गया, अब हाय! क्या सुत भी चले?
प्रभु, क्यों मुझे इतना दिया,
जो फिर सभी लौटा लिया;
छल कर मुझे क्यों आप अपने से छले?

Hindi Premi

जिनके यहाँ दो दिन रही,
उपकार जिनका है यही,
मरने न जाने दे रही हूँ मैं उन्हें।
फिर वक-निकट चिरभक्ति-मय,
जाने मुझे देंगे तनय—
जो गर्भ से ही से रही हूँ मैं उन्हें?

भगवान, मैं ही किस तरह;
जाने उन्हें दूँ इस तरह;
क्या मारने को ही उन्हें मैंने जना?
प्रभुवर, परीक्षा लो न यों;
तुम वज्र-निर्दय हो न यों;
अबला सहा दयनीय हूँ मैं मृदुमना।

तुम किन्तु निश्चय कर यही,
यदि हो रहे हो आग्रही,
स्वीकार है तो मैं जियूँ चाहे मरूँ।
ले लो प्रभो, सब जो दिया,
मैंने हृदय दृढ़ कर लिया;
पर यह बता दो क्या करूँ—मैं, क्या करूँ?''

कर्त्तव्य कुन्ती कर चुकी,
वह विप्र-विपदा हर चुकी;
वात्सल्य-वश अब हो उठी विचलित वही।
जो थी शिला-सी निश्चला,
अब रुँध गया उसका गला;
वह देर तक जल-मग्न-सी लेटी रही।

वह लीन थी भगवन्त में,
हलका हुआ जी अन्त में;
हाँ, बढ़ गयी अत्यन्त ही गम्भीरता।
जब वीर पुत्रों से मिली;
तब फिर तनिक काँपी-हिली।
पर, अन्य क्षण मानो प्रकट थी धीरता!

Hindi Premi

जो था हुआ सब कह गयी,
सुत-समिति विस्मित रह गयी।
बोले युधिष्ठिर तब कि "माँ, यह क्या किया?
पर हेतु मरने के लिए,
निज सुत, विना अकधक किये,
किस भाँति भेजेगा तुम्हारा यह हिया?

मुझको समझ पड़ता नहीं।"
माँ ने दिया उत्तर वहीं,—
"यह हृदय ऐसा ही बना है क्या कहूँ?
ऐसा जटिल, पूछूँ किसे;
विधि ने बनाया क्यों इसे,
अबला रहूँ मैं और हा! सब कुछ सहूँ!

यह दैव का अन्याय है;
पर वत्स, कौन उपाय है?
पूछो न तुम इस हृदय की कुछ भी दशा।
रण में मरण तक के लिए,
पति-पुत्र को आगे किये,
देती विदा हैं गर्व कर हम कर्कशा।

फिर भी हृदय फटता नहीं,
(उलटा प्रमद अटता नहीं।)
पर, दूसरे के दुःख में मेरा हिया,
करुणार्द्र होता है स्वयं,
शिशु-तुल्य रोता है स्वयं;
श्री व्यास ने इसको यही शिक्षण दिया।"

सब पाण्डु-सुत गद्गद हुए,
आनन्द से उन्मद हुए,—
"समुचित हमारी जन्मदा को है यही।
हमने परीक्षा ली वृथा।"
हँसकर पुनः बोली पृथा—
"बेटा, परीक्षा तो नियति ही ले रही!"

Hindi Premi

फिर हो गयी गम्भीर वह,
जिसमें कि हो न अधीर वह;
माना न किन्तु तथापि माँ का अश्रुजल।
दो बूँद बहकर ही रहा,
सहदेव ने तब यों कहा,–
''बलि दो मुझे माँ, जन्म मेरा हो सुफल।''

''पुनरपि परीक्षा, हाय रे!
कैसे सहा यह जाय रे!''
उसने कहा, ''बेटा, तुम्हें बलि दूँ? रहो;
दो पुत्र माद्री ने जने;
दो ही रहें मेरे बने।
बस, इस विषय में अब न तुम कुछ भी कहो।''

तब वीर अर्जुन ने कहा,–
''माँ तुम मुझे भेजो, अहा!
सब जानते हैं 'पार्थ' मेरा नाम है।''
पर भीम ने रोका उन्हें;
सप्रेम अवलोका उन्हें–
''ठहरो तनिक तुम, भीम का यह काम है।

लघु तुम, तथा गुरु आर्य हैं;
क्या ये तुम्हारे कार्य हैं?
माँ, ठीक है बस, किन्तु तुम क्यों रो उठीं?
समझा, समझ में आ गया,
कर्त्तव्य कृतिपन पा गया,
वात्सल्य-वश अब हाय! विचलित हो उठीं।

पर माँ, न तुम कुछ भय करो,
निज भीम का जय जय करो;
इन बाहुओं में बल नहीं, निस्सीम क्या?
इन युग्म के रहते हुए,
वक-मुष्टियाँ सहते हुए,
पशु-तुल्य मरने को हुआ है भीम क्या?

Hindi Premi

वक से बहुत जन हैं मरे,
उसने लिए बहु ओसरे;
बारी उसी की जान लो, अब आ गयी।
बलवान कम न हिडिम्ब था,
यम का पृथुल प्रतिबिम्ब था;
पर, शत्रुता मेरी उसे भी खा गयी।

सबको यहाँ अब हर्ष हो,
मेरा नया उत्कर्ष हो;
समझो इसे हे अम्ब, तुम शुभ योग ही।
निष्फल निरख कर निज गदा,
कहता यही मैं था सदा,—
'क्या भाग्य में है हाय! भिक्षा-भोग ही?'

खुजली मिटेगी कल जरा,
हो जायगा फिर बल हरा;
दुर्दान्त पापी दैत्य मारा जायगा।
पक्वान्न जो वक के लिए,
बलि-संग जाते हैं दिये;
माँ, स्वादु उनका भी मुझे ही आयगा!"

हँसती तथा रोती हुई,
सुध-बुध सभी खोती हुई,
कहने लगी कुन्ती कि—"सब जीते रहो,
मेरी तुम्हीं से आस है,
मन में बड़ा विश्वास है;
तुम नित नये यश का अमृत पीते रहो।

सब शत्रुओं को मार कर,
पितृ राज्य का उद्धार कर,
भोगो सभी सुख-भोग मिलकर सर्वदा।
गुण-गण तुम्हारे गेय हों,
अनुपम चरित चिर ध्येय हों,—
दृष्टान्त हो सम्पद-विपद में तुम सदा!"

Hindi Premi

प्रेमाश्रुओं की सृष्टि से,
दर्शन न पाकर दृष्टि से,
पाँचों सुतों को युग करों से घेर कर,
कुन्ती परम प्रमुदित हुई,
मानो उषा समुदित हुई,
सरसीरुहों पर निज कनक-कर फेर कर।

इसके अनन्तर किस तरह,
(हरि मत्त करि को जिस तरह)
वक-वध वृकोदर ने किया पर दिन वहाँ,—
लिखते नहीं अब हम इसे,
पढ़ना यही प्रिय हो जिसे;
कृपया क्षमा कर दें हमें वह जन यहाँ।

Hindi Premi

शक्ति

Hindi Premi

Hindi Premi

मंगलाचरण

भावुक, भव-भय छोड़ दो,
सीता भजो सभक्ति।
यातु वंश विध्वंसिनी
पातु सौम्य शुभ शक्ति ॥

Hindi Premi

Hindi Premi

श्रीगणेशाय नमः

शक्ति

"अमर परन्तु विफल जीवन को वार वार धिक्कार;
दुष्ट दैत्य गण मचा रहा है दारुण अत्याचार।
कुछ कर सकते नहीं, विवश हैं, बैठे हैं हम हार;
छिने हाय! घर-वार हमारे, छिने सभी अधिकार।
अमर न होते तो मर मिटते, क्यों सहते यह लाज?"
अति अधीर हो सोच रहे हैं देव दुःख से आज।

"दैत्य-दास हो जायँ देव हा! पाप-पुण्य का प्रास;
छिना हमारा यज्ञ-भाग भी, जो है मुँह का ग्रास।
भूखों मरें, फिरें हम मारे, भोगें ऐसे त्रास,
सह सकता है कैसे कोई अपना इतना ह्रास?
भरी घोर हिंसा दनुजों में, जो हैं नीचनिसर्ग।
लौटा देंगे वे न दया कर हमें हमारा स्वर्ग!"

"और न लौटा लावेगा यह अपना विवश विलाप;
सोचो वह उपाय अब जिससे काट सको ये पाप।
जो निरस्त्र हैं शस्त्र उन्हीं का होता है अभिशाप,
भोगेंगे निज वर-दानों के फल सदैव हम आप।
रखते नहीं दान में हम जो शत्रु-मित्र का भेद।
वही महत्त्व हमारा, उसका नहीं हमें कुछ खेद॥

Hindi Premi

पर जो दे सकते हैं इतना, होने पर सन्तुष्ट,
होते हैं जिससे दानव भी प्रबल और यों पुष्ट,
कर न सकेंगे क्या इतना भी होने पर वे रुष्ट,
जिससे स्वयं उन्हीं का ताड़न कर न सकें ये दुष्ट।
मुँह माँगा दे सकते हैं जो पाकर तप से तोष।
ले सकते प्रतिशोध नहीं क्या करके वे ही रोष?"

"ऐसा है तो फिर देवों का नहीं कहीं कुछ काम;
रहे न लज्जा देने वाला उनका निर्बल नाम।
आज हमारे देव-जन्म का है यदि यह परिणाम,
तो उस श्रम से वृद्ध पितामह, अच्छा था विश्राम!
हरे, जनार्दन, आप हमारा सहें व्यर्थ क्यों भार?
कर दें हे हर, आप इसी क्षण सुर-गण का संहार!"

"रहे न बाँस, बजे न बाँसुरी सन्नाटा छा जाय!
फिर क्या हमें—हमारा सुरपुर स्वर्ग रहे या जाय।
दैत्य-राज्य हो जाय भले ही ऐसा युग आ जाय;
दीन देव-कुल सब झगड़ों से बस छुट्टी पा जाय।
यदि हम नहीं, रहे या कोई जाय, हमें क्या सोच?
मिटें हमारे साथ हमारे भय-लज्जा-संकोच।"

"—'मरे और झंझट से छूटे' यह है हारी बात,
हों तो हों आघात, डरो मत, करो स्वयं प्रतिघात।
जियो और जूझो, जीवन का चिह्न यही हे तात!
देव यत्न ही दूर करेंगे दैत्यों का उत्पात ॥
जियो अर्थ के अर्थ, धर्म के अर्थ, काम के अर्थ,
जियो मुक्ति के अर्थ और निज अमर नाम के अर्थ।

संघ-शक्ति ही कलि-दैत्यों का मेटेगी आतंक,"
इतना कहते कहते हरि की हुई भृकुटि कुछ वंक।
कृपा है कि यह कोप? काल यों जब तक हुआ सशंक,
निकला तब तक उनके तनु से तेज एक अकलंक।
ब्रह्म, रुद्र इन्द्रादि सुरों के तनु से भी तत्काल—
निकले ज्योतिःपुंज और सब—मिले उसी में हाल।

Hindi Premi

एक चंचला कर देती है चकाचौंध सर्वत्र;
फिर क्या कहना, जब हों शत शत तड़िताएँ एकत्र?
पड़े महा ज्वाला के ऊपर जैसे सूखा पत्र,
उद्भासित हो छिपा उसी में नभ का छोटा छत्र!
सबकी एक प्रदीप्ति-पूर्ति वह, सबकी एक स्फूर्ति;
सबकी वह सम्मिलित शक्ति थी महा शक्ति की मूर्त्ति।

रह सकता है कोई तम क्या, जागे जब आलोक?
तत्क्षण दूर हुए, देवों के भय-चिन्ता-दुख-शोक।
प्रत्यय हुआ, हुए वे गद्गद, सके स्वभक्ति न रोक;
'महा-शक्ति की जय' इस ध्वनि से गूँजे तीनों लोक।
व्यक्ति व्यक्ति में शक्ति अलौकिक रहती है सर्वत्र,
सम्भव है क्या विश्व शक्ति का वर्णन फिर एकत्र?

देवी में दर्शित था सबका तेजःपूर्ण प्रताप,
चरणों में विधि, हाथों में हरि, मुख में हर का आप।
काल-रूप-मय था विशाल वह उनका केश-कलाप,
अंगुलि और नखों में थीं बसु-विभाकरों की छाप।
माँ के पीन पयोधर युग थे इन्दु-सुधा-परिपूर्ण;
और अग्नि-तेजोमय उनके दृग थे विषम-विघूर्ण।

दोनों सन्ध्याओं के गतिमय थे उनके भ्रू भंग;
उठते थे उनकी त्रिवली में क्या ही त्रिगुण-तरंग!
वज्रि-विभा में था अदृश्य-सा उनको कटि का ढंग,
भिन्न-भिन्न सुरतेजो मय थे उनके सारे अंग।
धनद-समीर-प्रजापति-पाशी-भू-भा के अवलम्ब,
नासा-कर्ण-दशन थे उनके जंघा और नितम्ब।

चक्रपाणि ने चक्र, शम्भु ने शूल, काल ने दण्ड,
यम ने चर्म-कृपाण, वरुण ने निज नव पाश प्रचण्ड,
स्वयं पुरन्दर ने पवि, रवि ने रोमच्छवि अविखण्ड,
हविवहन ने शक्ति, पवन ने शर, निषंग, कोदण्ड,
यक्षण ने गदा, गरुड़ ने वेग-रूप बहु पंख,
सुरगज ने घण्टा, जलनिधि ने दिया उन्हें जय-शंख।

Hindi Premi

क्षीर-सिन्धु ने दिये रत्नमय बहु वस्त्रालंकार—
दिव्य दुकूल, किंकणी, कंकण, कुण्डल, नूपुर हार।
वासुकि ने मणिमाल्य, धरणि ने माथे का शृंगार,
दीख पड़ा एकत्र विश्व का विपुल विभव-विस्तार।
बना किरीट कलाधर उनका आधा अंगसमेंट;
की चिर विकच पद्म की पगड़ी सुर-शिल्पी ने भेंट।
दिया विश्वकर्मा ने उनको एक परशु भी और,
और एक कण्टक, जो कर दे निष्कण्टक सब ठौर।
वाहन सिंह दिया हिमगिरि ने, जो सबका सिरमौर;
खींची वनदेवी ने उन पर हरिचन्दन की खौर।
किया प्रजापति ने माला से देवी का सम्मान;
अभिमन्त्रित निजनीर-कमण्डलु विधि ने किया प्रदान।

अणु अणु से हो गया अचानक कितना उच्च स्तूप?
पुण्य-स्तम्भ, पापपशुओं की बलि का अध्वर यूप।
कैसा सुन्दर, कैसा भीषण, था देवी का रूप!
इधर अमृत की चारु चन्द्रिका, उधर प्रलय की धूप!
जिसका पक्ष करें वे कुछ भी उसका भक्षक कौन?
कुछ विपक्ष में हों वे जिसके उसका रक्षक कौन?

प्रकटी एक साथ वह सत्ता जो थी विश्व-विकीर्ण;
जिसके बिना आज निर्जर थे जर्जर किंवा जीर्ण।
सब देवों की एक देवता हुई अहा! अवतीर्ण;
"मा भैः! मा भैः!" गिरा गगन में होती थी उद्गीर्ण।
जगत्तारिणी की जय,—जय, जय गूँज उठा जय-नाद;
भागा दूर,—गया दैत्यों में सब भय और विषाद।

गाने लगे गर्व से सुर-मुनि महा शक्ति के गीत;
"यह क्या, यह क्या?" कह कर दानव हुए सशंक, सभीत।
सुरपुर में भी उनके उर में रहा रसातल-शीत;
किन्तु तुरन्त हुए वे प्रस्तुत, हार हो कि हो जीत।
गरज उठा महिषासुर,—बोला—"सुन लें मेरे शूर,
जो अपने कण्टक हों उनको करो सदा को दूर।

Hindi Premi

निज शिर उठा सकें फिर वैरी, यह कैसा अन्धेर?
न दो उन्हें अवकाश वीरवर, बढ़ो, करो मत देर।
अब के कोई भाग न पावे, बाँधो सबको घेर;
बन्दी बनें हमारे सारे वासव, वरुण कुबेर!
छल हो, बल हो या कौशल हो, सब हैं रण में धर्म;
शत्रु-नाश के लिए नहीं है निन्दित, कोई कर्म!''
वास्कल, विडालाक्ष, असिलोमा, चामर और उदग्र,
गरज उठे सब असुर सुसज्जित कर चिक्षुर को अग्र।
बढ़े ससैन्य परन्तु हुए वे सब विस्मय से व्यग्र—
देखी जब एकत्र उन्होंने सुरकुल-शक्ति समग्र।
गरजी अट्टहास कर अम्बा देख ठट्ट के ठट्ट;
दहल उठे जल थल अम्बरतल घटा विकट संघट्ट!

क्षण भर को हो गये शत्रु सब किंकर्त्तव्य विमूढ़;
समझे कौन महामाया की माया गर्भित गूढ़?
कामरूप घन पर बिजली-सी साहस-सिंहारूढ़;
टूट पड़ी दैत्यों पर दुर्गा अपने बल से व्यूढ़।
झुलस गयीं असुरों की आँखें उनको निकट निहार,
आँख मूँद कर तब वे मानों करने लगे प्रहार।

शक्ति एक थी गण अगणित थे, झुके झुण्ड के झुण्ड,
उधर असुरगण भी असंख्य थे भीषण विकृत वितुण्ड।
हुंकारित होते थे मानो कटकर भी अरिमुण्ड,
अपनों को भी मार रहे थे अन्धे होकर रुण्ड!
प्रकृत विकृत रिपु द्विगुण विकृत थे, होकर रण में क्रुद्ध।
हँस-हँस लीलामयी सकौतुक करने लगी सुयुद्ध।

पानी की भी धार काट गिरि हो जाती है पार,
बहने लगी समर में खरतर सजल सार की धार।
बहने लगा साथ ही उसके शोणित उष्ण अपार,
माता मही फूलती फलती है क्या इसी प्रकार?
रण में मृत्यु वरण करते हैं जीव इसी के हेतु—
मरण-भूमि पर ही उड़ता है जीवन का जय-केतु!

Hindi Premi

मेरु-शिखा पर मेघ-वृष्टि-सम बरसा कर लक्ष,
सुर-प्रहारी चिक्षुर दानव आया शुभा-समक्ष।
पक्ष रक्षिणी ने अलक्ष्य काटे वे पर-पक्ष,
काट चुका रिपु-रथ पहले ही क्या उनका कर दक्ष!
जब तक करे प्रहार सिंह पर शत्रु चलाकर शूल,
किया शूल के साथ शिवा ने उसको ही निर्मूल।
बरसे फूल, किया देवों ने नभ में निज जय-नाद,
गरज उठा वाहन पंचानन देकर शुभ-सम्वाद।
शिखा शिवा थी, हरि दावानल,—अरिवन का उन्माद,
लेने लगा स्वयं बढ़ बढ़ कर सभी ओर का स्वाद!
जहाँ देखता वह असुरों की भारी भारी भीड़,
मुख से और नखों से उसको देता चिढ़ कर चीड़।

गजारूढ़ चामर तब आया अति पामर अति क्रूर,
देख सामने करि अरि अपना टूट पड़ा हरि शूर!
बिखर गये माथे के मोती हुआ वार भरपूर
करने चला दैत्य बरछी से तब निज कण्टक दूर।
किन्तु सिंह ने किया कूदकर पहले अपना त्राण,
थप्पड़ मार मार फिर तड़ तड़ तोड़े जड़ के प्राण।

बढ़ा असुर उद्धत पर उसको लिया गदा ने चाट,
चढ़ा कराल, हाल ही उतरा वह घूँसे के घाट।
दिया चपल वास्कल को पल में भिन्दिपाल ने काट,
शत्रु-रुधिर-सागर देवी ने दिया उन्हीं से पाट।
उग्र उदग्र आदि अरि आये एक एक कर सर्व,
किन्तु गये तत्क्षण यमपुर को पाकर शोणित पर्व!

अंजन-गिरि था या महिषासुर, गह्वर गूँज गराज?
शिखर थे कि युग शृंग समुन्नत, लता-गुल्म या साज?
"अरे महिष, मुझ पर चढ़ने को उत्सुक हैं यमराज,
पूरी कर दूँगी मैं उनकी वह अभिलाषा आज।"
ज्वालामुखी बना अब दानव करके क्रोध कराल—
"अरी चण्डि, यम कौन आप ही मैं हूँ तेरा काल!"

Hindi Premi

पटके पैर दैत्य दुर्द्धर ने धँसी मेदिनी मूक;
पटकी पूँछ जलधि चिल्लाया निज मर्यादा चूक!
उछला असुर—हुए शृंगों से मेघों के सौ टूक,
मारी जो हुंकार महिष ने उठी प्रलय की हूक!
होने लगे चराचर चड़मड़ स्वस्थानों से त्रस्त,
महाशक्ति के सारे गण भी काँपे भय-सन्त्रस्त!
"जब तक मेरा खड्ग न कर ले तेरा शोणित-पान,
तब तक और गरज ले क्षण भर अरे अधम, अज्ञान!"
यह कहकर फेंका देवी ने उस पर पाश महान,
बाँधा उस नर-पशु को उसमें, खींचा उसको तान,
तब बन गया सिंह मायावी टूट पड़ा मुँह फाड़,
जिसकी कड़ी बड़ी डाढ़ों से फूटें-फटें पहाड़।

कान बधिर हो उठे श्रवण कर उसका विकट प्रलाप,
छोड़ा तत्क्षण ही काली ने कठिन कलम्ब-कलाप।
मर मर कर भी जी उठता है प्रेत रूप वह पाप,
रखता है सौ रूप अहो अघ एक अकेला आप।
बना सिंह से गज महिषासुर फैलाकर तब शुण्ड,
लगा खींचने धर देवी के प्रिय मृगेन्द्र का मुण्ड।

काट दिया तब शर्वाणी ने उसका शुण्डा दण्ड,
प्रकट हुआ अब फिर वह पामर बनकर महिष प्रचण्ड।
हँसी भवानी, बोली—"कब तक भटकेगा यों भण्ड,
कर देगा यह खड्ग खिलाकर तेरे सौ सौ खण्ड।
मरने को प्रस्तुत है पापी, और खेल क्षण मात्र,
धारण कर, करता है कितने तू ये अपने गात्र।

रक्खे तूने रूप बहुत से अल्पकाल के बीच,
किन्तु रहा पशु का पशु फिर भी—वही नीच का नीच।
(भरी हुई है भीतर जब तक वह कल्मष की कीच,
सोने का बनकर भी तब तक है पशु ही मारीच।)
पाया मैंने आज सहज ही यह अलभ्य आखेट;
होगी तृप्त अभी रणचण्डी पाकर तेरी भेट।"

Hindi Premi

"प्रकटे अपने प्रकृत रूप में वह पशुता भी धन्य,
धिक् है वह नरता जो दीखे आप अन्य की अन्य।"
यह कहकर हँस उठा गर्व से महिष स्वयं मतिमन्य,
हँसी शुभा भी बोली उससे—"यह सच है रे वन्य!
तेरी युक्ति घटी तुझ पर ही शुक्र-शिष्य, तू सोच,
नर होकर भी करता है तू पशुता निस्संकोच।"
क्षुब्ध हुआ दानव फिर गरजा हुआ धैर्य्य से त्यक्त—
"रिपु-रूपी तृण के चरने को है यह पशुता व्यक्त॥"
मुसकाती ही रही भवानी देख रहे थे भक्त—
"दाँतों में तृण रख तो तुझको छोड़ू समझ अशक्त॥"
उछला दानव—"मेरे तृण हैं चण्डी, तेरे बाल,
धारण कर सकता हूँ यह मैं तृण क्या शैल विशाल।"

शैलों पर ही शृंग सुने हैं पर यह उलटी बात,
रख शृंगों पर शैल महिष ने किया घोर आघात।
आवे जब तक अपने ऊपर वह विपत्ति का व्रात
देवी ने बाणों से उसका कण-कण किया निपात!
छोड़े तब दानव ने उन पर खरतर सौ सौ शस्त्र,
किन्तु सभी निष्फल, माता का छू न सके वे वस्त्र।

हुआ असुर विक्षिप्त, रोष का रहा न कुछ परिमाण,
किया दूर निक्षिप्त शत्रु ने धनुष और निज बाण।
रश्मि-राशि को ग्रहण, स्वर्ण की रेखा को ज्यों शाण
धरने चला दैत्य दुर्गा को ताने विकट विषाण।
भागे गण पीछे को भय से पर देखें जो घूम,
तो देवी ने पकड़ लिया था उसे झपट झट झूम।

वाम हस्त में महिष शृंग था, दक्षिण में करवाल,
पर दक्षिण कर और खड्ग था नीचा ही उस काल।
वाम चरण से दैत्य दबा था, दक्षिण से भू-चाल;
देह-लता कुछ झुकी हुई थी, पर ऊँचा था भाल।
प्रकट वीरता अड़ी खड़ी थी पकड़े पाशव-शृंग;
सबका मन हो उसी पौढ़तम पाणि-पद्म का भृंग!

Hindi Premi

इसके आगे? इसके आगे पापी का संहार—
लीक पीटते हैं हम जिसकी अब जीवों को मार।
कहाँ दुष्ट-वध और कहाँ यह हत्या, अत्याचार?
हिंसा और वीरता के हैं भिन्न-भिन्न व्यवहार।
कहाँ स्वर्ग-उद्धार कहाँ यह निपट नरक-विस्तार!
कलुषित करो न पशु-शोणित से माँ के पैर पखार।
होती है जब जब दैत्यों की बाधा इसी प्रकार,
करती है तब तब कल्याणी अपनों का उद्धार।
कभी कालिका कभी सुन्दरी नाम रूप गुण धार,
मूर्त्तिमती होकर हरती है महाशक्ति भय भार।
महिष तुल्य ही जीत सुरों को गरजे शुम्भ-निशुम्भ,
रम्य रूप रखकर तब उसने फोड़े वे अघकुम्भ।

देवों के समान दानव भी उस माँ की सन्तान,
देख नहीं सकती है देवी उनके दोष महान।
पागल होने पर होता है ऐसा व्याकुल श्वान,
उसके वध में स्वयं उसी का है कल्याण-विधान।
माँ का दिया मरण रखता है जीवन पर यह युक्ति,
जीवन में तो भुक्ति मात्र है किन्तु मरण में मुक्ति।

प्रकट हिमालय की चूड़ापर किस मणि की यह कान्ति,
हुई अहो! उदयाद्रि उदयिनी ऊषा को दिग्भ्रान्ति।
कितना तेज साथ ही कितनी सौम्य भाव की शान्ति,
उन्मद असुरों के विरुद्ध की स्वयं प्रकृति ने क्रान्ति।
तब तो हुई शक्ति के बदले उन्हें यहाँ आसक्ति,
अपने दीप्ति दुर्ग में मानो बैठी दुर्गा शक्ति।

चण्ड-मुण्ड ने देखा उनको आकर किया प्रणाम,
और बखाना वार वार वह रूप अतुल-अभिराम।
कहा—''अहा सुन्दरि, पृथिवी पर कौन तुम्हारा काम,
यहीं बना दोगी क्या तुम वह स्वर्ग सरीखा धाम।
जीता व्यर्थ हमारे प्रभु ने तब सुरलोक मनोज्ञ,
सचमुच तुम्हीं योग्य हो उनके वही तुम्हारे योग्य।

Hindi Premi

यत्र तत्र घूमा करते हैं इसलिए हम लोग,
मिले कहीं कुछ करें हमारे प्रभु जिसका उपभोग।
कहो इसे चाहे जो कुछ भी कर्म, भाग्य संयोग,
आज सफल हो गया हमारा भ्रमण रूप वह रोग।
हुई अहा! कृतकृत्य हमारी इस जीवन की दृष्टि,
क्या ही अनुपम क्या ही अद्भुत यह सुषमा की सृष्टि।
समझो सफल स्वयं भी अपना तुम सुहाग-सीमन्त,
ऐसे वर का लाभ बधू का है सौभाग्य अनन्त।
जल-थल और स्वर्ग के जितने रत्न गण्य गुणवन्त,
वे पा चुके, उन्हें तुम पाओ, आओ, चलो तुरन्त।''
सुनकर किया महामाया ने मन्द मन्द मृदु हास,
असुर चौंधिया गये देखकर हीरक दन्त-विभास।

''हो सकती है सत्य सर्वथा वीर तुम्हारी बात,
किन्तु प्रतिज्ञा कर बैठी हूँ अकस्मात मैं तात।
'मुझे युद्ध में जीतेगा जो देव, दनुज मनुजात,
होगा एक वही त्रिभुवन में मेरा वर विख्यात।'
बाला-बुद्धि विलोक लोक अब आह करे या वाह,
मुझको तो करना ही होगा कहने का निर्वाह।''

''लता लिपट तो सकती है पर उसमें कहाँ प्रहार?
बच्चों पर ही चल सकती है बोदर की वह मार।''
कहा अम्बिका ने असुरों से हँस फिर उसी प्रकार,
''बच्चे जैसा ही लगता है मुझको तो संसार!''
हुए हतप्रभ दैत्य उन्हें यों कहते देख अशंक,
पर सुन कर सब वृत्त शुम्भ की हुईं भृकुटियाँ वंक।

''हम दो में से वरे किसी को यदि उसमें प्रिय हाव,
किन्तु एक सुकुमारी का यह कैसा उद्धत भाव!
अच्छा अभी धूम्रलोचन, तुम निज दल लेकर जाव,
सीधे न हो, पकड़कर उसको शीघ्र यहाँ ले आव।''
गया धूम्रलोचन परन्तु फिर आया नहीं अधीन,
माया की हुंकार मात्र में वह हो गया विलीन!

Hindi Premi

इसी भाँति आये जो जो भी दानव मद में चूर,
एक एक कर वे सुर-कण्टक किये उन्होंने दूर।
उनकी कुटिल दृष्टि ही काली चामुण्डा थी क्रूर,
रक्त बीज का रक्त पान कर तृप्त हुई भरपूर।
बढ़ वाहन पंचानन ने भी मारे ऊँचे हाथ,
मूर्तिमती थीं सर्व शक्तियाँ केन्द्र शक्ति के साथ।
बने हुए थे विषयों के जो शुम्भ निशुम्भ निवास,
दिग्विजयी होकर भी थे जो दुर्व्यसनों के दास।
मारा नहीं उबारा उनको माँ ने बिना प्रयास,
बाहर कोप दिखाया भीतर रक्खा करुणोच्छ्वास।
गण्य किया स्वजनों में उनको अपना लिया अनन्य,
जीवन जैसा भी था उनका मरण हो गया धन्य।

जयजयकार किया देवों ने हुआ अकण्टक स्वर्ग;
भाग गया अति भीत-भाव से शेष सभी अरिवर्ग।
ऋषि-मुनियों ने धर्म्म-विजय का लिखा एक नव सर्ग,
एक मूर्त्ति में प्रकट हुए सब विधि-विश्वम्भर-भर्ग।
भव-निवारिणी विजयकारिणी, महाशक्ति के गीत,
गाने लगे अमर आनन्दित हर्षित, विनत, विनीत।

''श्री है तू हम सबके घर की होने पर सन्तुष्ट,
विश्री भी बनती है तू ही होती है जब रुष्ट।
वे भी तेरे ही जन हैं जो दुराचरण रत दुष्ट,
दया दण्ड दोनों से तेरी प्रकृति पूर्ण परिपुष्ट।
क्रीड़ा कर हमको लेकर तू लीलामयी यथेष्ट,
करने लगें प्रमाद जहाँ जो कर दे उन्हें सचेष्ट।

तू हम सबकी शक्ति, तुझे है वारंवार प्रणाम;
तुझको पाकर सिद्ध हुए हैं हम सबके सब काम।
तेरे धन्य चरित हैं अगणित, पुण्य-भरित बहु नाम;
तूने आज उबार लिया है असुरों से सुर-धाम।
हे माँ तुझे प्रणाम, हमें है तेरा मान अतीव;
तेरे बिना तीन तेरह हैं हम क्या सारे जीव।

Hindi Premi

हम सब तुझमें, तू हम सबमें, हम अनेक तू एक,
तू ही एक हमारी मति-गति, तू ही बुद्धि-विवेक।
हममें भरा हुआ है तेरी आभा का उद्रेक;
आप प्रकट होकर रखती है तू अपनों की टेक।
भुक्ति-मुक्ति देती है दोनों माँ तेरी शुभ-दृष्टि;
जीती है तुझसे ही जननी अमर हुई सब सृष्टि।
मन में मृदुता, कर में दृढ़ता तेरी रहे सदैव,
रोष समय पर किन्तु तोष की धारा बहे सदैव।
यह कर भव-सागर-मग्नों की बाहें गहे सदैव,
यह मुख अभय अमृतपुत्रों की वाणी कहे सदैव।
रहें सभी हम तेरे बल से सबल और सम्पन्न;
उपजें तेरी दया-दृष्टि से अवनी पर सब अन्न।''

हँस कर कहने लगी अम्बिका, सुनकर यों निज गीत,
''करो स्वर्ग-सुख भोग सर्वदा हे सुरवर्ग विनीत।
जाय रसातल में ही तब तक दैत्य-समूह, सभीत,
पावे अपनी पाप-वृत्तियाँ जब तक आप न जीत।
उद्धत होकर असुर करेंगे जब जब अत्याचार,–
तब तब जगदुद्धार करूँगी लूँगी मैं अवतार।

मैं प्रसन्न हूँ मागो तुम सब मन चाहा वरदान।''
कहा सुरों ने–''मिला हमें है विजय, सुयश, सुख, मान।
पावें यह सब माँ, वे भी जो रक्खें तेरा ध्यान।''
'एवमस्तु' कह हुई अम्बिका तत्क्षण अन्तर्धान।
देवी ने यों देववृन्द के दूर किये सब क्लेश;
किया शक्र ने फिर सुरपुर में दल-बल सहित प्रवेश।

अब भी असुर-चिह्न न सुरपुर में दीख रहे थे शेष,
हुए सनीर देखकर उनको देव-नयन अनिमेष।
हत्यारों ने बदल दिया था उसका कितना वेष,
मन्दारों से बँधे हुए थे क्रीड़ा-महिष कि मेष!
देव भूमि पर सभी वहीं थी असुर-पदों की छाप,
देवों की छाती पर बैठा उसका धक्का आप।

Hindi Premi

छोड़ा नन्दन वन ने मानो एक दीर्घ निःश्वास;
मानो अब भी उसे न आया विबुध-विजय-विश्वास!
मानो अब भी था कुछ उसमें असुर-गन्ध का वास,
हुआ सुरों में एक साथ ही हर्ष-विषाद-विकास।
जैसी नन्दन वन ने छोड़ी बाहर लम्बी साँस,
वैसी ही अमरों ने खींची, उसकी आँस!
स्वागतार्थ आयी पुरदेवी किये मलिन परिधान,
दीनमुखी, प्यासी-सी पीड़ित मुरझी लता-समान।
शिशिर-पद्मिनी-सी अति गद्‌गद पड़े न जो पहचान,
अमरावती पुरी का आहा! ऐसा उलटा ध्यान!
छोड़ गया अधमरी मृगी यह कोई नीच निषाद,
उठा लिया गोदी में उसको सुरपति ने सविषाद!

भर आये आभा से यद्यपि उसके पाण्डु कपोल;
कण्ठ रुँधा, था बेचारी कुछ सकी न मुँह से बोल।
वार वार विस्फुरित हुए बस अधर अरुण अनमोल,
उठा दिया इंगित कर उसने एक ओर भुज गोल।
सबने अपने वदन उठाये उधर देखने हेतु,
वैजयन्त पर फहर रहा था अब भी दानव-केतु!

निकली सुरगण के वदनों से एक साथ हुंकार,
ज्यों वासुकि के अयुति फणों से फैली हो फुंकार!
किन्तु बड़े ध्वजपट पर जब तक उनका वह उद्‌गार,
कार्तिकेय-केकी ने उड़कर दूर किया वह भार।
चिन्दी चिन्दी उड़ी चोंच से बिखर गयी सब ओर,
सबके वदनों पर विनोद की आयी हुलक हिलोर।

पुर देवी से कहा इन्द्र ने—"भद्रे, अब भय छोड़,
हम सबकी एकत्र शक्ति ने दिया दैत्य-बल तोड़।
पूर्णकला से प्रकट हुई वह आप पापघट फोड़,
तेरा क्रीडाक्षेत्र बना है उसका विस्तृत-क्रोड,
असुर रहें—पर अमरभूमि का अधिकारी सुरवर्ग;
मरे बिना, जीते जी कोई पा न सकेगा स्वर्ग।"

Hindi Premi

घटा हटी, चमका रवि फिर से बहुत दिनों में आज,
पल में पुनः पलट आये फिर सुरपुर के सब साज।
इन्द्राणी-युत इन्द्रासन पर बैठा सुरकुलराज,
हुआ यथास्थान-स्थित सुख से विजयी विबुध-समाज।
गाने लगे अमर-गौरव के गीत गुणी गन्धर्व,
आने लगे नित्य नव उत्सव, क्रीडा, कौतुक, पर्व।

शब्द-कोश

अम्बा, अम्बिका–देवी
उद्‌गीर्ण–मुँह से निकली
उद्रेक–अधिकता
कल्मष–पाप
कलम्ब–बाण
कलाप–समूह
केकी–मोर
गुल्म–झाड़ी
निक्षिप्त–फेंका हुआ
निसर्ग–स्वभाव, प्रकृति
पंचानन–सिंह
पवि–वज्र
पुरन्दर–इन्द्र
प्रास–अस्त्र विशेष
प्रजापति–ब्रह्मा
प्रत्यय–विश्वास
बोदर–पतली छड़ी
भर्ग–महादेव
भिन्दिपाल–अस्त्र विशेष
भू-भा–पृथ्वी की आभा
महिष–दैत्य और भैंसा
यातुवंश–राक्षसवंश
यूप–यज्ञस्तम्भ
वज्री–वज्रधारी इन्द्र
वासव–इन्द्र
विकच–खिला हुआ
विकीर्ण–फैली हुई
वितुण्ड–मुख
विभाकर–सूर्य
विबुध–देवता
विषाण–सींग
वैजयन्त–इन्द्र का भवन
व्यूढ़–विस्तृत, विशाल
व्रात–समूह
शक्र–इन्द्र
शिवा–देवी
सार–लोहा
हरि–विष्णु, सिंह
हविर्वहन–अग्नि

Hindi Premi

वन-वैभव

Hindi Premi

Hindi Premi

श्रीगणेशाय नमः

वन-वैभव

पूर्वार्द्ध

अतुल वह अपना हेमागार,
जलाकर कर देने को छार,
जानकी रूपी आग अपार,
चुराने का करके कुविचार,
चला जो रावण निपट निषिद्ध,
मंगलाचरण करे वह सिद्ध?

"तुम्हारे भाई बेचारे,
जुए में जो सब कुछ हारे,
विपिन में दीन भाव धारे,
भटकते हैं मारे मारे।
न जाने कैसे हैं वे लोग,
यहाँ हम करते हैं सुख-भोग!

खबर लें उनकी, चलो जरा,
कि वन में होगा हृदय हरा।
वहाँ है निर्मल नीर भरा,
और मृगया के योग्य धरा।"
शकुनि की सुन यों गूढ़ गिरा,
हँसा दुर्योधन हठी निरा;

Hindi Premi

"खबर की तुमने खूब कही
उचित है मामा, हमें यही।
पिता की आज्ञा किन्तु रही,
वहाँ मृगया ही मुख्य सही!"
कर्ण ने कहा—"धन्य लक्षी,
एक ढेले में दो पक्षी!"

विकट यह तीन तिकट मिल के,
हँसा फिर खिल खिल कर खिल के,
हौसले ले ले कर दिल के,
ताड़ कर करके तिल तिल के,
सफल करने अभिलाष नया,
अन्ध नृप-निकट तुरन्त गया।

कहा दुर्योधन ने—"हे तात,
लगी है कुछ सिंहों की घात।
विपिन में है उनका उत्पात,
जहाँ है अपना पशु-संघात।
करेंगे हम मृगया वन में,
घोष यात्रा की है मन में।"

सुना भूपति ने 'हूँ' करके,
'ठीक है' कहा आह भर के।
"हेतु हैं किन्तु वहाँ डर के,
विचारो तुम्हीं ध्यान धर के।
वहीं पाण्डव भी रहते हैं,
दुःख मन ही मन सहते हैं।

देख कर तुमको सम्मुख हाय!
क्रोध उनका न कहीं जग जाय।
रहेगा तो फिर कौन उपाय?
न समझो तुम उनको असहाय।
शक्ति उनकी है सबको ज्ञात,
सुरों में भी है यश विख्यात।"

Hindi Premi

शकुनि ने कहा—"व्यर्थ यह सोच,
प्रबल हों वे या पूरे पोच,
कहूँगा यह मैं निस्संकोच,
नहीं है उनके मन में मोच।
न हो जब तक अज्ञात-निवास,
करेंगे वे न विरोधाभास।"

भूख को देकर यों सन्तोष,
साथ लेकर बहुजन, धन-कोष,
दैव का लिये अलक्षित रोष,
घोष-यात्रा का करके घोष,
जले पर नमक छिड़कने हाय!
चला वह कुरुकुल का समुदाय।

धरा को धसका कर मातंग,
बढ़े दिखलाकर निज गति रंग।
उड़ा कर उसकी धूल तुरंग,
चले ज्यों चपल अपांग सभंग।
भूमि पर संकट-सा आया,
उसे ऊँटों ने उकसाया।

मुदित थे सब यात्री मन में,
समाती स्फूर्ति न थी तन में,
नया जीवन था जन जन में,
कि होगा अब विहार वन में।
जहाँ जिस रात पड़ाव पड़ा,
हुआ कौतुक-सा वहाँ खड़ा।

शान्त वन भी तब नगर बना,
वहाँ जब शिविर समूह तना।
उठा कोलाहल घोर घना,
हुए सब खग-मृग भीत-मना।
जिधर पाण्डव थे, वे भागे,—
खबर-सी देने को आगे!

Hindi Premi

आज पाण्डव वनवासी हैं,
पास वे दास न दासी हैं।
न भोगी, न विलासी हैं।
उदासी हैं, संन्यासी हैं।
कहाँ वे विभव विलीन हुए?
देशपति जो थे दीन हुए!

द्रुमों की छाया है गम्भीर,
बने हैं सुन्दर पर्ण-कुटीर।
निकट ही लहराता है नीर,
शान्त रहते हैं पाँचों वीर।
धर्म-धन की ही तृष्णा है,
साथ कल्याणी कृष्णा है।

हाय! वह कृष्णा कल्याणी,
शेष है बस जिसमें वाणी,
कि जो थी कभी महारानी,
स्वयं अब भरती है पानी!
किन्तु है मन में मान वही,
आन हो कि न हो, बान वही।

सदा पति-सेवा करती है,
अतिथियों का श्रम हरती है।
भव्य भावों को भरती है,
धर्म्म अपना आचरती है।
किन्तु होकर क्षत्रियभार्य्या,
दुःख भूले क्या वह आर्य्या?

शत्रु-कृत उसको वह अपमान,
सालता है विष-विशिख-समान।
जहाँ आता है उसका ध्यान,
नहीं रहता फिर कुछ भी ज्ञान।
उष्ण होते हैं अरुण कपोल,
कण्ठ से नहीं निकलते बोल!

Hindi Premi

बैठती है वह जब चुपचाप,
अचानक चढ़ते हैं भ्रू-चाप।
ओंठ करते हैं मौनालाप,
उमड़ते हैं फिर आँसू आप।
और वह उठती है तत्काल,
पकड़कर अपने बिथुरे बाल!

बाल वे मन्त्रों से अभिषिक्त,
हुए जो राजसूय में सिक्त,
हो चुके हैं रत्नों से रिक्त,
और दुःशासन-कृत अविविक्त।
परिष्कृत कैसे हों तब तक—
शत्रु जन जीवित हैं जब तक?

सती हँसती भी रोती है,
धैर्य्य धीरों के खोती है।
भीगती और भिगोती है,
बीज बदले के बोती है।
विषम वैरांकुर पतियों के;
न सींचें क्यों दृग सतियों के?

शत्रु-कृति पतियों से कहती,
द्रौपदी सब कुछ है सहती।
पाण्डु-कुल-वृक्षों में बहती,
पवन-सी अस्थिर है रहती।
पवन वह कि जो जिलाती है,
और झोंके भी लाती है।

वहाँ जो खग-मृग चरते हैं,
प्यार उस पर वे करते हैं।
किन्तु मन ही मन डरते हैं,
पगों में ही सिर धरते हैं।
प्यार के बदले में निर्दिष्ट;
दया ही है उन सबको इष्ट।

Hindi Premi

वीर पाण्डव भी भ्रान्त न थे,
विपिन में बैठे श्रान्त न थे।
किन्तु केवल विक्रान्त न थे,
धीर भी थे कि अशान्त न थे।
समय की उन्हें प्रतीक्षा थी,
धर्म्म की जैसी दीक्षा थी।

पार्थ ने तप कर मन-भाया,
विजय-वर शंकर से पाया।
शूर वह सुरपुर हो आया,—
वहाँ से दिव्यायुध लाया।
यत्न यों उनके जारी हैं,
विरत कब वे व्रतधारी हैं?

वहाँ बहु ऋषि-मुनि आते हैं,
विविध व्याख्यान सुनाते हैं।
शान्ति उनसे सब पाते हैं,
कुदिन यों कटते जाते हैं।
पुरोहित हैं उनके जो धौम्य,
कराते हैं सुयज्ञ वे सौम्य।

दिखाकर अपना वैभव-वेश,
जलाने को उनका हृदेश,
सुयोधन ने तज लज्जा-लेश,
किया वन में जिस समय प्रवेश,
युधिष्ठिर शान्त, सुसंयत थे,
रुचिर राजर्षि यज्ञ-रत थे।

देख कर कौरव-दल भयभीत
भगे जो मृग-विहंग कलगीत,
जान निज शरण उन्हें सुविनीत,
हुए चिन्तित वे परम पुनीत।
तभी आये कुछ वनचारी,
उन्होंने कथा कही सारी।

Hindi Premi

युधिष्ठिर ने ली लम्बी साँस,
भीम के रोम हुए कुश-काँस।
गड़ी अर्जुन को मानों गाँस?
नकुल के नख में थी क्या फाँस?
सन्न सहदेव हुए निरुपाय,
हँसी या रोयी कृष्णा हाय!

मौन था फिर भी सभी समाज,
द्रौपदी बोली तब सव्याज–
''भाइयों की सुध लेने आज
पधारे हैं कौरव-कुल-राज!
मिलूँगी पर मैं कैसे, हाल?–
खिंचा है चीर, खुले हैं बाल!

करें आतिथ्य आप सब लोग,
रंक-राजों का हो संयोग;
हाय रे! भंग-भाग्य के भोग,
मरण ही है मेरा उद्योग!''
उमड़ आये फिर अश्रु असीम;
गरज कर बोल उठे फिर भीम–

''उचित आतिथ्य करूँगा मैं,
हीनता सभी हरूँगा मैं।
काल से भी न डरूँगा मैं,
कि मारूँगा कि मरूँगा मैं।
गिरा कर सु-गुरु गदा की गाज,
चुका लूँगा सब बदला आज।

द्रौपदी, मत हो यों बेहाल,
भीम जीवित है अरि-कुल-काल।
स्वकर कर शत्रु-रुधिर से लाल,
वही बाँधेगा तेरे बाल।
स्वयं हरि ने होकर अनुकूल,
दिया है तुझे अनन्त दुकूल।

Hindi Premi

हमारा विभव हमीं को आज,
दिखाने आया शत्रु-समाज!
नहीं आती नीचों को लाज,
देख लूँगा मैं सारे साज।
हँसें वे, मैं मुँह तोड़ूँगा,
न जीता उनको छोड़ूँगा।"

भीम थे या था क्रोध कठोर?
गिरा थी उनकी या घनघोर?
पार्थ ने धर धन्वा की डोर;
दृष्टि की धर्म्मराज की ओर,
कि मिल जावे उनका आदेश,
और मिट जावें मन के क्लेश।

फेर कर तब धीरज के साथ
भाइयों की पीठों पर हाथ,
विश्व-विश्रुत गुण-गौरव-गाथ,
बोलने लगे पाण्डु-कुल-नाथ—
"शान्त हो भाई, कृष्णे, शान्त;
न आतुर हो तुम यों एकान्त।

हुआ जो सारा विभव विनष्ट,
हुए जो हम सब राज्य-भ्रष्ट,
भोगने पड़े हमें जो कष्ट,
दोष यह है मेरा ही स्पष्ट।
किन्तु ज्यों तुमने इसे सहा,
सुनो त्यों मेरा आज कहा।

पिता के हम प्रिय ढोटे थे,
मरे जब वे, हम छोटे थे।
रुदन कर भू पर लोटे थे,
हमारे दिन जो खोटे थे।
उठाया था हमको किसने?
उसे हैं सौ प्रणाम जिसने।

Hindi Premi

वही पालक बालकपन के,
पिता हैं इस दुर्योधन के।
वही रक्षक हैं जीवन के,
बड़े चाचा पाँचों जन के।
पूर्ण करके त्रुटियाँ सारी,
बनी माद्री माँ गान्धारी!

उन्होंने हमें सँभाला था,
पिता-माता ज्यों पाला था।
प्यार सौ पुत्रों वाला था,
तदपि हमको दे डाला था!
उन्हीं का होने से सुत मात्र—
क्षमा का है दुर्योधन पात्र।

सोच कर उनके वे उपकार
क्षम्य हैं उसके दुर्व्यवहार।
कहूँगा मैं भी किन्तु पुकार,—
न छोड़ेंगे हम निज अधिकार।
उचित समझेंगे हम जब जो
करेंगे उनके हित सब सो।

नहीं स्वत्वों का जिसको ध्यान,
फेरता है वह विभु का दान।
और करता है निज अपमान,
किन्तु हम हैं क्षत्रिय-सन्तान।
करेंगे चाहे जितना त्याग,
न छोड़ेंगे भय से निज भाग।

अबल भी हों तो क्या परवाह?
करेंगे हम स्वधर्म्म-निर्वाह।
मरें भी, पर न करेंगे आह;
स्वर्ग की खुली पड़ी है राह।
हमारा नहीं प्रजा का राज्य;
किन्तु वह नहीं धर्म्मतः त्यात्य।

Hindi Premi

करें तो कर लें वे उपहास,
पूर्ण हो ले अज्ञात निवास।
जायँगे तब हम उनके पास,
और फिर माँगेंगे निज न्यास,
उसे यदि देंगे वे हित मान
क्षमा पावेंगे बन्धु-समान।

किन्तु यदि वे हठ ठानेंगे,
न्याय की बात न मानेंगे,
याद रक्खें, तो जानेंगे,
हमें रण में पहचानेंगे।
राज्य के नहीं, धर्म्म के अर्थ
उठेंगे तब ये शस्त्र समर्थ।

शान्त हो भाई, कृष्णे, शान्त;
न आतुर हो तुम यों एकान्त।
अभागा दुर्योधन है भ्रान्त,
न हो निज सहनशीलता श्रान्त।
तुम्हें है क्रोध, मुझे है खेद,
नहीं है उसे हिताहित-भेद।

दयामय, उसे बुद्धि-वर दो;
भाइयो, तुम भी यह कर दो—
और उसको कुछ अवसर दो,
धैर्य्य अपना न यहीं धर द्रो।
क्षमा करके हरि ने सौ दोष,
किया था चेदीश्वर पर रोष।

नहीं हो सकते हैं हरि हम,
स्वयं प्रभु हैं वे पुरुषोत्तम।
किन्तु अनुकृति ही है क्या कम?
करेगा वही हमें सक्षम।
इसी से होते हैं अवतार,
कि उनसे शिक्षा ले संसार।''

Hindi Premi

कहा तब अर्जुन ने—"हे आर्य्य,
आपका शासन सिरसा धार्य्य।
हमारा क्रोध रहे अनिवार्य्य—
सफल हों किन्तु आपके कार्य।
तदपि क्या दुर्योधन का चित्त
फिरेगा अब भी शान्ति-निमित्त?

भले ही कुछ भी हो परिणाम,
फलाफल से है हमें न काम—
करेंगे हम स्वकर्म निष्काम,
विफल भी देंगे वे विश्राम।
और भी शान्त रहें ये बाण,
हमारे हैं बस आप प्रमाण।

शान्त हों आर्य्य भीम, इस वार।"
भीम तब बोले मन को मार—
"आर्य्य का है जब यही विचार
वहन करना ही होगा भार।
सहा सब इनके कहने से;
हटेंगे अब क्या सहने से?

आर्य्य के पीछे बहु अपमान—
सहे हमने सम्मान-समान।
आज भी वही हमारा ध्यान,
किन्तु यह जीवन है बेजान।
करूँ तो जाकर मैं अब लोप
हिंस्र जीवों पर ही वह कोप।"

भीम यों कहकर वचन यथार्थ,
गये आवेग-सदृश मृगयार्थ।
समझ निष्फल-सा निज पुरुषार्थ,
हुए निश्चल भी चंचल पार्थ।
युधिष्ठिर देकर पुनः प्रबोध,
मेटने लगे सभी का क्रोध।

Hindi Premi

उत्तरार्द्ध

इधर कौरव-दल गौरव धार,
विपिन में करने लगा विहार।
गूँजने लगी गान-गुंजार,
नूपुरों की नव-नव झंकार।
कहीं कुंजों में क्रीड़ा भेट,
कहीं जल-केलि, कहीं आखेट।

उसी वन में था एक तड़ाग,
जहाँ उड़ता था पद्म-पराग।
वहाँ का हरा-भरा भू-भाग,
आप उपजाता था अनुराग।
चौखटे में ज्यों हरे जड़ा,
धरा पर हो सुर-मुकुर पड़ा!

चाँदनी छिटकी थी उस रात,
विचरता था वासान्तिक वात।
सो रहे थे यद्यपि जलजात,
अयुतशशि थे सर में प्रतिभात।
सरस सर की निहार शोभा,
सुरों का मानस भी लोभा।

Hindi Premi

अप्सराओं को लेकर संग,
नैश निस्तब्ध भाव कर भंग,
बहाता हुआ रास-रस-रंग,
चित्ररथ भरे अपूर्व उमंग,
चन्द्र-तारों को दे व्रीड़ा,
वहाँ करता था जल-क्रीड़ा।

अचानक इसी समय अनिवार
विपिन में करता हुआ विहार,
झूमता हुआ कुंजराकार,
साथ में लिये प्रणय-परिवार,
स्वयं भी जल विहार के हेतु,
वहाँ पर आ पहुँचा कुरु-केतु।

उसे गन्धर्वों ने टोका,
तर्जनी दिखलाई रोका;
जरा-सा खाकर तब झोका,
क्रोध से उसने अवलोका।
उठी जो उसकी भृकुटि कराल,
खिंचीं सौ तलवारें तत्काल!

हुआ गन्धर्वों पर आघात,
चित्ररथ तक पहुँची यह बात—
कि 'कोई उद्धत मानव-जात
मचाता है आकर उत्पात।'
सिन्धु से उच्चैःश्रवा-समान,
हुआ सरनिर्गत वह बलवान।

क्षोभ से जलने लगा शरीर,
बिना पोंछे ही सूखा नीर!
बदल कर वस्त्र शीघ्र वह वीर,
उठा कर धनुष, चढ़ा कर तीर—
जिधर होता था रण का शोर,
चला शार्दूल-सदृश उस ओर।

Hindi Premi

अप्सराएँ पुष्करिणी-सी,
देख भय-बाधा करिणी-सी,
विकल हो हहरी हरिणी-सी,
काँपती थीं सब तरिणी-सी।
हाथ से देकर उन्हें प्रबोध,
चित्ररथ चला गया सक्रोध।

पहुँच दुर्योधन-सम्मुख शूर,
घोर नेत्रों से उसको घूर,
कूकता हो ज्यों कुपित मयूर
वचन बोला सुस्वर से क्रूर—
"कौन है तू, ओ उद्धत, धृष्ट,
यहाँ जो आया मरणाकृष्ट?"

सुयोधन भी बोला सक्रोध—
"ज्ञात क्या तुझको नहीं अबोध,
कि करके जिसका मार्ग निरोध,
किया है तुमने आत्म-विरोध।
वही इस पृथ्वी का स्वामी
सुयोधन नृप हूँ मैं नामी?"

"अरे, तू ही दुर्योधन है,
दुष्ट, दाम्भिक जो दुर्जन है,
अनुज जिसका दुःशासन है,
प्रकट जिसका पामरपन है?
भाइयों को भिक्षुक करके,
बना नृप उनका धन हरके।

मानता हूँ, तू है नामी,
किन्तु कुल-काल कुपथगामी।
आज इस पृथ्वी का स्वामी
बना फिरता है तू कामी!
पकड़ रखना तू इसका हाथ
सती होगी यह तेरे साथ!

Hindi Premi

मूढ़, तुझ-से कितने भूपाल
हुए, हैं, होंगे विपुल विशाल।
किन्तु सबके पीछे है काल,
रहा इसका ऐसा ही हाल।
बहुत है यही, कहूँ क्या और
कि देगी तुझको भी यह ठौर।

तुझे है लगा राज्य का रोग,
इष्ट है अपना ही भू-भोग;
कि भाई हैं जो पाण्डव लोग,
सह्य उनका भी नहीं सुयोग।
किन्तु है भू पर सबका भाग,
करेंगे जिसे न तृण भी त्याग।

समय है अब भी चेत अचेत,
नहीं तो उजड़ जायगा खेत।
धर्म्म-पथ पर धर कर धैर्य्य-समेत,
लौटा जा जीवित नृपति-निकेत!
हुआ था यद्यपि मुझको रोष,
क्षमा करता हूँ तेरा दोष।''

''तुझे तो पर मैं दूँगा दण्ड,
कि कोई भी हो तू पाषण्ड!
सँभल, अब यह मेरा को दण्ड
छोड़ता है चंचल शर चण्ड।''
बाण यों कहते कहते जोड़;
दिया झट दुर्योधन ने छोड़!

किये कर्णादिक ने भी वार,
चित्ररथ सँभला किसी प्रकार।
और बोला—''धिक पापाचार!
दण्ड ही है तेरा उपचार।''
न करके उसने भी विक्षेप,
किया सम्मोहन-शर-निक्षेप।

Hindi Premi

शीघ्र उस शर का पड़ा प्रभाव,
हुआ सब कौरव-दल हतहाव।
चढ़ा तब गन्धर्वों को चाव,
उन्होंने किया विकट बर्ताव।
कि सारे शूरों को पकड़ा,
विमानों से बाँधा, जकड़ा!

कौरव-स्त्रियाँ देख यह हाल,
पीटने लगीं वक्ष या भाल।
विकल थे कौरव क्रुद्ध कराल,
सिंह जो तोड़ न पाकर जाल।
हुआ कातर-कोलाहल-नाद,
शिविर तक पहुँचा यह संवाद।

वहाँ थे वृद्ध सचिव या दास,
व्यर्थ था उनका रण-प्रयास।
विवश होकर लेकर निश्वास,
चले वे धर्म्मराज के पास।
किन्तु लज्जित थे मन मन में,
पुकारें और किसे वन में!

भाइयों सहित द्रौपदी-संग,
पार्श्व में रक्खे चाप-निषंग,
सुनाकर सुन्दर कथा-प्रसंग,
दिखाते हुए धर्म्म के अंग,
यज्ञ-वेदी के सम्मुख शान्त,
युधिष्ठिर बैठे थे विश्रान्त।

बिछे थे नीचे मृदु मृगचर्म,
सुनो, उनकी वाणी का मर्म—
करें यदि अन्य मनुज दुष्कर्म,
तजें तो हम क्यों अपना धर्म्म?
धैर्य ही धर्म्म-परीक्षा है,
वही वीरों की दीक्षा है।

Hindi Premi

राम ने राज्य-विभव छोड़ा,
उन्हें था वन में दुख थोड़ा?
भरत ने भी निज मुख मोड़ा,
धर्म्म-धन ही सबने जोड़ा।
सहेंगे दुख हम भी धर्म्मार्थ,
पुण्य ही तो है परम पदार्थ।

पाप का क्षणिक प्रभाव विलोक,
लोभ यदि सके न कोई रोक।
शोक, तो उसकी मति पर शोक!
बना क्या, बिगड़ा जब परलोक?
विजय है वही कि सब संसार,
करे पीछे भी जय जयकार।

धर्म क्या है इतना असमर्थ
कपट जो करे प्रगति के अर्थ?
अर्थ ही तब तो हुआ अनर्थ,
पुण्य का होना ही है व्यर्थ।
शोक में ही तब तो सुख हो,
हमें फिर क्यों दुख में दुख हो?

सुयोधन से उसके अनुसार
करें यदि हम भी दुर्व्यवहार,
रहा हममें भी फिर क्या सार?
करो कुछ इसका तुम्हीं विचार।
हमारा-उसका तो है नाम,
किन्तु है पुण्य-पाप-संग्राम।''

"नियम का पालन किसके संग?"
प्रश्न है कृष्णा का सव्यंग।
''किन्तु वह है आत्मा का अंग;
करें हम कैसे उसका भंग?
नियम ही अपना तोड़ा जाय,
मेघ भी बरसें फिर क्यों, हाय!''

Hindi Premi

अचानक हुआ करुण चीत्कार—
"दुहाई धर्म्मराज के द्वार,
कहें कैसे, हे परमोदार,
बचाओ अपना कुरु-परिवार।"
चौंककर पाण्डव खड़े हुए,
सचिव थे पैरों पड़े हुए!

"विजित हैं बन्धु आपके सर्व,
उन्हें हैं बाँध चुके गन्धर्व,
शकुनि कर्णादिक का भी गर्व
हो गया रण में सहसा खर्व।"
शत्रुओं का सुन यों अपकर्ष,
वृकोदर बोले शीघ्र सहर्ष—

"सूर-मद था उनको भरपूर,
हुआ वह आज अचानक चूर।
चलो, हम सबके काँटे क्रूर,
हुए ऊपर के ऊपर दूर!
लड़ें उनके पीछे हम क्यों?
करें प्रतिकूल परिश्रम क्यों?

चले थे हमें कुढ़ाने को,
हमारी हँसी उड़ाने को।
जाएँ हम उन्हें छुड़ाने को—
कि बैठें हृदय जुड़ाने को?
वीर वे और बली भी हैं,
करें छल ही कि छली भी हैं!

कहो उनसे, अब धैर्य्य धरें,
विमानों में विचरें, न डरें।
जायँ, सुरपुर की सैर करें,
स्वर्ग का भी साम्राज्य हरें।
स्वर्ग यदि न भी मिलेगा हाल;
नरक कोई न सकेगा टाल!"

Hindi Premi

भीम के ऐसे भाव विलोक,
हुआ पाण्डव-पति को अति शोक।
सके वे और न मन को रोक,
और यों बोले उनको टोक–
"भीम, शरणागत का अपमान!
कहाँ है आज तुम्हारा ज्ञान?

कौरवों ने जो अत्याचार–
किये हैं हम पर वारम्वार,
करेंगे उनका हमीं विचार,
नहीं औरों पर इसका भार।
क्रूर कौरव अन्यायी हैं,
हमारे फिर भी भाई हैं।

जहाँ तक है आपस की आँच,–
वहाँ तक वे सौ हैं, हम पाँच।
किन्तु यदि करे दूसरा जाँच,
गिनें तो हमें एक सौ पाँच।
कौन हैं वे गन्धर्व गँवार
करें जो आकर यह व्यवहार?

वीरता इसे नहीं कहते–
कि हम-से पाँच-पाँच रहते,
हमारे भाई यों बहते,
और हम रहें इसे सहते।
दण्ड उनको देने के अर्थ
नहीं हैं क्या हम स्वयं समर्थ?

वत्स अर्जुन, सत्वर जाओ,
और तुम उन्हें छुड़ा लाओ।
शत्रु समझो, तो भी आओ
द्विगुण जय यों उन पर पाओ।
भीम, सहदेव, नकुल सब लोग;
करो जाकर समुचित उद्योग।"

Hindi Premi

कहा अर्जुन ने—"जो आदेश,
किन्तु सब लोग करें क्यों क्लेश?
द्रौपदी, क्या है राज्योद्देश?
बाँध सकती हो अब तुम केश।
आर्य्य के इस सद्भाव-समक्ष
और क्या हो सकता है लक्ष?"

द्रौपदी ने शोकाश्रु पिये,
भीम थे भू-पर दृष्टि दिये
गर्व से ऊँचा शीश किये
गये अर्जुन गाण्डीव लिये।
लिया उनको सिर पर पथ ने;
समादर किया चित्ररथ ने—

"मित्र अच्छे आये इस काल,
देख लो निज रिपुओं का हाल।
तुम्हारे काँटे ये विकराल
लिये हैं मैंने सभी निकाल।
मिले थे सुरपुर में हम लोग,
आज फिर आया शुभसंयोग।"

प्रेम-पूर्वक बोले तब पार्थ—
"हुआ मैं आज अतीव कृतार्थ।
यहाँ है ऐसा कौन पदार्थ,
करूँ जिससे आतिथ्य यथार्थ?
किन्तु ये भाई हैं मेरे—
आप यों जिनको हैं घेरे।"

चित्ररथ बोला—"कैसी बात!
ज्ञात तो हैं इनके उत्पात?"
कहा अर्जुन ने—"सब हैं ज्ञात,
विश्व भर में हैं वे विख्यात।
किन्तु कहते हैं आर्य्य उदार—
करेंगे उनका हमीं विचार।"

Hindi Premi

चित्ररथ बोला बाहु पसार—
"नहीं क्या मुझको यह अधिकार?"
कहा अर्जुन ने उसी प्रकार—
"युद्ध में जाऊँ जब मैं हार।"
"चाहते हो तो यही सही।"
चित्ररथ ने यह बात कही।
कहा अर्जुन ने—"अच्छी बात,
कीजिए 'श्रीगणेश' हे तात!
किन्तु वे दिव्यायुध विख्यात
ज्ञात हो मुझको भी हैं ज्ञात।
समझिए मुझको प्रस्तुत ही,
वैर-युत नहीं प्रेम-युत ही।"

अन्त में होने लगा सु-युद्ध,
नहीं था फिर भी कोई क्रुद्ध।
कार्य्य करते थे विनय-विरुद्ध,
किन्तु दोनों के मन थे शुद्ध।
पालने को निज पक्ष पवित्र।
तर्क-सा करते थे दो मित्र!

चित्ररथ ने की तब माया;
हुई उसकी अदृश्य काया।
त्राण उसने न किन्तु पाया,
शब्दबेधी शर धर लाया।
बनी वह बाणों की कारा,
हुआ वन्दी-सा बेचारा!

स्वयं वह करता जो जो वार,
पार्थ करते उसका प्रतिकार।
न होता उनका विफल प्रहार,
हुई गन्धर्वों की ही हार।
देख यह रीति लड़ाई की
उन्होंने आप बड़ाई की!

Hindi Premi

पार्थ फिर बोले वचन विनीत–
"क्षमा करना मुझको हे मीत!
हार हो चाहे मेरी जीत,
कार्य्य था किन्तु न विधि-विपरीत।
भाव अब भी हैं मेरे भव्य।
कठिन ही होता है कर्त्तव्य।

हुई रक्ताक्त आपकी देह!"
चित्ररथ बोला तव सस्नेह–
"बिजलियाँ चमकीं, बरसा मेह,
तृप्त ही हूँ मैं हे गुण-गेह।
आत्मजय तुमने पाया है,
शत्रु का शत्रु हराया है!"

लिए तब कौरव-दल को संग–
उड़ा था जिसके मुँह का रंग।
फिरे अर्जुन ज्यों मत्त मतंग,
पीठ पर डुलता चला निषंग।
पहुँच कर पाण्डव-राज-समीप,
प्रणत वे हुए पाण्डु-कुल-दीप।

झुका दुर्योधन का भी भाल,
अंक में भर उसको तत्काल,
युधिष्ठिर बोले आँसू डाल–
"कुल-व्रत पालो हे कुल पाल!"
किन्तु दुर्योधन का वह मौन
कहेगा सम्मति-सूचक कौन?

Hindi Premi

गुरुकुल

Hindi Premi

Hindi Premi

जिस कुल, जाति, देश के बच्चे
दे सकते हैं यों बलिदान,
उसका वर्तमान कुछ भी हो,
पर भविष्य है महा महान।

Hindi Premi

Hindi Premi

उपोद्घात

लिखने की धुन कहिए अथवा महापुरुषों की ओर हृदय का आकर्षण कहिए, लेखक को अपने साहित्यिक जीवन के आरम्भ में न जाने, किन-किन विषयों पर लिखने की उमंग उठा करती थी। महच्चरित्र संसार के किसी भाग पर उद्भूत हों, वे सार्वभौमिक होते हैं। इसलिए महाराणा प्रतापसिंह, छत्रपति शिवाजी और गुरु गोविन्दसिंह तक ही लेखक की वह लालसा सीमित न थी। हजरत हसन-हुसेन पर भी अपनी सहानुभूति प्रकट करने के लिए उसका हृदय उत्कण्ठित हुआ करता था। उन दिनों की आरम्भ की हुई कुछ रचनाएँ अब तक पूरी नहीं हुईं। कौन जाने, कभी होंगी या नहीं।

बहुत दिनों तक दुर्बल मस्तक से अतिरिक्त काम लेने के कारण स्वास्थ्य ऐसा भंग हो गया है कि वे मनोरथ प्रातःकालीन स्वप्नों के समान अथवा दरिद्रों के मनोरथों की भाँति धीरे-धीरे विलीन हो रहे हैं। इधर हिन्दी की कवि प्रवृत्ति भी एक नये मार्ग पर ऐसे वेग से बढ़ रही है कि लेखक आप ही आप पिछड़ रहा है। उसे इसकी चिन्ता नहीं। चिन्ता इसी बात की है कि अधूरी रचनाओं के रूप में उसकी कुछ इच्छाएँ पूरी हो जायँ तो उनके लिए पुनर्जन्म न लेना पड़े और, इस प्रकार, अनधिकार चेष्टा से उसे इसी जन्म में 'मुक्ति' मिल जाय!

तथापि, इधर, इस पुस्तक के लिखने की कोई सम्भावना न थी। किन्तु थोड़े दिन हुए एक सिख सज्जन ने बड़े स्नेह, आदर और साथ ही कुछ अभिमानपूर्वक लेखक से कहा था—"क्या आप सिख गुरुओं पर भी कुछ लिखने की कृपा करेंगे? हिन्दी के कवियों ने, कहना चाहिए कि अब तक उन पर कुछ नहीं लिखा। क्या गुरुओं के बलिदान इस योग्य नहीं कि मैं आपसे यह प्रार्थना न कर सकूँ?" राम! राम!! सिख गुरुओं के बलिदान तो ऐसे हैं कि जैसे कुछ होने चाहिए। लेखक बड़े असमंजस में पड़ गया। अपनी असमर्थता अथवा योग्यता की बात कहने का भी उसे साहस न हुआ। विवश होकर उसने यही निश्चय किया कि जब तक कोई काव्य-रचना न हो तब तक यह पद्य-रचना ही सही। लेखक का अपने गुरुजनों के प्रति श्रद्धांजलि देने का अधिकार तो सर्वथा अक्षुण्ण है। अस्तु।

Hindi Premi

लिखने का निश्चय होने के साथ ही पुस्तक के नामकरण की बात आयी। सहसा 'रघुवंश' की ओर लेखक का ध्यान गया। सोचा कि उसी के अनुकरण पर 'गुरुवंश' नाम देकर लिखना आरम्भ कर दिया जाय। परन्तु केवल नाम रखने ही से क्या होगा? वैसी कथावस्तु और वैसी वर्णना भी तो होनी चाहिए? छोटे-छोटे अनुष्टुप छन्दों में भी जो चमत्कार वहाँ दिखाई देता है उसका आभास भी यहाँ कहाँ से आवेगा? फिर 'नाम बड़े, दर्शन थोड़े' की कहावत चरितार्थ करने से क्या लाभ? तब सोचा, न हो 'गुरुशिष्य' नाम दिया जाय परन्तु 'सिक्ख' यद्यपि शिष्य से ही बना कहा जाता है परन्तु वह उससे सर्वदा स्वतन्त्र-सा दिखाई देता है। मानो यह नाम भी इतना सपूत निकला कि अपने पिता के नाम से परिचित होने की इसके लिए अपेक्षा नहीं। स्वयं मूल नाम ही इसकी सम्बन्ध-कामना करता है! अन्त में अपने एक आध मित्र के विरोध करने पर भी पुस्तक का नाम 'गुरुकुल' रखने का निश्चय किया गया। गुरुकुल एक संस्था विशेष का बोधक होने पर भी उपयुक्त जान पड़ा। क्योंकि सिक्खों के सम्बन्ध में वह गुरुकुल भी तो वैसी ही संस्था है।

सिक्ख इसी गुरुकुल में पढ़कर
प्राप्त कर सके हैं वह तत्व,
जीवण-रण क्षेत्र में बढ़कर
जिससे उन्हें मिला अमरत्व।

आर्य-समाज के सम्बन्ध के कारण गुरुकुल नाम एक देशीय हो उठा है। अतएव धार्मिक विवाद के कारण यह भिन्न सम्प्रदाय वालों के निकट अप्रिय न होने पावे, इस कारण से भी लेखक ने इसे रखना उचित समझा।

लेखक और कुछ नहीं कर सकता था तो वीरों का यशोगान करने के लिए वीर वृत्त चुनना तो उसके वश की बात थी। परन्तु उसने चतुष्पद वृत्त को द्विपद रूप में ग्रहण किया है। कहा नहीं जा सकता है कि यह उसका ह्रास है या विकास! परन्तु आरम्भ में ही पाठक देखेंगे कि मंगलाचरण की बात दो पंक्तियों में कहने की थी तो उसे खींचतान कर चार पंक्तियों में ले जाने की आवश्यकता न थी। कथा किंवा वर्णना मूलक प्रबन्धों में यही क्रम लेखक को ठीक जान पड़ता है। फिर भी प्रत्येक पद्य दो पंक्तियों में न छापकर चार पंक्तियों में छापा गया है।

धारावाहिक वर्णन में जैसा एक पद्य का क्रम आगे के पद्यों में चला जाता है वैसा ही यहाँ भी हुआ है। ऐसे स्थलों पर जैसे संस्कृत में युग्म, कलापक और कुलक छन्द समझ लिए जाते हैं वैसे ही हिन्दी में भी माने जा सकते हैं।

छन्द के अनन्तर भाषा के सम्बन्ध में लेखक की क्षुद्र सम्मति है कि इतने दिनों में, बोलचाल की भाषा ने कविता की भाषा बनने का अपना जन्म-जात अधिकार सिद्ध कर दिखाया है। यह भी कहा जा सकता है कि उसने इस विषय में 'स्वराज्य'

Hindi Premi

प्राप्त कर लिया। जहाँ पहले खड़ी बोली में कविता करने का घोर विरोध किया जाता था वहाँ अब यही सुनाई पड़ता है कि "खड़ी बोली में अवश्य कविता की जाय, परन्तु व्रजभाषा को न भुलाया जाय।" निस्सन्देह वह भुलाने योग्य नहीं। वह हिन्दी कवियों की वैदिक भाषा है! ऋचाओं की भाँति हमारे लिए पवित्र है। यों तो वैदिक भाषा बोलने वाले भी सब मन्त्राकार ही थोड़े ही रहे होंगे। तथापि हमें अपने पूर्वजों की थाती को नष्ट न होने देना चाहिए। सच पूछिए तो वही तो हमारी सम्पत्ति है, जिसे सैकड़ों वर्ष के परिश्रम से हमारे पुरखों ने उपार्जित करके हमें दिया है।

मान लिया कि बोलचाल की भाषा ने अपना जन्म सिद्ध अधिकार प्राप्त कर लिया। पर अब संघर्ष छोड़कर उसे स्वराज्य की व्यवस्था भी तो करनी चाहिए। जिस बड़े पद को उसने प्राप्त किया है उसका निर्वाह भी तो उसे करना चाहिए। विजय के अनन्तर शान्ति की स्थापना भी आवश्यक है। किसी भी भाषा की योग्यता उसकी शब्द-सम्पत्ति पर अवलम्बित है। विपुल अर्थ के लिए विपुल शब्द-भाण्डार होना चाहिए। सुश्राव्य होना भी भाषा का एक बड़ा गुण है, किन्तु यह भी उसके शब्दों पर अवलम्बित रहता है। उपयुक्त अर्थ के लिए उपयुक्त शब्द होने से श्रुति-सुखदता आप ही आप उत्पन्न हो जाती है।

बड़ी प्रसन्नता की बात है कि हिन्दी में भिन्न-भिन्न प्रकार के कोशों की रचना हो रही है। बोलचाल की भाषा की कविता का शब्द-भाण्डार भरने में अपनी प्रान्तिक भाषाओं से भी सहायता लेकर हमें उनसे सम्बन्ध-सूत्र बनाये रखना उचित जान पड़ता है। ब्रज, बुन्देलखण्डी और अवधी की तो बात ही जाने दीजिए; उन्हें तो हम लोग अपने घरों और गाँवों में नित्य बोलते ही हैं, लेखक की राय में तो अन्य प्रान्तिक भाषाओं में से भी हमें शब्द 'जोगाड़' करते हुए 'सिहरने' के बदले 'विभोर' ही होना चाहिए! परन्तु यह काम लेखक जैसे लोगों का नहीं; जिनके कान पक्के हों वही शब्द-झंकार को पहचान सकते हैं।

शब्द बोलते हुए संकेत हैं। जिस भाषा में भिन्न-भिन्न भावों और क्रियाओं के लिए भिन्न-भिन्न शब्द न हों वह कभी पूर्ण भाषा नहीं हो सकती।

हमारी प्रान्तिक बोलियों में कभी-कभी ऐसे अर्थ पूर्ण शब्द मिल जाते हैं जिनके पर्याय हिन्दी में नहीं मिलते। जब हम अरबी, फारसी और अंग्रेजी के शब्द निस्संकोच भाव से स्वीकार करते हैं तब आवश्यक होने पर अपनी प्रान्तीय भाषाओं से उपयुक्त शब्द ग्रहण करने में हमें क्यों संकोच होना चाहिए।

गुरुकुल में एक पंक्ति इस प्रकार है—

कंकण नहीं, मुझे तो कर दो,
जो वैरी को धरें समेट।

समेट धरना बुन्देलखण्डी मुहाविरा है। इसके बदले यह भी लिखा जा सकता था—

Hindi Premi

कंकण नहीं, मुझे तो कर दो,
करें शत्रु का जो आखेट।

परन्तु समेट धरने में एक विशेष अर्थ है। इसमें शत्रु को पछाड़ देने के साथ-साथ उसे सब ओर से दबा बैठने का भी चित्र खिंचता है, इसी कारण लेखक इसे रखने का लोभ-संवरण न कर सका। इसलिए वह क्षमाप्रार्थी है। क्योंकि यह प्रान्तिक प्रयोग है। तथापि एक प्रार्थना है—इस सम्बन्ध में हमें अपने ही पैरों खड़े होना चाहिए। जैसे वन्ध्या का बाँझ रूप तो हमारे लिए शिष्ट प्रयोग है परन्तु उसी प्रकार सन्ध्या का साँझ वैसा नहीं। उसकी अपेक्षा 'शाम' अधिक प्रयुक्त है। अच्छे से अच्छे शब्द को प्रयोग में न लाइए तो वह कुछ दिनों में शिष्ट न रह जायगा और साधारण शब्द भी व्यवहार में आने से कुछ दिनों में विशिष्ट बन जायगा।

लेखक का यह अभिप्राय नहीं कि 'शाम' का बहिष्कार कर दिया जाए। जो शब्द भिन्न भाषाओं के होने पर भी हमारी भाषा में मिल गये हैं वे हमारे ही हो गये हैं। परन्तु यह अवश्य कहा जायगा कि उनके सामने, उसी अर्थ के, अपने शब्दों को अशिष्ट समझना हमारे मन की नहीं तो कानों की गुलामी जरूर है! आज कल राजनीति की सभाओं में बहुधा एक बात देखी जाती है। वह हिन्दी शब्दों का चुन-चुनकर बहिष्कार और उनके बदले उर्दू फारसी के अलफाज का प्रचार। हिन्दी के हितचिन्तकों को सावधान हो जाना चाहिए। अपनी भाषाओं को छोड़कर हम अपने भावों की रक्षा नहीं कर सकते।

साधारण बोलचाल की भाषा से लिखने की भाषा में कुछ न कुछ अन्तर होता है। इसी प्रकार गद्य की भाषा की अपेक्षा पद्य की भाषा में कुछ अन्तर रहता है। पद्यकारों को एक अर्थ के अनेक शब्दों के प्रयोग करने की आवश्यकता पड़ती है। उन्हें और भी कुछ छूट मिलती है। संस्कृत में आवश्यकता होने पर ड और ल, ब और व एवं श और ष में अभेद मान लिया जाता है। कालिदास जैसे कवि को भी वह छूट लेनी पड़ी—

भुजलतां जलतामबलाजनः

इसमें जड़ता के स्थान में अनुप्रास की रक्षा के लिए जलता लिखा गया है। तथापि एक नियम के साथ। इस कारण इस सम्बन्ध में हमें सावधान रहना होगा।

घबड़ाना और घबराना तथा पिंजड़ा और पिंजरा दोनों का योग हिन्दी में होता है। झड़ना लिखने के बदले झरना भी लिखा जा सकता है परन्तु इसी प्रकार झगड़ा का झगरा नहीं लिखा जा सकता।

हम लोग चाहें तो अधिक सम्मति से कुछ नियम बना सकते हैं। जैसे ड और ल के अभेद को छोड़ ऊपर का संस्कृत-नियम हिन्दी में भी मान्य हो सकता है ण और न का अभेद भी माना जा सकता है। विशेषकर पद्य में। इस प्रकार उर्दू फारसी

Hindi Premi

के शब्दों के प्रयोग में यदि क़ ख़ ग़ और ज़ आदि के नीचे की बिन्दी निकाल दी जाय तो वे मानो संस्कृत होकर हिन्दी के ही बन जायँ। पद्य में उनका प्रयोग बहुत अच्छा मालूम होता है। पर जवादानी में तो अन्तर पड़ने की आशंका नहीं? बंगला भाषा भिन्न भाषा के शब्दों को अपनाना खूब जानती है।

परन्तु ये सब बातें विद्वानों के विचार करने की हैं। लेखक इस ओर उनका ध्यान मात्र आकर्षित करके अपने दो एक प्रान्तिक प्रयोगों के लिए क्षमा-प्रार्थी है।

चली न उनकी एक चाल भी
बिगड़ गयी उनकी सब औज।

इसमें 'औज' के बदले 'मौज' शब्द रक्खा जा सकता था, परन्तु 'औज' में हौसला और सूझ-बूझ दोनों का भाव भरा हुआ है। इसमें शत्रुओं के किंकर्तव्यविमूढ़ होने का ही अर्थ नहीं किन्तु उसके फलस्वरूप उनके चेहरों पर हवाई उड़ने का भी चित्र अंकित है।

तोड़-मरोड़ उखाड़ पछाड़े
बड़े-बड़े बहु अज्झड़ झाड़।

अज्झड़ शब्द में विशाल, भारी और सघन तीनों अर्थों का समावेश है। इसलिए वह झाड़ों के विशेषण के लिए लेखक को बहुत ही उपयुक्त मालूम पड़ा।

ऊपर समेट धरने के सम्बन्ध में लिखा जा चुका है। एक दूसरी पंक्ति और सुनिए—

'रपट पड़े की हर गंगा' में
मिट सकता है क्या उपहास!

'रपट पड़े की हर गंगा' एक कहावत है, जो इस ओर प्रसंगानुसार कही जाती है। मालूम नहीं, और कहीं इसका प्रचार है या नहीं। किसी ढंग से अपनी कमजोरी छिपाने के सम्बन्ध में इसका प्रयोग होता है। एक जन फिसलकर अचानक पानी में गिर पड़ा। दूसरे देखने वाले कहीं हँसी न करें, यह सोचकर 'हर गंगा' 'हर हर गंगा' कहकर वह स्नान करने का अभिनय करने लगा। किन्तु लोग कब चूकने वाले थे? कह उठे—अजी, यह तो रपट पड़े की हर गंगा है!

भाषा यथा सम्भव सरल रखने की चेष्टा की गयी है। परन्तु इस सम्बन्ध में पाठकों से एक निवेदन करना है। पुस्तक में एक पंक्ति पहले इस प्रकार थी—

किन्तु साँप सीधा होकर भी
नहीं छोड़ता है गति वक्र भी

बाद में यह इस प्रकार बदल दी गयी—

Hindi Premi

पर द्विजिह्व सीधा होकर भी
नहीं छोड़ता है गति वक्र।

द्विजिह्व शब्द यहाँ अधिक उपयुक्त जान पड़ा। वे मुसलमान जो बन्दा की अधीनता में रहते थे भीतर भी भीतर नवाब से मिले हुए थे। अतएव उनके लिए द्विजिह्व पद अधिक अर्थसूचक जान पड़ा। चुगलखोर के अर्थ में भी वह आता है।

फैली कृषि युत कृषिग्रासिनी
घास-राशि-सी पश्वाशक्ति।

यहाँ 'कृषिग्रासिनी' के स्थान में 'कृषिविनाशिनी' भी कहा जा सकता था, परन्तु लेखक को इसमें वह ओज नहीं दिखाई दिया।

एक पंक्ति इस प्रकार है—

बलगौरव के करलाघव के
सूक्ष्मदृष्टि के हुए प्रमाण।

इसमें क्रम के अनुसार सूक्ष्म दृष्टि के बदले दृष्टि-सौक्ष्म्य उचित होता। परन्तु व्यर्थ क्लिष्टता से बचने के लिए वैसा ही रहने दिया गया।

भाई, किधर जा रहे हो तुम
अपना ओक-लोक सब छोड़।

'ओक-लोक' कुछ क्लिष्ट होने पर भी घर-वार से अधिक अर्थ वाले एक नये मुहावरे के रूप में रक्खा गया है।

गुरुओं के सम्बन्ध में लेखक ने यथा सम्भव श्रद्धापूर्वक ही लिखने का प्रयत्न किया है। इसलिए पंचककारों के सम्बन्ध में कच्छ और कृपाण के समान कड़ा, केश और कंघी का महत्त्व स्वयं न मानते हुए भी उनके विषय में युक्तियों की कल्पना की गयी है। कंघे का तो स्वतन्त्र कोई अस्तित्व ही नहीं। इसलिए केशों को ही 'कंघी के संगी' कह कर सन्तोष कर लिया गया है।

महापुरुषों के विषय में अलौकिक बातों की प्रसिद्धि स्वाभाविक है। परन्तु आश्चर्य तो इस बात का है कि गुरु प्रायः करामातों से बराबर इनकार करते रहे; तब भी उनके सम्बन्ध में ऐसी बातों की चर्चा नहीं रुकी। महापुरुषों में विशेष शक्ति का होना लेखक को अमान्य नहीं। किन्तु इस सम्बन्ध में उसने गुरु नानक जी और गुरु तेगबहादुर जी के आदेश का पालन किया है। कहते हैं, गुरु नानक को एक बार सिकन्दर लोधी ने इसलिए कैद कर लिया था क्योंकि उन्होंने चमत्कार दिखाने से इनकार कर दिया था। डाक्टर गोकुलचन्द नारंग ने लिखा है कि यह बात अधिक युक्ति संगत मालूम पड़ती है कि गुरु नानक के निर्भीक आक्षेप, जिन्हें आजकल की परिभाषा में राजद्रोह कहा जावेगा, उनके बन्दी होने के वास्तविक कारण थे।

Hindi Premi

वस्तुतः गुरु नानक निर्भय होकर मुसलमानों के कष्टकर धर्मोन्माद के विरुद्ध अपने विचार प्रकट किया करते थे और हिन्दुओं के दुःखों का रोना रोया करते थे। एक जगह उन्होंने कहा है—

"समय कटार के समान है। शासक हत्यारे हैं। धर्म पंख लगाकर उड़ गया है। असत्य की अमावस्या सबके ऊपर राज्य कर रही है। सत्य का चन्द्रमा किसी को दिखाई नहीं देता।"

चमत्कार के विषय में लेखक ने गुरु नानक का वर्णन करते हुए एक स्थान पर लिखा है—

एक धूर्त विस्मय की बातें
करता था गुरु बोले—"जाव,
बढ़े चमत्कारी हो तुम तो
अन्न छोड़कर पत्थर खाव!"

इसमें जो बात गुरु के मुँह से कहलाई है वह वास्तव में उन्हीं की कही हुई है।

इसी प्रकार गुरु तेगबहादुर ने औरंगजेब को करामात दिखाने से नाहीं कर दी थी। उनकी और औरंगजेब की बातचीत अधिकतर लेखक की कल्पनामयी है पर उसमें जो सत्य निहित है वह पूर्व का ही है।

कहते हैं, जब औरंगजेब के अत्याचार से गुरु अत्यन्त पीड़ित हुए तब उन्होंने उसे चमत्कार दिखाना मंजूर किया था। उन्होंने एक पत्र अपने गले में बाँध लिया था और कहा था कि इसे बाँधने पर गला नहीं कट सकता। किन्तु जब उनका गला कट गया और वह पत्र खोलकर देखा गया था तब उसमें यही लिखा था कि 'सिर दिया, पर सार न दिया!'

आगे वीर बन्दा के विषय में भी एक बार यह प्रसंग आता है। वैरागी के विषय में भी प्रसिद्ध था कि जादूगर है। इसी को सुनकर गुरु गोविन्दसिंह से प्रश्न कराकर उत्तर दिलाया गया है—

नहीं अलौकिक कुछ जगती में,
चमत्कारिणी सहसा दृष्टि;
चौंके होंगे देख प्रथम हम
चकमक की चुम्बक की सृष्टि।

लेखक ने वैरागी को योगसिद्ध अवश्य माना है, जैसा कि उसके विषय में प्रसिद्ध है। पर इसे भी लेखक अलौकिक मानने के लिए तैयार नहीं—

एक महात्मा की संगति में
साधा है मैंने कुछ योग;

Hindi Premi

अपनी ही विशेषताओं से
वंचित हैं बहुधा हम लोग।

सारांश, इसमें गुरुओं के विषय में उनकी अलौकिक बातें छोड़कर लेखक ने उनकी महत्ता दिखाने का प्रयत्न किया है और ऐतिहासिक महापुरुषों को पौराणिक रूप नहीं दिया। आशा है, उसने यह उचित ही किया है।

पर इससे गुरु के अनुयायी यह न समझें कि लेखक ने उन्हें साधारण कोटि में रक्खा है—लेखक ने गुरु नानक के विषय में कहा है कि—

निश्चय नानक में विशेष था
उसी अकाल पुरुष का अंश।

इसी प्रकार गुरु गोविन्दसिंह को उसने ईश्वरी विभूति माना है—

इस विभूति का भी भागी था
पाटिलपुत्र अलौकिक ओक।

और इसी विश्वास के कारण उसने उनको अधिक से अधिक अपनाने का प्रयत्न किया है। इसी कारण उन बातों को भी लेखक ने छोड़ दिया है जो उसे उनके गौरव के अनुरूप नहीं मालूम हुईं।

महापुरुषों के नाम पर कितनी ही झूठी सच्ची बातें प्रचलित हो जाया करती हैं। बहुधा लोग अपने भजनों के अन्त में जोड़ देते हैं कि—'कहें कबीर सुनो भई साधो'। रामायण में भी कितने ही क्षेपक मिला दिये जाते हैं। पर इस सम्बन्ध में हमें सावधान रहना चाहिए। गुरु नानक के सम्बन्ध में लेखक की राय में कुछ ऐसी ही बातें प्रसिद्ध हैं। "जैसे सूर्य को जल देते देखकर गुरु का गंगाजी में अपने खेत के उद्देश्य से पानी देने लगना और यह कहना कि यदि यह पानी यहाँ से दो सौ मील मेरे खेत को नहीं पहुँच सकता तो लाखों मील दूर सूर्य को कैसे प्राप्त हो सकता है। अथवा मक्के जाकर कावे की ओर पैर करके सोने पर यह कह कर मौलवियों की आपत्ति का उत्तर देना कि यदि कावे में पैर करके सोने से खुदा की ओर पैर करके सोना पड़ता है तो जिस ओर खुदा न हो उसी ओर मेरे पैर कर दो।"

किसी भी धर्म के सम्बन्ध में उसके आध्यात्मिक और लौकिक रूप को न समझने वाले ऐसी कुतर्कनाएँ कर सकते हैं। पर महापुरुष कभी कुतर्कनाएँ नहीं करते। हाँ, गुरु नानक का किसी नवाब के साथ उपासना करना इसलिए अस्वीकार कर देना कोई आश्चर्य की बात नहीं कि उसका मन माया में उलझा हुआ था और शरीर से प्रणाम करता हुआ भी वह मन से कहीं घोड़े खरीद रहा था। परन्तु इस छोटी-सी पुस्तक में सब बातों का वर्णन असम्भव था।

जो हो, महापुरुषों के विषय में कोई किंवदन्ती सुनकर हमें सहसा उस पर

Hindi Premi

विश्वास न कर लेना चाहिए। यह देख लेना चाहिए कि वह बात उनके गौरव के अनुरूप है या नहीं? सुना है, गुरु गोविन्दसिंह के विषय में कहा जाता है कि उन्होंने देवी का यज्ञ केवल लोक दिखाव के लिए किया था। परन्तु यह कहना मानो गुरु के महत्त्व को घटाना है। गुरु गोविन्दसिंह के समान पुरुष के प्रति यह कहना उनका अपमान करना है कि 'उन्होंने अपने लाखों अनुयायियों को धोखे में रखकर एक ऐसे काम में अपने अमूल्य समय और विपुल धन का नाश किया जिसका उन्हें विश्वास न था।' सिक्खों के विषय में डाक्टर गोकुलचन्द नारंग का आर्षकथन है—"इसमें कुछ सन्देह नहीं कि गुरु ने देवी को साक्षात् करने के स्पष्ट उद्देश्य से एक बड़ा भारी यज्ञ रचाया प्रतीत होता है।" उनकी राय में—"देवी की सत्ता में सिक्खों का कुछ न कुछ विश्वास था और वे हवन आदि की फलोत्पादकता में भी विश्वास रक्खे थे।" इतना ही नहीं, कहीं-कहीं तो लेखक को गुरुओं की रचना वैष्णव भक्तों की ही रचना जान पड़ती है। गुरु तेगबहादुर का एक पद सुनिए—

"साधो, गोविन्द के गुन गाओ।
मानुष जनम अमोलक पायो विरथा काहे गँवाओ।
पतित पुनीत दीनबन्धू हरि ताहि शरण तुम आओ।
गज को त्रास मिटत जिहि सुमिरत तुम काहे बिसराओ।
तजि अभिमान मोह माया पुनि राम भजन चितलाओ।
नानक कहत मुकति पंथा यह गुरु-मुख है तुम पाओ।"

पटने के गुरुद्वारे की गद्दी के प्रसिद्ध महन्त बाबा सुमेरसिंह जी के विषय में श्रीयुक्त शिवनन्दनसहायजी ने 'सिक्ख गुरुओं की जीवनी' में लिखा है कि एक सिक्ख ने उनसे पूछा कि सिक्ख क्या हिन्दू हैं? आपने कहा—निस्सन्देह। स्वयं गुरु का वाक्य है—

"जगै धर्म हिन्दू सबै भण्ड भाजै"

दशम ग्रन्थ में उनका श्री मुख वाक्य है—

"तिलक जयूँ ताको प्रभु राखा,
कीन्हौ बड़ौ कलू में साका।
साधुन हेतु इती जन करी,
सीस दिया पर सी न उच्चरी।"

स्वयं बाबा सुमेरसिंह ने एक बार काशी के गोपाल मन्दिर में हाथ जोड़कर 'वाह गुरु की फतह' बोली थी और एक स्वर्ण-मुद्रा मन्दिर की देहली पर रखकर पूजा चढ़ाई थी। उनके साथी एक निहंग को यह बात बहुत खटकी। आपने मुसकराकर उससे कहा—खालसा जी, आप परम गुरु आदि ग्रन्थ के इस वचन को याद कीजिए—

Hindi Premi

"आपै देव, देहरा आपै
आप लगावै पूजा;
जल तें तरंग तरंग तें जल है
कहन सुनन को दूजा।"

लेखक ने औरंगजेब और गुरु तेगबहादुर की बातचीत में इस पद्य का उपयोग किया है। बाबा सुमेरसिंह जी का एक कवित्त भी इस सम्बन्ध में उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा—

"तेरी पाय सत्ता विधि पालत प्रकट बात,
तेरी पाय सत्ता हैं सुरेश रजधानी मैं।
तेरी पाय सत्ता सत नाम कौ प्रकास होत,
भगत स्वरूपनी गुरू की ज्ञान बानी मैं।
तेरी पाय सत्ता श्री गुरू गुविन्दसिंह जू की
सेवकाई पाइए सुमेरसिंह मानी मैं!"
करता कृपानी जोति जागती प्रमानी जग—
दम्बिका भवानी सुखदानी अनुमानी मैं!

महाराज रणजीतसिंह के विषय में हम देखते हैं कि वे ज्वालामुखी के दर्शन करने जाते हैं और उनकी ओर से ढाई ढाई सौ मन घी वहाँ चढ़ाया जाता है। उनके अन्तिम स्नान के लिए हरिद्वार से गंगाजल मँगाया जाता है। मृत्यु के समय उन्होंने प्रसिद्ध 'कोहनूर' हीरा भी जगन्नाथ जी के मन्दिर या अमृतसर के सिख मन्दिर में दान करने की इच्छा प्रकट की थी। परन्तु तोशेखाने के अधिकारी बलीराम के न देने के कारण वह रह गया और अन्त में अंग्रेजी राजमुकुट में जड़ा गया।

सिक्खों को अपने स्वतन्त्र विचार रखने का अधिकार है, और लेखक उनमें बुद्धि-स्वातन्त्र्य की ही कामना करता है; परन्तु ऐतिहासिक सत्य को उलट-पुलटकर किसी महापुरुष के विषय में जो मन में आया सो कहने का अधिकार किसी को न होना चाहिए।

जबसे हिन्दुओं से अलग-अलग रहने की भावना सिखों में फैली या फैलाई गयी तभी से सम्भव है इस तरह की बातें भी कही जाने लगी हों। परन्तु लेखक का विनीत निवेदन है कि यह नीति हानिकारिणी है। धर्म को संकीर्ण नहीं, उदार होना चाहिए। भेद बढ़ाने से हानि के अतिरिक्त लाभ कुछ नहीं। लेखक ने जहाँ तक हो सका मतभेद की बातों से अपने को बचाया है। यदि इस पुस्तक से हम में परस्पर कुछ भी एकता की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई तो लेखक का सारा श्रम सार्थक हो जायगा।

इस पुस्तक में कहीं-कहीं घटनाओं का वर्णन तिथियों के क्रम से न रखकर प्रसंगानुसार रक्खा गया है। जैसे गुरु हरगोविन्दजी की लोकप्रियता का वर्णन करते

Hindi Premi

हुए लोगों का उनकी चिता में जल मरने का भी उल्लेख कर दिया है, यद्यपि वहाँ उनके चरित की समाप्ति नहीं होती। लेखक ने 'तवारीख' न लिखकर गुरुओं का इतिवृत्त लिखने का प्रयत्न किया है।

सरहिन्दी सूबा के सामने गुरु के बच्चों की जो बातचीत लिखी गयी है, सम्भव है, किसी किसी को वह उनकी अवस्था के अनुरूप न मालूम हो। परन्तु उन बालकों की तुलना साधारण बालकों से नहीं की जा सकती। आजकल अंग्रेजों की बात अधिक प्रामाणिक मानी जाती है। महाराज रणजीतसिंह के पौत्र के विषय में, जिसकी अवस्था केवल सात बरस की थी, कप्तान वीड ने जो कुछ कहा है उसे उद्धृत करते हुए श्रीयुक्त वेणीप्रसाद जी ने अपने महाराज रणजीतसिंह नामक ग्रन्थ में उसका आशय इस प्रकार दिया है–

"मैंने ऐसा बुद्धिमान् बालक कभी नहीं देखा। यह बड़ा सुन्दर है, और इसकी बड़ी आँखों से एक अजीब भाव टपकता है। इसके अदब, कायदे और शिष्टाचार खासे भद्र-पुरुषों के-से हैं, जिससे सहज ही इसकी तरफ मन खिंच जाता है और इस उम्र के योरोपियन बालकों में जो उद्दण्डता पाई जाती है, उसका इसमें कहीं लेश मात्र भी नहीं है। बातों-बातों में, मैंने उससे पूछा, "क्यों जी, क्या यह तुम्हारा बन्दूक असली है, तुमने क्या कभी इसे चलाया है?" मेरी बात सुनते ही वह क्रोध के मारे कुरसी पर से उछल पड़ा और चटपट अपनी बन्दूक भरकर कहने लगा–"कहिए, अब किस पर गोली मारूँ (चलाऊँ)?" मैंने जवाब दिया कि "इस समय तो मैं कोई ऐसी वस्तु नहीं देखता जिस पर निशाना लगाना बजोखिम हो।" और साथ ही पूछा कि, "अच्छा, क्या तुम सौ गज की दूरी पर इस बन्दूक से किसी आदमी को चोट पहुँचा सकते हो?" इसके जवाब में बिना जरा हिचके उसने फौरन सामने के कुछ सिक्ख सरदारों और सिपाहियों की ओर इशारा करके कहा–"देखिए, ये सब तो अपने दोस्त हैं, मुझे कोई अंग्रेज सरकार का दुश्मन बतलाइए, फिर देखिए मैं क्या कर सकता हूँ।"

इस प्रसंग में लेखक अपने मित्र कल राजा के कुमार की चर्चा करने का लोभ नहीं संवरण कर सकता वह अभी बच्चा ही है। सम्भवतः बारह वर्ष का होगा। एक दिन एक ठाकुर साहब राजा साहब से मिलने के लिए आये। उनकी और राजा साहब की चुनाव-सम्बन्धी कुछ खटपट चल रही थी। जाते समय ठाकुर साहब ने बच्चे से कहा–"देखिये, कुँवर साहब, आपके दादा जी हमारा विरोध करते हैं।" 'कुँवर साहब' उन दिनों अपनी रियासत के मैनेजर साहब से 'पलासी का युद्ध' पढ़ा करते थे। झट उन्होंने उसकी दो पंक्तियों को कुछ बदलकर एक विचित्र भाव-भंगी से पढ़ दिया–

"निश्चय ही मैं युद्ध करूँगा, बदला लूँगा;
कुछ भी करें जनाब, आपको प्रतिफल दूँगा।"

Hindi Premi

दूसरी पंक्ति असल में इस प्रकार है—

कुछ भी करे नवाब उसे मैं प्रतिफल दूँगा;

इसे सुनकर सब लोग क्षण-भर तक सन्न से रह गये!

फिर गुरु पुत्रों के विषय में कहना ही क्या? यह तो निश्चय ही है कि उन्होंने अपना धर्म छोड़ने के बदले जीते जी चुना जाना स्वीकार किया था। जो बातें उनसे सूबा के प्रति प्रत्युत्तर के रूप में कहलाई गयी हैं वे उनके लिए कठिन नहीं कही जा सकतीं। उनके पिता धर्मगुरु थे और मुसलमानों से उनका घोर विरोध था। उनके दरबार में इस तरह की बातों की चर्चा नित्य हुआ करती होगी और वे उसे सुना करते होंगे। अनेक पंक्तियाँ तो ऐसी हैं जो मानो पहले ही से उन्हें याद हों और इस अवसर पर उन्होंने उनकी आवृत्ति मात्र कर दी हो। अस्तु।

जिस पुस्तक में अनेक महापुरुषों और वीर बालकों के पुण्य चरित्रों का वर्णन हो उसमें स्त्री-चरित्र के लिए बहुत ही कम अवकाश पाना लेखक को बहुत खटका। कथाओं की अधिष्ठात्री, पवित्र भावों की प्रतिमा और रस की जीवनी तो कुलांगनाएँ ही होती हैं। उन्हीं के पवित्र चरित्र के वर्णन से लेखनी अपने को कृतार्थ समझती है। परन्तु लेखक विवश था। उसे कल्पना की सहायता लेने का अधिकार था परन्तु चित्र चित्रण के लिए एक चित्रपट भी तो चाहिए। चमकौर युद्ध का वर्णन करते हुए डाक्टर गोकुलचन्द नारंग ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सिक्खों के परिवर्त्तन' में लिखा है—"गुरु के दो सबसे बड़े पुत्र अजीतसिंह और जुझारसिंह तथा उन बालकों की माँ सुन्दरी का उनके सामने ही वध हुआ। स्वयं गुरु ने बड़ी वीरता के साथ युद्ध किया और अपने हाथों से नाहरखाँ को मार डाला और ख्वाजा मुहम्मद को घायल कर दिया।"

गुरु-पत्नी के सम्बन्ध में जो कुछ लेखक ने इस पुस्तक में लिखा है वह इन्हीं पंक्तियों के आधार पर। पाठक देखेंगे कि उसकी कल्पना सत्य की नींव पर खड़ी है।

गुरु गोविन्दसिंह जी की तीन स्त्रियाँ थीं—जैतीजी, साहबदेवी और सुन्दरी। भाई परमानन्दजी ने अपने 'वीर-वैरागी' में इस घटना के आगे भी सुन्दरी की चर्चा की है। लिखा है कि फरुखसियर ने भोली-भाली गुरु-पत्नियों को भुलाकर बन्दा वैरागी के विरुद्ध सुन्दरी से पत्र लिखाया। परन्तु वहाँ भी दो पत्नियों का जीवित रहना पाया जाता है। सम्भव है नामों में कुछ भूल हो गयी हो और वे सुन्दरी न होकर जैतीजी रही हों। बाबू शिवनन्दन सहाय जी ने 'सिक्ख गुरुओं की जीविनी' में जैतीजी का मरना पहले लिखा है। कहा गया है कि उन्हें पुत्रों के मरने की बात पहले ही ज्ञात हो गयी थी। इसलिए उन्होंने उस दुर्घटना के पूर्व ही गुरु की आज्ञा से शरीर छोड़ दिया था।

इस सम्बन्ध में लेखक ने डॉक्टर गोकुलचन्द नारंग से लिखा-पढ़ी की थी। उन्होंने कृपापूर्वक उत्तर दिया था कि लेखक बेखटके उनकी बात पर विश्वास कर

Hindi Premi

सकता है। वे अपने 5 जुलाई 1928 के पत्र में लिखते हैं–

With reference to your letter of enquiry I regret I cannot throw any further light on the subject. I may, however, say that you can safely rely on my book because thorough investigation was made by me at the time I wrote that book.

जिन पुस्तकों से गुरुओं के विषय में लेखक को यह पुस्तक लिखने में सहायता मिली है उनमें से कुछ का उल्लेख इस भूमिका में आ चुका है। उनके सिवा पण्डित ज्वालादत्त शर्मा कृत 'सिक्खों के दश गुरु' और स्वर्गीय नन्दकुमार देवजी शर्मा की कई पुस्तकों से भी लेखक ने लाभ उठाया है। इसके लिए वह इन सब ग्रन्थकारों का कृतज्ञ है।

अन्त में एक बात और। मुसलमानों से गुरुकुल का संघर्ष रहा है; उनके विरुद्ध ही बहुधा उनके बलिदान हुए हैं। अतएव उन बातों की चर्चा अनिवार्य थी। परन्तु पाठक देखेंगे कि यथा स्थान लेखक ने मुसलमानों के प्रति सद्भाव प्रकट करने की भी चेष्टा की है। इस सम्वन्ध में, स्वयं बन्दा के मुँह से कहलाया है–

हिन्दू हो या मुसलमान हो,
नीच रहेगा फिर भी नीच;
मनुष्यत्व सबके ऊपर है
मान्य महीमण्डल के बीच।

अब तो वे विरोध के दिन भी चले गये और हम और वे एक ही स्थिति में हैं। ऐसी दशा में लेखक की यही प्रार्थना है–

हिन्दू-मुसलमान दोनों अब
छोड़ें वह विग्रह की नीति,
प्रकट की गयी है यह केवल
अपने वीरों के प्रति प्रीति।

चिरगाँव
मार्गशीर्ष शुक्ल 9-1985

Hindi Premi

Hindi Premi

श्रीगणेशाय नमः

गुरुकुल

मंगलाचरण

जय कबीर-नानक-दादू का,
बापू का वाणी-विश्राम,
नवनवरूप पुराणपुरुष उन
लीलाधाम राम का नाम।

शुचि मानस में ही प्रतिबिम्बित
होता है प्रभु का रस-रूप;
घट की डोर लगे जब हरि से
पानी क्यों न भरे भव-कूप?

Hindi Premi

अवतरण

चला धन्य गुरु-विजय-पन्थ वह
यहाँ यवन-भय के ही संग;
ग्रहण-काल भी दे जाता है
मन्त्र-सिद्धि का योग अभंग।
आर्त-अधीन हुआ था भारत,
हत चिन्तारत भय से भ्रान्त,
पुण्य पंचनद प्रान्त कभी से
था विजातियों से आक्रान्त।
आर्य जाति की ऋद्धि-सिद्धि ने
दी थी उसे प्रथम जो शान्ति,
उससे अगति आ गयी उसमें,
यद्यपि उसे मिली विश्रान्ति।
पाकर विपुल विभव पुरखों का
बने द्विजाति विलासी मात्र;
श्रम से विमुख उच्चकुल वाले
होते क्यों न पराजय-पात्र?
योगी से भोगी होकर हम
अबल हो गये अपने आप;
काम-क्रोध-मद-मोह-लोभमय
प्रबल हो गये पाँचों पाप।
आडम्बर में लगे छिपाने
अपनी धर्म-हीनता लोग,
फैले रूढ़ रीतियों वाले
मिथ्या विश्वासों के रोग।

Hindi Premi

करके घृणा मात्र औरों पर
करते थे द्विज शुचिता सिद्ध;
किये गये निज-सम मनुजों को
घाट-बाट तक हाय! निषिद्ध।
एकगोत्रवालों में भी यों
उपजा ऊँच-नीच का भेद,
खान-पान मिट गया परस्पर,
छिन्न-भिन्न सब हुए सखेद।
तब भी धन था, विना परिश्रम
पाकर दान मान की आय,
चलने लगा बिना पूँजी का
धर्म नाम वाला व्यवसाय!
मन्दिर और मठों में, जिनमें—
होती सफल मनुज-कुल-भक्ति,
फैली—कृषियुत कृषिग्रासिनी
घास-राशि-सी—पश्वासक्ति।
आश्रमधर्ममयी जीवन की
हुईं दिशाएँ चारों भ्रष्ट;
मनमाने पथ पर चल चल कर
होते थे नर निर्बल-नष्ट।
उस निष्काम कर्म के ऊपर
फैला वाममार्ग का जाल,—
नर-बलि तक सकाम साधन में
थी कब की चल चुकी कराल!
वेद-विहीन विप्र औरों का
सह सकते कैसे स्वाध्याय?
बस, बहुतों के लिए हो गयी
श्रुति-संज्ञा भी मिथ्याप्राय।
वहाँ नारियों की शिक्षा क्या
जहाँ अशिक्षित हों नर आप?
चले व्यर्थभय-विस्मयमूलक
फलकामी बहु क्रिया-कलाप।
छाया था सब ओर यहाँ पर
उद्धत यवनों का आतंक;

Hindi Premi

देख धर्म पर दारुण संकट
रहते थे सब सभय-सशंक।
तोड़ मूर्ति-मन्दिर, गो-वध कर
करते अरि अविचार यथेच्छ;
हिन्दू-मुसलमान शब्दों के
अर्थ हो गये काफिर-म्लेच्छ।
अब के मित्र शत्रु थे तब के
बली, विजाति, विधर्मी लोग;
धर्म-भ्रष्ट हमें करते थे
करके बहुधा बल-प्रयोग।
ग्रन्थ-ज्ञाननिधि तक चिर संचित
चाट रही थी उनकी आग;
निरुत्साह, नैराश्य और था
भयविषादमय विषम विराग।

Hindi Premi

गुरु नानक

मिल सकता है किसी जाति को
आत्मबोध से ही चैतन्य;
नानक-सा उद्बोधक पाकर
हुआ पंचनद पुनरपि धन्य।
साधे सिख गुरुओं ने अपने
दोनों लोक सहज - सज्ञान;
वर्त्तमान के साथ सुधी जन
करते हैं भावी का ध्यान
हुआ उचित ही वेदीकुल में
प्रथम प्रतिष्ठित गुरु का वंश;
निश्चय नानक में विशेष था
उसी अकाल पुरुष का अंश।
सार्थक था 'कल्याण' जनक वह,
हुआ तभी तो यह गुरुलाभ;
'तृप्ता' हुई वस्तुतः जननी
पाकर ऐसा धन अमिताभ।
पन्द्रह सौ छब्बीस विक्रमी
संवत् का वह कातिक मास
जन्म समय है गुरु नानक का,–
जो है प्रकृत परिष्कृति-वास।
जन-तनु-तृप्ति-हेतु धरती ने
दिया इक्षुरस युत बहु धान्य;
मनस्तृप्ति कर सुत माता ने
प्रकट किया यह विदित वदान्य।

Hindi Premi

पाने लगा निरन्तर वय के
साथ बोध भी वह मतिमन्त;
संवेदन आरम्भ और है
आत्म-निवेदन जिसका अन्त।
आत्मबोध पाकर नानक को
रहता कैसे पर का भान?
तृप्ति-लाभ करते वे बहुधा
देकर सन्त जनों को दान।
खेत चरे जाते थे उनके,
गाते थे वे हर्ष समेत—
"भर भर पेट चुगोरी चिड़ियो,
हरि की चिड़ियाँ, हरि के खेत!"
वे गृहस्थ होकर त्यागी थे
न थे समोह न थे निस्स्नेह;
दो पुत्रों के मिष प्रकटे ये
उनके दोनों भाव सदेह।
त्यागी था श्रीचन्द्र सहज ही
और संग्रही लक्ष्मीदास;
यों संसार-सिद्धि-युत क्रम से
सफल हुआ उनका संन्यास।
हुआ उदासी - मत - प्रवर्वक
मूल पुरुष श्रीचन्द्र सटीक,
बढ़ते हैं सपूत गौरव से
आप बनाकर अपनी लीक।
पैतृक धन का अवलम्बन तो
लेते हैं कापुरुष-कपूत,
भोगी भुजबल की विभूतियाँ
था वह लक्ष्मीदास सपूत।
पुत्रवान होकर भी गुरु ने,
दिखलाकर आदर्श उदार,
कुलगत नहीं, शिष्य-गुणगत हो
रक्खा गद्दी का अधिकार।
इसे विराग कहें हम उनका
अथवा अधिकाधिक अनुराग,

Hindi Premi

बढ़े लोक को अपनाने वे
करके क्षुद्र गेह का त्याग।
प्रव्रज्या धारण की गुरु ने,
छोड़ बुद्ध सम अटल समाधि,
सन्त शान्ति पाते हैं मन में
हर हर कर औरों की आधि।
अनुभव जन्य विचारों को निज
दे दे कर 'वाणी' का रूप
उन्हें कर्मणा कर दिखलाते
भाग्यवान वे भावुक-भूप।
एक धूर्त विस्मय की बातें
करता था गुरु बोले—'जाव,
बड़े करामाती हो तुम तो
अन्न छोड़कर पत्थर खाव!'
वही पूर्व आदर्श हमारे
वेद विहित, वेदान्त विशिष्ट,
दिये सरल भाषा में गुरु ने
हमें और था ही क्या इष्ट?
उसी पोढ़ प्राचीन नींव पर
नूतन गृह-निर्माण समान
गुरु नानक के उपदेशों ने
खींचा हाल हमारा ध्यान।
दृषद्वती तट पर ऋषियों ने
गाये थे जो वैदिक मन्त्र,
निज भाषा में भाव उन्हीं के
नानक भरने लगे स्वतन्त्र।
निर्भय होकर किया उन्होंने
साम्य धर्म का यहाँ प्रचार,
प्रीति नीति के साथ सभी को
शुभ कर्मों का है अधिकार।
सारे, कर्मकाण्ड निष्फल हैं
न हो शुद्ध मन की यदि भक्ति,
भव्य भावना तभी फलेगी
जब होगी करने की शक्ति।

Hindi Premi

यदि सत्कर्म नहीं करते हो,
भरते नहीं विचार पुनीत,
तो जप-माला-तिलक व्यर्थ हैं,
उलटा बन्धन है उपवीत।
परम पिता के पुत्र सभी सम,
कोई नहीं घृणा के योग्य,
भ्रातृभाव पूर्वक रह कर सब
पाओ सौख्य-शान्ति-आरोग्य।
"काल कृपाण समान कठिन है,
शासक हैं हत्यारे घोर,"
रोक न सका उन्हें कहने से
शाही कारागार कठोर।
अस्वीकृत कर दी नानक ने
यह कहकर बाबर की भेट—
"औरों की छीना झपटी कर
भरता है वह अपना पेट!"
जो सन्तोषी जीव नहीं हैं
क्यों न मचावेंगे वे लूट?
लुटें कुटेंगे क्यों न भला वे
फैल रही है जिनमें फूट?
मिले अनेक महापुरुषों से,
घूमे नानक देश विदेश;
सुने गये सर्वत्र चाव से
भाव भरे उनके उपदेश।
हुए प्रथम उनके अनुयायी
शूद्रादिक ही श्रद्धायुक्त,
ग्लानि छोड़ गुरु को गौरव ही
हुआ उन्हें करके भय-मुक्त।
छोटी श्रेणी ही में पहले
हो सकता है बड़ा प्रचार;
कर सकते हैं किसी तत्व को
प्रथम अतार्किक ही स्वीकार।
समझे जाते थे समाज में
निन्दित, घृणित और जो नीच,

Hindi Premi

वे भी उसी एक आत्मा को
देख उठे अब अपने बीच।
वाक्य-बीज बोये जो गुरु ने
क्रम से पाने लगे विकाश,
यथा समय फल आये उनमें,
श्रममय सृजन, सहज है नाश।
उन्हें सींचते रहे निरन्तर
आगे के गुरु-शिष्य सुधीर,
बद्धमूल कर गये धन्य वे
देकर भी निज शोणित-नीर।

Hindi Premi

गुरु अंगद

निज दायित्व पूर्ण पद गुरु ने
दिया देख अंगद को धीर,
जो था बिना विचारे उनका
आज्ञापालन-सा सशरीर।
शिष्य, सिक्ख या सिख कहलाये
गुरु के अनुयायी आकृष्ट,
निज सजीवता से अभिन्न भी
हुए अलग से हम में दृष्ट।
वे निज हिन्दू जाति-धर्म के
हुए सजग सैनिक ही सिद्ध,
जो हलधर थे आगे चलकर
करने लगे लक्षवर विद्ध।
लिखने-पढ़ने का नव विधि से
गुरु अंगद ने किया प्रचार,
निज लिपिबद्ध किया नानक के
शील और शिक्षा का सार।
लंगर—भोजन-भवन—आपका
नित्य खुला था सबके अर्थ,
जो प्रचार में, प्रेम-वृद्धि में,
संघ-सिद्धि में हुआ समर्थ!
एक पंक्ति में, एक संग सब
वहाँ बैठते राजा-रंक,
ऐक्य भाव से यों सिक्खों का,
एक राष्ट्र बन गया अशंक।

Hindi Premi

होती नहीं वहाँ तन की ही
मनस्तृप्ति भी होती संग,
गुरु के उपदेशों से जन जन
पाता निज में नयी उमंग।
जब हम भोजनार्थ जीते हैं
गुरु भोजन था जीवन-हेतु,
पीक न पैदा करते थे वे
निज मुख में निष्ठीवन-हेतु।
शिष्यों के संघटन हेतु ही
व्यय होती उनकी सब आय,
भोगे एक अनेकों का धन
यह तो है अति ही अन्याय!
सार्वजनिक हित-हेतु दान का
जाग उठा सिक्खों में भाव,
गद्गद था गुरु अंगद का उर
सफल देख अपना प्रस्ताव!
कहते थे वे निज पुत्रों से—
"सावधान, परधन है पाप,
भिक्षुक न हो, बनो व्यवसायी,
करो कमाई अपने आप।"
औरों की सहायता करके
पाते वे आनन्द अपार,
यही दुःख था उन्हें किसी का—
कर न सकें यदि वे उपकार।
शेरशाह से हार हुमायूँ
आया सुनकर उनका नाम,
दिया न अभ्युत्थान उन्होंने
ध्यान-निरत थे वे धृतिधाम।
क्रुद्ध हुआ वह, खंग खींचकर
कुछ कहने को था मुँह खोल,
तब तक पलक खुले गुरुवर के
और सुन पड़े ये दो बोल—
"शेरशाह के आगे तेरी
कहाँ गयी थी यह तलवार?

Hindi Premi

रख छोड़ी थी किसी साधु पर
धन्य देखने को क्या धार?"
लज्जित हुआ हुमायूँ, गुरु ने
हँसकर कहा—"सफल हो शूर!"
जो विचारदर्शी होते हैं
उन्हें दीख पड़ता है दूर।
आया कभी न गुरु के मन में
किसी मनुज के प्रति दुर्भाव,
वाणी में कुवचन न कर्म में
कोई भी अनुचित बर्ताव।
पुत्रों ने प्रभु भक्ति और धन
माँग लिये थे यथा विवेक,
गुरु नानक से गुरु-सेवा ही
माँगी थी अंगद ने एक।
प्रभु-जन-सेवक को ही नानक
बतलाते थे सच्चा भक्त;
सेवा ही वह भक्ति-मूर्ति है
हमें दिखाई दे जो व्यक्त।

Hindi Premi

गुरु अमरदास

योग्य शिष्य ही गुरु बनते हैं,
गुरु अंगद ने भी सब सोच,
आत्मज रहते अमरदास को
दी गुरु-गद्दी निस्संकोच।
देख उदासी मत के ऊपर
आकर्षित सिक्खों का ध्यान
दिया, पार्थ को हरि-सम, उनको
अमरदास ने गीता ज्ञान।
"जिस प्रभु ने परलोक बनाया
रचा उसी ने है नरलोक;
पालन करें धर्म हम अपना
फिर हमको क्या भय? क्या शोक?
घर में रहकर भी व्यसनों से
बचे रहो तब तो है बात,
देखो कहाँ लिप्त होता है
जल में रहकर भी जलजात।
क्लीव, कापुरुष ही असमय में,
छोड़ भागते हैं संसार;
शूर सजीवों को मिलता है
यहाँ आप ही जगदाधार।
कहो, तुम्हारे लिए दूसरे
करें कहाँ तक अन्नोत्पन्न?
होकर बल-सम्पन्न व्यर्थ क्यों
होते हो तुम यों अवसन्न?

Hindi Premi

'शान्ति शान्ति' कहते हो पर क्या
मिल सकती है ऐसे शान्ति?
तन्द्रा को समाधि समझे हो
जागो भाई, त्यागो भ्रान्ति।''
होकर भी प्रायः शतायुगुरु
करते थे श्रम से सबका,
बोला एक पीर—''क्यों अब भी
आप नहीं करते आराम?''
गुरु ने हँसकर कहा—''एक जन
छाना करता था बस धूल,
उसमें जब कुछ मिल जाता तब
खिल जाता वह, जैसे फूल।
किसी उदार धनी को आयी
दया, देख उसका यह हाल,
दिया एक हीरा धीरे से
उसने वहीं धूल में डाल।
उसको पाकर धनी हुआ वह,
प्राप्त हुए सब धरणी-धाम;
किन्तु न छोड़ा फिर भी उसने
धूल छानने का वह काम।
वह दानी बोला तब उससे—
'अब यह हाय हाय क्यों बोल?'
उसने उत्तर दिया कि 'इसमें
मिलते हैं हीरे अनमोल!'
भाई, तुम्हीं बता दो फिर मैं
छोड़ूँ कैसे ऐसे यत्न,
जिनमें मुझे प्राप्त होते हैं
जीवन के धन, मन के रत्न?''
एक बार अकबर ने गुरु को
देने चाहे बारह गाँव,
और जमाना चाहा उसने
उनके अधिकारों में पाँव।
धन्यवाद देकर गुरु बोले—
''हम स्वतन्त्र ही अच्छे वीर,

Hindi Premi

दे रक्खी है हमें राम ने
यों ही मनमानी जागीर।''
मंच-स्थापित किये उन्होंने,
बना दिये प्रतिनिधि सर्वत्र;
सिक्ख संघटित हुए और भी
पाकर उनका छाया-छत्र।
एक बार सेनायुत अकबर
रहा बहुत दिन तक लाहौर,
त्राहि-त्राहि कर उठी प्रजा सब
महँगी फैल गयी सब ठौर!
आते हैं सम्राट द्वार पर;
वह विभूति रखते हैं सन्त!
योग्य कार्य कुछ लगा पूछने
मिलकर गुरु से वह गुणवन्त।
गुरु ने प्रजा-कष्ट वर्णन कर
क्षमा कराया कर उस वर्ष;
औरों के सुख में ही मानो
रहता है सुजनों का हर्ष।
बढ़ी निरन्तर लोकप्रियता
सिख गुरुओं की इसी प्रकार,
जन साधारण भी सुधर्म का
सार समझते हैं उपकार।
गुरु-पत्नी चिन्तित रहती थी—
बेटी का हो कहाँ विवाह?
गुरु ने पूछा—''कैसे वर की
उसके लिए तुम्हें है चाह?''
''रामदास जैसे सुपात्र की''
वह था उनका प्यारा शिष्य,
''तो फिर चिन्ता ही क्या, उसका
है अपने ही हाथ भविष्य!''
जो गद्दी के योग्य युवक था,
होता क्यों न सुता के योग्य?
क्या जाने हो जाय प्रकट कब
किसके भूरि भाग्य का भोग्य!

Hindi Premi

भानुकुमारी भाग्यवती थी,
इसमें हो किसको सन्देह?
घर आकर ही जिसे योग्यवर
मिला मनोहर सब गुण-गेह।
वह जैसी सुलक्षिणी सुन्दर
थी वैसी ही चतुर विशेष,
स्वयं सिद्धि-सी प्रकट हुई थी
धारण किये सुता का वेष।
एक बार चौकी पर बैठे
अमरदास करते थे स्नान,
देख एक पाया भानी को
हुआ टूट पड़ने का भान।
सत्वर स्वकर लगा कर उसने
झेल लिया उस पर सब भार,
किन्तु कील घुस गयी हाथ में
बहने लगी रुधिर की धार!
वृद्ध शरीर न सँभले गुरु का
गिरे और आ जावे चोट,
यही सोचकर झट पट उसने
दी थी कोमल कर की ओट।
रक्त देखकर चौंके गुरुवर,
ज्ञात हुआ उनको सब भेद;
पुलकित-कम्पित हुए सहज ही
एक संग सानन्द-सखेद।
"बेटी, तू कुछ माँग" किन्तु वह
बोली—"क्या है मुझे अभाव!"
तदपि पिता के हठ करने पर
उसने किया एक प्रस्ताव—
"अपनी गद्दी का जो हमको
दिया आपने है अधिकार
रहे हमारे ही कुल में वह,
माँगूँ मैं क्या और उदार?"
क्षण भर चुप रह कर गुरु बोले—
"जैसी हरि की इच्छा, अस्तु;

Hindi Premi

ह्रास-वृद्धि दोनों पाती है
परिवर्तन से कोई वस्तु।
कुलगत होने पर भी गुरुपद,
ज्येष्ठ मात्र होने से ज्येष्ठ,
पा न सकेगा, गुरु-गौरव के
गुण न हुए यदि उसमें श्रेष्ठ।''
नूतन गाँव बसाया गुरु ने
विश्रुत व्यास नदी के तीर;
उपनिवेश-सा नया बनाकर
बसे जहाँ आकर सिख वीर।
बापी बनवाई, जिसमें थी
चौरासी सीढ़ियाँ सुढार,
एक एक जो लाख लाख की
याद दिलावें वारंवार।

Hindi Premi

गुरु रामदास

रामदास गुरु ने भी जारी
रक्खा सार्वजनिक निर्माण,
अमर तीर्थ विख्यात अमृतसर
देता है अब भी नव प्राण।
गौरव-हेतु नहीं गुरु की ही
आज्ञा से गुरुपद का भार
धारण किया उन्होंने, वे थे
यों ही सुगुण-गौरवागार।
भुला सकी उनको न कभी वह
विभवमयी इस भव की भुक्ति;
मिली स्वतन्त्र प्रकृति-मिष मानों
उन्हें किसी जीवन में मुक्ति।
आय और सद्व्यय दोनों की
हुई और भी उनसे वृद्धि,
सदुपयोग की ही अभिलाषा
रखती है बस रक्षित ऋद्धि।
किसी धनी सज्जन ने उनको
मणिमय हार दिया उपहार,
एक साधु याचक को गुरु ने
दिया उसी क्षण वही उतार।
खिन्न हुआ वह धनी देख यह
गुरु ने उसको दिया प्रबोध—
"मेरा तोष इष्ट था तुमको
तो तुम क्यों करते हो क्रोध?

Hindi Premi

धन्य तुम्हारी एक भेंट यह,
हम दो दो जन हुए निहाल;
भाई, इसे न भूलो—लक्ष्मी
चलती फिरती है चिरकाल।
धन का लाभ यही है—उससे
पावें जितने जन परितोष,
और नहीं तो देखा करिए
साँप बने बैठे निज कोष!"
देनी चाही भूमि इन्हें भी
अकबर ने आग्रह के साथ;
पर गुरु ने रक्खा अपने को
एक मात्र हरि के ही हाथ।
रामदास जैसे गुरु के भी
पृथ्वीचन्द्र-सदृश सुत हाय!
वे कुलदीपक थे, पर यह था
कुल-कलंक—कज्जल-समुदाय।
कुलगत होने पर भी क्यों कर
देते वे उसको अधिकार,
शिष्यों के दोनों लोकों का
था जिनके ऊपर सब भार?
मध्यम महादेव सुत उनका
रखता था कुल-शील-सुवास,
पर पितृवन-वासी धूर्जटि-सा
था विजनप्रिय परम उदास।
लौकिक और पारलौकिक गुरु
हो जो, अर्जुन ही था एक,
छोटे को ही बड़ा बनाकर
किया चतुर गुरु ने अभिषेक।

Hindi Premi

गुरु अर्जुन

रहे न सद्गुरु ही गुरु अर्जुन,
हुए छत्रधारी नृप आप;
न्याय और शासन दोनों में
था उनका यश और प्रताप।
श्रेय, प्रेय दोनों देने की
देख एक सी उनमें शक्ति,
क्या अचरज उनमें सिक्खों की
प्रकट हुई यदि दुगुनी भक्ति?
क्षुद्र गाँव था प्रथम अमृतसर,
हुआ वही अब नगराकार;
बना राजधानी वह गुरु की
और सिखों का तीर्थ उदार।
बनवाया हरि-मन्दिर गुरु ने
अपने लिए उटज भी एक;
मन्दिर से लेकर कुटीर तक
बतलाया विभु-वास-विवेक।
बना तरनतारन तड़ाग वह
भाव-पूर्ण है जिसका नाम—
तरना ही तारक है अपना—
निज करगत है निज परिणाम।
किया ग्रन्थसाहब में गुरु ने
संग्रह और संकलन सार;
जिसमें काव्य-रंग में दर्शन,
आचारों के संग विचार।

Hindi Premi

हुआ वस्तुतः सिख-समाज का
वही अलौकिक आदिग्रन्थ,
विविध सन्त-मानस-धाराएँ
पा बैठीं प्रयाग का पन्थ।
किया गया नियमित-निर्द्धारित
आय और व्यय का परिणाम;
चलता है आकाश-वृत्ति से
भला किसी उपवन का काम?
शाही कर से गुरु-कर सुखकर,
मानेगा यह कौन न मत्त?
वह भयमय, यह भक्तिभावमय,
वह गृहीत, यह स्वयं प्रदत्त।
प्रचलित किया सिखों में गुरु ने
घोड़ों का विस्तृत व्यवसाय;
अश्वारोही हुए सहज वे
और हुई ऊपर से आय।
यों विदेश-यात्रा का उनमें
आया साहस युत उत्साह;
नयी-नयी बातों का अनुभव
हुआ उन्हें, जिसकी थी चाह।
किन्तु डाह रखता था गुरु से
पामर पृथ्वीचन्द्र विशेष;
बाहर के वैरी से बढ़कर
होता है घर का विद्वेष।
गुरु-शिशु को विष दे जो, उसने
एक पूतना की तैयार;
किन्तु लिप्त विष के प्रभाव ने
डाला स्वयं उसी को मार।
एक बार गुरु के भोजन में
उसने विष का किया प्रयोग,
प्रकट हो गया किन्तु भेद झट,
लगने से पहले ही भोग।
कौन मार सकता है उसको
रक्खे जिसको जगदाधार?

Hindi Premi

त्याग दिया उस कुलकलंक को
दे दे कर सबने धिक्कार।
तब उसने अभियोग चलाया
किन्तु नहीं निकला कुछ सार,
जिसे योग्य समझें गद्दी दें,
गुरुओं को था यह अधिकार।
होकर भी लाखों सिक्खों के
वे सम्राट विराट-विधान
अपने को सबका सेवक ही
कहते थे नय-विनय-निधान।
था सुडौल उदयाद्रि शिखर-सा
जैसा सुन्दर उनका डील,
वैसा ही उज्ज्वल प्रकाश-सम
था उन्नतिमय शोभन शील।
पूछ उठे श्रीचन्द्र एक दिन—
"यह लम्बी दाढ़ी किस हेतु?"
बोले गुरु कि "आप सन्तों की
पद-रज पोंछ सके, इस हेतु!"
सिक्खों का विस्तार बराबर
बढ़ता जाता था सब ओर,
एक राष्ट्र का रंग ढंग से
चढ़ता जाता था सब ओर।
किन्तु विरोध बिना वीरों में
कहाँ जागता है वह क्रोध,
जिससे स्वबल बोध हो उनको
और ले सकें वे प्रतिशोध।
लवपुर का प्रधान था गुरु का
सजातीय जन चन्दूसाह,
करना चाहा निज कन्या का
उसने गुरु-सुत-संग विवाह।
किन्तु घमण्डी पाकर उसको
गुरु ने किया न सम सम्बन्ध,
जो पहले पद के मद से था
अब वह हुआ क्रोध से अन्ध।

Hindi Premi

गुरु-विरुद्ध भर दिये शीघ्र ही
उसने जहाँगीर के कान;
बहुधा औरों की आँखों से
देखा करते हैं श्रीमान्।
गुरु-वाणी सह संग्रहीत थे
जिसमें कुछ सन्तों के गीत,
गया 'ग्रन्थसाहब' बतलाया
इस्लामी मत के विपरीत।
''पन्थ पन्थ ही है'' गुरु बोले–
''एक ठौर सबका गन्तव्य,
गति है अपनी मति के ऊपर,
यही एक सौ का मन्तव्य।''
बादशाह ने कहा–''ठीक है,
मेरा मजहब है इस्लाम,
लिखें हमारे हजरत का भी
गुरू 'ग्रन्थसाहब' में नाम!''
''लिख सकता हूँ यदि मेरा प्रभु
मुझे प्रेरणा करे पुनीत,
लिख न सकूँगा किन्तु किसी के
तोष हेतु या भय से भीत।''
राजद्रोही कहे गये गुरु
भर कर झूठी-सच्ची साख,
सुनी गयी उनकी न एक भी
दण्ड हुआ उन पर दो लाख।
समझा गुरु ने अविचारी को
दो कौड़ी देना भी पाप,
सहा उसे धीरज से जो कुछ
दिया गया उनको सन्ताप।
चाहा चन्दूशाह कुटिल ने–
कर लें अब भी वे सम्बन्ध;
पिसकर किन्तु पटीर और भी
प्रकटित करता है निज गन्ध।
सह न सके सिख शूर वीर यह
यवनों की सत्ता का दम्भ,

Hindi Premi

गुरु अर्जुन की बलि से उनका
हुआ अपूर्व यज्ञ आरम्भ।
देते जाते हैं प्राणाहुति
अब भी बढ़कर वे बड़भाग,
सींच रहे हैं निज शोणित से
वीर बराबर गुरु का बाग!
सचमुच स्वर्ण धातु से गुरु ने
गढ़े आप ये अपने पात्र,
तप तप कर होते जाते हैं
जो अधिकाधिक उज्ज्वल गात्र।
धार्मिक सामाजिक बातों में
प्राप्त कर चुकी थी विख्याति,
राजनीति के रणक्षेत्र में
उतरी अब सिक्खों की जाति।
अस्थिसार देकर शूरों ने
उसको उर्वर किया अनन्य,
सुफल सिक्ख साम्राज्य सरीखा
पाया रणजीतों ने धन्य।
गुरु अर्जुन ने निज बलि देकर
मानों किया शिला-विन्यास,
चुना सिखों ने उस पर अपना
अम्बर चुम्बी कीर्त्तिनिवास!

Hindi Premi

गुरु हरगोविन्द

योग्य पिता के योग्य पुत्र थे,
हरगोविन्द छठें गुरुवर्य,
परशुराम सम युगधर्मों का,
जिनमें साहचर्य-सौकर्य।
एक पिता का बदला लेगी,–
एक हरेगी यवनातंक
बाँधा करते थे यह कह कर
वे दो दो असियाँ निःशंक।
न था व्यक्तिगत, था समष्टिगत,
यवनों से गुरुवंश-विरोध;
थे कितने ही मुसलमान जन
जो उनसे पाते थे बोध।
शान्त वीर विक्रान्त सिखों में
आने लगी क्रान्ति भरपूर;
पर विद्रोह-केतु लेने का
अवसर था अब भी कुछ दूर।
पाने लगे शस्त्र-शिक्षा-वे
करके जब तब सैर-शिकार;
दृढ़ता तो गुण ही है सबका,
रहे क्रूरता क्यों न विकार।
तनु तरु है, आरोग्य मूल है,
फल? धर्मार्थ-काम-कैवल्य;
मल्लकलाप्रिय गुरु रखते थे
बहु विनोद वीरोचित बल्य।

Hindi Premi

क्या जीतेंगे अन्तरंग अरि
जो न जीत पाये बहिरंग?
रहें सबल तन-मन दोनों सम,
यही सफल जीवन का ढंग।
लोहागढ़ बनवाया गुरु ने
किये शस्त्र उसमें एकत्र,
हुए कण्टकित वही गुल्म अब
रखते थे जो केवल पत्र।
बड़े-बड़े मुनि तक चूके हैं
कब चूके हैं पिशुन परन्तु!
अंगी ही होते हैं बहुधा
लीख-जुएँ-से ये जड़ जन्तु।
"गुरु सेना संग्रह करते हैं,
बनते हैं स्वतन्त्र सम्राट,
ऐसा करते हैं जिससे हो
शाही शासन बारहबाट।
सिक्खों को शिक्षा देते हैं—
'बाँधो अस्त्र-शस्त्र सब लोग,
करो विदेशी-विधर्मियों के
प्रति यथेष्ट उनका उपयोग।'
डाकू, चोर, लुटेरों को भी
देते हैं वे आश्रय ओह!
छोड़ स्वजाति प्रजा लुण्ठन वे
करें विजाति-राज-विद्रोह!
गुरु हैं, इससे सेंतमेंत के
सैनिक हैं उनके सब सिक्ख;
जो थे बैल हाँकनेवाले
अश्वारोही हैं अब सिक्ख।"
"राज-वैर की आग भरे है
ऐं, यह साधुपने की राख?
अच्छा लिये जायँ पहले तो
पूर्व दण्डवाले दो लाख।"
"पूज्य पिता के प्राणों से भी
हुई नहीं क्या उनकी पूर्ति?

Hindi Premi

हाय! अगण्य हुए हम ऐसे!"
अति गम्भीर हुई गुरुमूर्ति।
फिर भी रोष रोक कर वे यों
बोले वचन सहज ही श्रव्य—
"नहीं दे सके जिसे पिता जी,
मैं कैसे दूँगा वह द्रव्य?"
कहा सिखों ने—"आज्ञा हो तो
चार लाख कर दें एकत्र!"
गुरु ने कहा—"किसे देने को?
जो हैं धर्म-शत्रु सर्वत्र!
यह धन कभी नहीं दूँगा मैं,
स्वयं काल आवे तो आय;
एक बाल भी पा न सकेंगे
यवन भाल जावे तो जाय!"
दण्ड सुनाया गया उन्हें तब
देश-निकाला, कारागार,—
विना विरोध उन्होंने जिसको
किया पिता के सम स्वीकार।
किन्तु आग लग गयी सिखों को
सह न सके अब वे अपमान;
"होगा यह न हमारे रहते"
गरज उठे सब सिंह-समान।
"आज्ञा दो गुरु देव दया कर,
हो जावे बस साका एक
जुड़ें सभी हम जिसके नीचे
उड़े पुनीत पताका एक।
आप मुक्ति देने आये हैं
नहीं बद्ध होने इस भाँति;
मारेंगे, मर जावेंगे हम,
लड़ें शत्रु चाहें जिस भाँति।
हम थोड़े वे बहुत रहें सो,
किन्तु नहीं हैं हम कुछ छार,
उड़. . जावेंगे पावककण-से
घासफूस-सा उन्हें पजार।"

Hindi Premi

गुरु ने शान्त किया शिष्यों को
कहा—"अधीर न हों यों वीर!
बन्धन भी अपना साधन हो—
यथा जीव के लिए शरीर!
स्वीकृत है मुझको यह बन्धन,
छूटे उस अनीति की भीति;
काँटे से काँटा कढ़ता है,
यह है सहज सनातन रीति।
कारागार नहीं जाता हूँ
करके मैं कोई अन्याय;
उलटा उसके ही विरोध का
करता हूँ यह एक उपाय।
यह निःशस्त्र युद्ध है अपना
क्रोध-जयी निष्क्रिय-प्रतिरोध;
शारीरिक संघर्ष सहज है,
कर लूँ प्रथम मनोबल-बोध।
समझो तुम—हरि के मन्दिर में
जाता हूँ मैं स्वयं सतृष्ण;
कंसों के कारागृह में ही
प्रकटित होते हैं श्रीकृष्ण!
सारी जाति मुक्त हो जिसमें
इसी हेतु होता हूँ बद्ध;
करो प्रतीक्षा कुछ दिन तक तुम
होकर साधनार्थ सन्नद्ध।"
कुछ शिष्यों के संग, रंग रख
गढ़ गवालियर में हो बन्द,
भर दी सब सिक्खों में गुरु ने
सहज मुक्तिचिन्ता स्वच्छन्द।
किया क्षोभ ने निर्भय उनको,
दिया भक्ति ने भावावेश;
फिर भी रक्त-पात करने का
मिला न था गुरु का आदेश।
गढ़ के आगे जुड़ जुड़कर वे
करते बहुधा उन्हें प्रणाम;

Hindi Premi

'जय गुरुदेव!' गिरा से जब तब
गूँजा करता वह गुरुधाम!
मियाँ मीर था एक पीर जो
गुरु-गौरव पर था अनुरक्त,
समझाया उसने विचार कर
जहाँगीर को अपना भक्त।
"शत्रु बनाने योग्य नहीं गुरु
वे हैं मित्र बनाने योग्य;
छोटे हों या बड़े किन्तु हैं
मानी सदा मनाने योग्य।
ज्वालामुखी समान समझिए,
किसी प्रजा के जी की चोट,
भीतर ही भीतर पककर वह
दिखलाती है द्रोह-स्फोट।
जन-स्नेह तक ही जगते हैं
जग में राजकुलों के दीप,
तात आपके पक्षपात को
आने देते थे न समीप।
विजातीय शासन रखता है
जब तक सब धर्मों का ध्यान,
खलता नहीं तभी तक उतना,—
ऊषर पर जल-उपल-समान।
ऐसा दोष न था अर्जुन का
मिला उन्हें है जैसा दण्ड;
भुला रहा है आह! आपको
अब भी चण्डूशाह प्रचण्ड।
साध रहा है वैर-व्यक्तिगत
करके ऐसे अनुचित यत्न;
बना रहा था जामाता वह,
जना रहा है जिसे सपत्न।
लोग भूल जाते हैं उपकृत
होकर पहले के अपकार;
यों गुरु-मुक्ति-निदेश दीजिए
ज्यों तप के ऊपर आसार!

Hindi Premi

कभी विरोध करेंगे यदि वे
तो असमर्थ नहीं कुछ आप;
और आपको दे न सकेगा
तब कोई अब-सा अभिशाप।''
यों निष्कृति-निदेश पाकर भी
रहे स्वयं गुरु गढ़ में बन्द;
और बहुत बन्दी थे उसमें
कैसे होंगे वे स्वच्छन्द?
जा न सके थे यथा नरक से
धर्मराज अपनों को छोड़,
सदय हृदय गुरु जा न सके त्यों
उन बेचारों से मुँह मोड़।
बादशाह हो गया और भी
आकर्षित अब उनकी ओर,
बोला—''छोड़ दिये जावें सब
छोड़ें जो न गुरू का छोर।''
गूँजी उज्ज्वल नील गगन में,
सघन गिरा ''जय जय गुरुदेव!
बन्ध काटने को औरों के
बँधे आप निर्भय गुरुदेव!''
जिन्हें छुड़ाया था गुरुवर ने
शिष्य हुए वे सब श्रीमन्त,
होता है अनुगतता में ही
आकर कृतज्ञता का अन्त।
गुरु ने आनबान यों अपनी
रक्खी स्वाभिमान के साथ,
वैर लिया चन्दू से उसकी
कुगति कराकर हाथों हाथ।
एक विशेष जाति के घोड़े
दूर देश से कोई भक्त
लाया गुरु-रवि हेतु सिन्धु-सा
मथ कर उच्चैश्रवा सशक्त!
बादशाह के योग्य समझ कर
वे तुरंग तीनों के तीन

Hindi Premi

लिये बीच में ही उस जन से
लाहौरी नाजिम ने छीन।
बादशाह ने हर्षित होकर
किया एक काजी को भेंट,
किन्तु यज्ञ-हय मानो गुरु के
हरे गये ये मैत्री भेंट।
लिया उन्होंने सहज युक्ति से
काजी से स्ववाजिवर छीन,
किन्तु हुई उसकी प्रिय बाला
आकर अपने आप अधीन।
अंगीकार किया गुरुवर ने
गुणग्राहिणी उसको जान,
ये दो रहें न्यून भी तो क्या—
रमणी का कुल, मणि की खान।
जब लक्ष्मी-सी पाई गुरु ने,
रक्खा उसका कमला नाम;
बनवा दिया कमलसर नामक
चिरकालीन चिह्न अभिराम।
हुआ प्रथम संघर्ष इसी मिस
सिक्खों का यवनों के संग,
उन आधों से भी कम में थी
दूनी से भी अधिक उमंग।
प्रथम परीक्षा में ही गुरु के
शिष्य हुए पूरे उत्तीर्ण,
झंझा के झोंकों से घन-सम
हुआ यवन-दल विकल विदीर्ण।
सत्रहवीं शताब्दि के अब भी
शेष रहे थे पन्द्रह वर्ष,
सत्तर सौ यवनों पर विजयी
हुए तीस सौ सिक्ख सहर्ष।
बल की जाँच हो चुकी थी यह,
अब भी थी कौशल की शेष;
दिया द्वितीय युद्ध में गुरु ने
इसके लिए उन्हें आदेश।

Hindi Premi

पन्द्रह दिन पीछे फिर वैरी
चढ़ आये होकर आरूढ़,
हट हट कर इस वार सिखों ने
किया उन्हें कर्त्तव्यविमूढ़।
दाँत पीस वे रहे रुआँधे,
हँसकर सिक्ख हुए आश्वस्त,
मरा तृतीय युद्ध में नाजिम
और हुई बहु सेना ध्वस्त!
अश्व उड़ा लाया वे दो भी
जन विधिचन्द्र पूर्व का चोर;
एक चुरा कर और दूसरा
चोर पकड़ने के मिस छोर!
आते-आते कह आया वह
करके यवनों का उपहास—
"गुरु के सच्चे बादशाह के—
घोड़े गये उन्हीं के पास।"
चढ़े चमू ले बड़े बड़े खाँ,—
अब्दुल्ला, सलीम, बहलेल;
पर घमण्ड उतरा उन सबका
खेला सिक्खों ने रण-खेल।
करने लगे प्रचार कार्य अब
गुरुवर रहकर कुछ दिन शान्त;
विधर्मियों पर विजयी होकर
वे लोकप्रिय हुए नितान्त।
अपनी लोकप्रियता का यों
कितने जन दे सके प्रमाण,
जिनके साथ चिता में जलकर
लोग दे सके हों निज प्राण?
यवन पयन्दा प्रिय सैनिक था,
गुरु ने दिया उसे सम्मान;
पर वह करने लगा उपेक्षा
अपने को ही सब कुछ जान।
वे कृतघ्न जो किया न मानें;
पर जो उलटा करें विघात?

Hindi Premi

मिला वैरियों से जाकर वह,
कुल में पहुँच गया कुलजात।
वैरी स्वयं बन्धु भी गुरु का
था पृथ्वी का पुत्र विरुद्ध
और उधर चन्दू का बेटा
पहले ही था उन पर क्रुद्ध।
प्रेरक काल बना दिल्लीश्वर–
कुपित हुए ये तीनों दोष;
'मैं भी कुछ औषध रखता हूँ'–
गुरु ने भी यों कहा सरोष।
गरजी फिर सगर्व रणचण्डी
मचा घोर घन-सा घमसान,
अरुण तीर्थ-शोणित-धारा में
किया धरा ने पान-स्नान!
भट बढ़ते थे, कट गिरते थे,
चढ़ते थे झटपट फिर और;
मानो प्रथम पर्व पाने का
आग्रह था उनको उस ठौर।
लड़ते रहे भटों से भट, पर
रहा पयन्दा पर गुरु-लक्ष;
पाकर उसको बोले वे यों–
"दिखला अब वह दर्प समक्ष!"
उसने वार किया पर निष्फल,
गुरु ने कहा गढ़ा कर शल्य,
"देख पाल ही नहीं, मार भी
सकता हूँ मैं तुझे मुसल्य!"
मारा चन्दू के सुत को भी
दला उन्होंने उसका दाप–
"क्या कर सकता था तू मेरा,
कर न सका कुछ तेरा बाप!"
किया एक वैरी ने उन पर
बड़े वेग से विकट प्रहार,
गुरु बच बोले–"अन्धा होकर
किया नहीं जाता है वार।"

Hindi Premi

"देख दिखाऊँ—अब मैं कैसे
तोली जाती है तलवार;"
मर कर वहीं सो गया वैरी—
खर तर खड्ग हो गया पार!
फिर इस वार हुई विजयश्री
गुरु की ही, जो थे वर-पात्र।
वारी तो वह गयी कभी थी,
यह तो थी फिर स्वीकृति मात्र!
अब समर्थ हो उठे सिक्ख यों
साधन करने को निज कार्य्य,
और समय भी आलमगीरी
आता जाता था अनिवार्य्य।
न थे वैतनिक ही गुरु-सैनिक,
शिष्य स्वयं सेवक थे सर्व;
जगा दिया था उनमें गुरु ने
जाति-धर्म-गौरव का गर्व।

Hindi Premi

गुरु हरराय

यह पहला प्रयास था, इससे
आवश्यक थी कुछ विश्रान्ति,
गुरु हरराय-समय में मानो
रही इसी कारण से शान्ति।
ये गुरु हरगोविन्द-पौत्र थे
पितृ-विहीन, ममता के योग्य;
किन्तु साथ ही अपने कुल की
गद्दी की क्षमता के योग्य।
तेगबहादुर आदिक इनके
चरितवान चाचा थे चार,
किन्तु बनाये गये यही गुरु
करके दोनों ओर विचार।
दृढ़ होकर भी सदय-हृदय थे
शील-संयमी गुरु हरराय,
टूट न जाय फूल भी कोई—
अपने आप भले झड़ जाय।
प्रभु-गुण गाते गाते बहुधा,
हो जाते वे भाव-विभोर;
उनकी वाणी में वह बल था
खींच सके जो अपनी ओर।
पटियाला-नाभादि नृपों का
आदिपुरुष अनुगत वह 'फूल',
सुफल पा सका था सो इसका
था गुरु का प्रसाद ही मूल।

Hindi Premi

आकर हिन्दुस्तान, मिला था
गुरु से टर्की का सुलतान,
और धर्म-विषयक बातें कर
तुष्ट हुआ था वह मुद मान।
''ईसा, मूसा और मुहम्मद
किसको बढ़ कर माना जाय?
मुक्ति लाभ करने में समधिक
हो सकता है कौन सहाय?''
जब उसने आकर यह पूछा
गुरु ने उत्तर दिया तुरन्त,—
''हम लागों की प्रकृति विषम है,
सम हैं अमृत-पुत्र सब सन्त।
उसके लिए वही बढ़कर है
जिससे जिसकी रुचि मिल जाय,
किन्तु मुक्ति पाने में होंगे
केवल अपने कर्म सहाय।
परमात्मा के नियम अटल हैं,
तोड़ सके या तोड़े कौन?
सूर्य, चन्द्र, तारों की गति को
मोड़ सके या मोड़े कौन?
सन्त चाहते हैं सबका शुभ
फिर भी है वह हरि के हाथ,
जो जैसा करता है उसको
देता है वैसा वह नाथ।''
जिनके आचारों से मिटता
मोहित जन के मन का रोग;
क्यों न मेंटते उपचारों से
वे दारा के तनु का रोग?
पर औरंगजेब दारा पर
सहता कैसे गुरु का प्रेम?
शाही सेना रोक जिन्होंने
जाने दिया उसे सक्षेम।
पिता और भ्राताओं से निज
जब निश्चिन्त हुआ वह दुष्ट।

Hindi Premi

तब गुरु को बुलवाया उसने
होकर मन ही मन अति रुष्ट।
आत्मज रामराय को गुरु ने
भेजा अपना प्रतिनिधि-रूप,
पर निकला बस ढूह मात्र वह
जँचता था जो उच्चस्तूप!
"मुसलमान की मिट्टी लेकर,
घट कुम्हार ने किये तयार,
हाहाकार पुकार उठे वे
आप अबे में पकती बार।"
बादशाह बोला कि लिखी है
तुम लोगों ने ऐसी बात!
भृकुटी कुटिल हो गयी उसकी
समझा रामराय ने घात।
कहा कि—'बेईमान' पाठ है,
'मुससमान' है लिपि का दोष।
बादशाह हँस गया और यों
शान्त हो गया उसका रोष।
गुरु जल गये, ग्रन्थसाहब का
सुन यों पाठ बदलना शुद्ध;
त्याज्यपुत्र उस चाटुकार को
कहा उन्होंने होकर क्रुद्ध,—
"निश्चित भावी मृत्यु-भीति से
रह न सके जो निजतानिष्ठ,
हो सकता है भला कभी वह
गुरु-पदवी पर कहीं प्रतिष्ठ?"

Hindi Premi

गुरु हरिकृष्ण

सुत कनिष्ठ हरिकृष्ण नाम का
सात वर्ष से भी था अल्प,
दिया उसी को स्वपद उन्होंने
किया न कुछ संकल्प-विकल्प।
रामराय, जो मरने पर भी
होता सिक्खों का सम्राट,
शाही टुकड़ों पर जीता था
श्वान-समान दूर दिन काट।
नीच धीरमल भी मल के सम
हुआ धीर गुरुकुल से त्याज्य,
मिला शत्रु से रामराय-सा
वह भी पाने को गुरु-राज्य।
लघु भी श्री हरिकृष्ण सुगुरु थे,
निकली ठीक जनक की जाँच;
छोटा रहे रत्न पर तो भी
नहीं निकलता है वह काँच।
रामराय ने बादशाह के
कान भरे सविनय सव्याज,—
''हुआ हुजूरी होने से ही—
मैं गद्दी से वंचित आज।
बच्चा है हरिकृष्ण, सिखों को
रोक सके, उसकी क्या ताव!
बन न जायँ विद्रोही वे सब,
बह न जाय सारा पंजाब!''

Hindi Premi

ढुल जाते हैं लोग लाभ के
ऊपर जिधर ढुलाये जायँ;
हुक्म दे दिया बादशाह ने—
गुरु हरिकृष्ण बुलाये जायँ।
दिल्ली में आँवेर-नाथ के
अतिथि हुए बालक हरिकृष्ण;
निज हिन्दू कुल-मर्यादा के
थे पूरे पालक हरिकृष्ण।
अन्तःपुर में उन्हें ले गये
बड़े प्यार से जयपुर-राज;
जुड़ आया झट कुलस्त्रियों का
वहाँ एक आनन्द-समाज।
'आसन गुरु के लिए' भूप ने—
कहा, दासियाँ दौड़ी हाल;
तब तक लघु गुरु सरल-भाव से
बोले यों निज वचन रसाल—
"बच्चों का सच्चा आसन है
अपनी माताओं की गोद,"
कहते कहते बड़े अहो वे
महिषी की ही ओर समोद।
वाणी सुन सब मुहितस्मित थे,
विस्मित हुए देख 'पहँचान';
उठा लिया गद्गद महिषी ने
उन्हें गोद में गौरव मान।
बादशाह भी हुआ चमत्कृत
उनका अनुपम ओज निहार;
करे गभीर नीर में भी ज्यों
निर्भय बाल-मराल विहार!
दोनों हाथों से वह उनके
धर दोनों कोमल कर, घेर,
"बच्चे, अगर एक थप्पड़ मैं
जड़ दूँ तो?" बोला हँस हेर।
"तब तो पकड़ा हुआ आप से
छूट जायगा मेरा हाथ!"

Hindi Premi

उत्तर दिया वहीं 'बच्चे' ने
हँस ग्रीवा-भंगी के साथ!
हर्षित हुए सभी यह सुनकर,
कहकर विस्मयपूर्वक—"वाह,"
"छोटा बच्चा बड़ा गुरू है!"
बोला रामराय से शाह।

× × ×

रामराय की, बादशाह की,
शंका कर मानो निरुपाय,
निकली और ले गयीं माता
ऐसे होनहार को हाय!
जाते जाते भी बालक बुध
दिखा गया निज बुद्धि-विलास,
भेज गया गुरु चिह्न स्वयं ही
तेगबहादुर गुरु के पास।

Hindi Premi

गुरु तेगबहादुर

तेगबहादुर, हाँ, वे ही थे
गुरु-पदवी के पात्र समर्थ;
तेगबहादुर, हाँ, वे ही थे
गुरु-पदवी थी जिनके अर्थ।
तेगबहादुर, हाँ, वे ही थे
पंचामृत-सर के अरविन्द;
तेगबहादुर, हाँ, वे ही थे
जिनसे जन्मे गुरु गोविन्द।
तेगबहादुर, हाँ, वे ही थे
भारत की माई के लाल;
तेगबहादुर, हाँ, वे ही थे
जिनका कुछ कर सका न काल।
तेगबहादुर, हाँ, वे ही थे
मर कर जिला गये जो जाति;
तेगबहादुर, हाँ, वे ही थे
जिनके अमर नाम की ख्याति।
तेगबहादुर, हाँ, वे ही थे
हुए धर्म पर जो बलिदान,
तेगबहादुर, हाँ, वे ही थे
जिन पर है हमको अभिमान।
तेगबहादुर, तेगबहादुर,
है विभिन्न भाषा का नाम,
किन्तु अहा! उसके भीतर है
बस अपना ही आत्माराम।

Hindi Premi

रहते थे वे अलग शान्ति से,
न था उन्हें गद्दी का लोभ;
देता है सन्तोष जिन्हें प्रभु
उन्हें नहीं छू सकता क्षोभ।
हरिचिन्तन, हरिजन की संगति,
थे उन अतिथिदेव के काम;
तेगबहादुर ने पाया था
तेगबहादुर भी निज नाम।
किन्तु न थे मालाधारी ही
वे आचार-विचारी शुद्ध;
नाम सत्यता दिखा चुके थे
तात-समय ही कर बहु-युद्ध।
गुरु हरिकृष्ण पौत्र थे, तब भी
गुरु के पद पर थे आसीन;
उनकी इच्छा पूर्ण न करते
फिर कैसे वे इच्छा-हीन?
वरा स्वयं गुरुता ने उनको,
हुए तदपि बाधक कुछ लोग;
पर नक्षत्रधारियों का है
जाता कहाँ छत्र का योग?
देश-दशा देखी गुरुवर ने
विचरे ज्यों वन-मध्य मिलिन्द,
पुण्य पर्यटन-फल पटने में
पाया प्रकट पुत्र गोविन्द।
इस 'विभूति' का भी भागी था
पाटलिपुत्र,—अलौकिक ओक,
जिसे दे चुके थे चिर गौरव
चन्द्रगुप्त चाणक्य, अशोक।
शासन था औरंगजेब का,
चारों ओर मचा था त्रास;
किया जा रहा था बलपूर्वक
दिन दिन हिन्दूकुल का ह्रास।
बूढ़े बाप, बड़े भाई को
भूल गया था जिसका धर्म,

Hindi Premi

अन्य धर्मियों के प्रति उसने
किया न होगा कौन कुकर्म!
बनी काव्य-संगीत कला की
उसी शुष्क के समय समाधि,
उसने कहा—"गाड़ना ऐसे
उभर न पावे फिर वह व्याधि!"
कोप कृपा करके करता था
कूटनीति वह कुटिल, कठोर;
ऊपर से खिलने देता था
भीतर से उनमें विष घोर!
न्याय माँगने आते उससे
साधु-सन्त जन सहज विनीत,
किन्तु हूल कर हाथी उन पर
जाता वह उद्धत अवगीत।
राक्षस यज्ञनाश करते थे
उसके मुल्ला भी स्वच्छन्द,
करते फिरते थे दल-बल से
आर्यों के धर्मोत्सव बन्द।
देव यथा दैत्यों के भय से
आये थे दधीचि के द्वार,
कुछ काश्मीरी ब्राह्मण आकर
गुरु से करने लगे गुहार,—
"डूब न जाय हाय! हे गुरुवर,
निज नन्दनवन-सा काश्मीर,
बरसाते हैं यवन-काल-घन
धेनु-रुधिर-धारा का नीर।
हिन्दू मुसलमान होते हैं,
मन्दिर मसजिद, यह अन्याय;
निज संस्कृति-साहित्य-सभ्यता
नष्ट हो रही है निरुपाय।
सहज सुन्दरी बहू बेटियाँ
हरी जा रही हैं हा आज!
रख सकते हैं एक आप ही
अपनी आर्य जाति की लाज।

Hindi Premi

एक सूत्र में बाँध हमें जो
दें आयुर्बल तेज विशेष,
शिखा-सूत्र सब टूट रहे हैं–
छूट रहे हैं भाषा-वेष।
मतविभिन्नता होने पर भी
आते हैं अपने ही काम;
हम दोनों के लिए एक ही
दीख रहा है दुष्परिणाम।
नहीं जाति से ही हिन्दू हैं,
आप धर्म से भी हैं आर्य;
निज विचार-धारा स्वतन्त्र है
आदि काल से ही अनिवार्य।
ब्राह्म कर्म के साथ आप में
क्षात्रधर्म भी है भरपूर;
कर सकता है और कौन फिर
विकट धर्म-संकट यह दूर?
मर सकते हैं, मरते भी हैं,
मार नहीं सकते हम दीन;
क्षत्रिय, जो थे शूर सिंह, अब
हुए शृगालों से भी हीन।''
गुरु गम्भीर हो गये, बोले–
''सच कहते हो तुम हे विप्र!
अब अन्याय असह्य हुआ है,
छूटे यह अक्षमता क्षिप्र।
होता नहीं बड़ा परितर्वन
दिये बिना बलिदान विशाल;
करके दग्ध आपको दीपक
हरता है तब तम का जाल।
दान महान हमारा जितना
होगा उतना ही प्रतिदान।''
बोल उठे गोविन्द अचानक
''कौन आप-सा और महान!''
सभी सन्न थे, गुरु प्रसन्न थे,
हँसकर बोले–''अच्छी बात;

Hindi Premi

तात, तुम्हीं जैसों से होगा
मेरे ऐसों का प्रतिघात!
जाओ विप्रवरो, निर्भय हो
लिख दो बादशाह को पत्र–
'तेगबहादुर, मुसलमान हो
तो यह मत फैले सर्वत्र।
वही अग्रणी आज हमारा
हम सब हिन्दू उसके संग';
देखो, क्या उत्तर देता है
इसका अन्यायी औरंग''
उत्तर तो जाना समझा था,
आते नहीं वृकों को अश्रु,
बोला वह–"हाँ, तेगबहादुर!"
लगा झाड़ने गुम्फश्मश्रु।
रामराय पहले ही उसको
भरता था गुरु के विपरीत,
हुक्म हुआ–"झट हाजिर हो वह
ले आओ जीते जी जीत।"
प्रस्तुत थे गुरुवर पहले ही
अब दिल्ली को दूर न मान,
वीर स्त्रियाँ बिदा देती थीं
रो रोकर गाकर शुभ गान!
बरसे साश्रु-सुमन-जय जय से
गूँजा उनका उच्च अलिन्द;
"पिता! पिता!" सन्नाटा छाया,
गद्गद हुए पुत्र गोविन्द।
कहा पिता ने–"वत्स! नहीं है
कातर होने का दिन आज;
व्यर्थ न होगी यह मेरी बलि,
जाग उठेगा सुप्त समाज।
क्षात्रभाव ही आवश्यक है
भारत में सम्प्रति सविशेष;
वही धर्म-धन-जन-जीवन रख
रक्खेगा निज भाषा-वेष।

Hindi Premi

जब हल, तुला और कुशधारी—
हों कृपाणधारी भी साथ,
तभी हमारे धाम-धरा-धन
जाति-धर्म सब अपने हाथ।
जन्म-मृत्यु, ये दोनों हैं निज—
उठते गिरते पलक-समान,
बस स्वतन्त्रता और मुक्ति ही
यहाँ वहाँ विभु के दो दान।
आत्मज, और कहूँ क्या तुमसे
तुम्हें उचित शिक्षा है प्राप्त,
केवल अपनी मनोवेदना—
कर दो तुम जन जन में व्याप्त।
तुच्छ नीर से नहीं, रक्त से
करता हूँ तुमको अभिषिक्त;
गुरु बनकर तुम मधुर बना दो—
जनता का जीवन है तिक्त।
स्वयं जनार्दन-हेतु आपको
और तुम्हें जनता के हेतु,
अर्पित करके धन्य हुआ मैं,
धारण करो धर्म का केतु।
कट जावेंगे पुण्यभूमि की
पराधीनता के सब पाश,
पांचाली की लाज रहेगी
होगा दुःशासन का नाश।"
'जय गुरुदेव' गिरा फिर गूँजी
रहा न गौरव का परिमाण;
पाँच शिष्य लेकर ही गुरु ने
दिल्ली को कर दिया प्रयाण।
साथ न छोड़ सका गुरुवर का—
सचिव विप्र बुधवर मतिदास,
उसे प्रेम था उन पर पूरा
और उन्हें उस पर विश्वास।
होते हैं स्वाधीन साधु जन,
लगी उन्हें पथ में कुछ देर;

Hindi Premi

पर सह सकता कैसे इसको
आलमगीरी का अन्धेर!
एक अकिंचन मुसलमान ने
मिलकर उनको किया प्रणाम,
कहा—"आपके लिए हाल में
एक लाख का हुआ इनाम।"
गुरु हँस बोले—"तो आओ, मैं
दिल्ली चलूँ तुम्हारे साथ!"
"मेरी ऐसी ताब कहाँ है!"
जोड़े उसने दोनों हाथ।
"भाई, मैं तो जाता ही हूँ
तुम क्यों होते नहीं निहाल?
अहो भाग्य है यदि मुझसे हो
मालामाल एक कंगाल!"
रक्खा गया उन्हें दिल्ली में
विद्रोही बन्दी-सा रोक,
जो स्वतन्त्रचेता होते हैं,
पाते हैं शूली तक, शोक!
कैसे गति पावें कारागृह
जो अघ-अर्णव के उपकूल,
जीवन मुक्तों के चरणों की
कभी न पावें यदि वे धूल?
बादशाह कुछ क्रूर हँसी हँस
बोला गुरु से ताना मार—
"बड़े धर्मगुरु हो दिखलाओ
कोई करामात इस बार।"
गुरु ने उत्तर दिया—"हुई है
करामात की ऐसी चाह,
तो गलियों में बहुत मिलेंगे
बाजीगर बुलवा लें शाह।
पल में पेड़ लगा देंगे वे,
लग जावेंगे सब फल-फूल;
पर ये सब्ज बाग होते हैं
सबके सब बेजड़-निर्मूल!

Hindi Premi

मुझे सत्य का ही आग्रह है
धर्माग्रही शाह भी ऐंन
रखते होंगे स्वयं बड़ी कुछ
करामात तब कहते हैं न!"
कहा यवन ने असि चमकाकर,
"मेरी करामात यह साफ!
बँधे पड़े हैं तुम जैसे गुरु,
मारूँ चाहे कर दूँ माफ!"
"शाह बड़े भारी भ्रम में हैं,
बद्ध देह है बन्धन आप;
किन्तु मुक्त है मेरा आत्मा,
वह निर्लेप और निष्पाप।
और यही असि करामात है,
जिस पर बादशाह को गर्व,
तो मुझमें भी चमत्कार यह–
समझूँ उसको तृण-सम खर्व!"
"डरते नहीं कहो क्या तुम कुछ?
या कि हुए हो नाउम्मेद?"
ने उत्तर दिया कि "यह भी
आप नहीं समझे, हा खेद!
नहीं डराते स्वयं किसी को,
डरें किसी से फिर क्यों वीर?
वे निराश हों जो हों पापी,
पामर, परपीडक, बेपीर।
आशा क्या, विश्वास हमें है,
और यही है उसका मर्म–
छोड़ दिया फल प्रभु पर हमने
कर्म किया है समझ स्वधर्म।
हम क्यों डरें, डरे वह जिसको
दीख रहा हो दुष्परिणाम;
जिसने कोई पाप किया हो
लेकर किसी पुण्य का नाम।"
बादशाह बोला–"रहने दो
अब फिजूल है ज्यादा तूल;

Hindi Premi

जीना हो तो मुसलमान हो—
शाही मजहब करो कुबूल।''
''शाही मजहब के भी ऊपर
मानव-धर्म न भूलें शाह;
मिलते नहीं जलधि में जाकर
एक पन्थ से सभी प्रवाह।
सतत मतस्वातन्त्र्य सभी को
देता है स्वराज्य में राम;
मर्यादा रखकर नास्तिक तक
पाते हैं उसमें धन-धाम।
प्रिय होते न एक उस प्रभु को
भिन्न-भिन्न इस भव के भाव,
तो किस भाँति अनेक मतों के
हम करने पाते प्रस्ताव?
'जीना हो तो मुसलमान हो,
शाही मजहब करो कुबूल;'
किन्तु मरेंगे स्वयं एक दिन
शाह कृपा कर जायँ न भूल!
आप मरें, मैं मारा जाऊँ,
हो सकता है यही प्रभेद;
देगी किन्तु मुझे गौरव ही—
मेरी मृत्यु, न देगी खेद।''
कहा कुपित औरंगजेब ने
''ठीक न होगे यों तुम ढीठ;
ठहरो!'' गुरु-शिष्यों पर उसने
डाली तब डरावनी डीठ।
''बस जवाब दो एक बात में
तुम सबको है क्या मंजूर?''
''गुरु की विजय,—विजय निज गुरु की''
गरज उठे वे पाँचों शूर।
गुंजारित हो उठा वहाँ पर
'जय गुरुदेव!' नाम का नाद;
दाँत पीसकर बादशाह ने
हाँक लगाई—''हाँ जल्लाद!''

Hindi Premi

गिरे हाल, पाँचों सिर कट कर
हुआ धर्मबलि का मुँह लाल;
कहा गर्व-गौरव से गुरु ने
पाँचों वार—"अकाल! अकाल!"
"दैव-दान का दुरुपयोग यह!"
बोला अति निर्भय मतिदास,
"किन्तु अमर हैं, मरे नहीं ये
इसका साक्षी हो इतिहास।
अन्यायी को याद रहे यह
यदि उसके कर में करवाल,
तो उसके ऊपर भी प्रभु का
घूम रहा है चक्र कराल!"
बादशाह गरजा—"ओ काफिर,
सोच समझ कर तू मुँह खोल,
मुसलमान हो जा, या अब क्या
तुझको भी मरना है बोल?"
"करो मुसलमानी उनकी जो
बेचारे बच्चे अनजान,
चाहो मेरा गला काट लो,
मैं सदैव हिन्दू-सन्तान!"
"गला नहीं, सिर पर आरा रख
डालो इसे इसी दम चीर,"
दाँत पीसने लगा क्रोध से
आज्ञा देकर आलमगीर।
चिरता रहा ठूँठ-सा द्विजवर
प्रणव नाद का निश्चल ठाठ!
उसे सुनाते रहे अन्त तक
गद्‌गद गुरु 'जपुजी' का पाठ।
बोला फिर कर बादशाह फिर—
"तेगबहादुर, अब भी आव,
नहीं आप तुम बुतपरस्त हो
पूरे मुसलमान हो जाव।"
"नहीं मूर्त्ति-पूजक मैं, फिर भी
वे मेरे ही भाईबन्द,

Hindi Premi

प्रतिमा के मिस जो प्रभु की ही
पूजा करते हैं स्वच्छन्द।
करते हैं तद्रूप कल्पना
जपते हैं वे जिसका नाम,
भूखा है भगवान भाव का
सब में रमा हुआ है राम।
'आप देव है, आप देहरा
आप लगाता है पूजा,
जल से लहर, लहर से जल है
कहने सुनने को दूजा।'
हिन्दू प्रतिमा-पूजन को ही
नहीं समझते अन्तिम लक्ष,
हरिचरित्र चिन्तन करते हैं
रखकर पहले चित्र समक्ष।
रखते हैं दो बन्धु परस्पर,
बहुधा निज विचार वहु भिन्न,
किन्तु रुधिर-सम्बन्ध कभी क्या
होता है उनका विच्छिन्न?
तिथि-त्योहार, पर्व-उत्सव युत
एक हमारे हैं व्यवहार;
एक हमारे प्यारे पूर्वज,
एक प्रकृति, संस्कृति, संस्कार।
फिर भी यदि कुछ मुसलमानपन
मानें हममें तो फिर वाह!
अब गोमांस खिलाने का ही
हठ क्यों ठान रहे हैं शाह!
दुग्धपोष्य बच्चों को खा ले,
नाग जाति की है यह ख्याति;
दूध पिलाने वाली माँ तक
नहीं छोड़ती मानव जाति।''
''एक बार, बस एक बार अब,
मौका देता हूँ मैं और,
मुसलमान होकर तुम मेरे
भाई हो, छोड़ो यह तौर!''

Hindi Premi

"भाई! अरे दुहाई, रहिए,
कहिए–दारा या कि मुराद?
भाई से अरि ही अच्छा मैं
आयी अब क्यों उनकी याद?
होता नहीं बादशाहों का
कोई भाईबन्द न बाप!
मैं जो कुछ भी हूँ सो मैं हूँ,
और आप जो हैं सो आप।"
पैर पटक कर कहा यवन ने–
"ओ काफिर! ओ नामाकूल,
मर कर छुट्टी पा जाऊँगा
समझ रहा है तू, यह भूल।"
सचमुच हा उस अन्यायी ने
गुरु को वन्दीगृह में डाल,
उन्हें अनेक कष्ट दिलवाये
मरने से भी कठिन कराल।
जिला जिला कर मारा उसने,
मात मिटा देती है कष्ट;
मिटती नहीं वेदना तब तक
जब तक न हो चेतना नष्ट।
किन्तु चेतना भावुक गुरु की
हुई सच्चिदानन्द-निमग्न;
जड़ शरीर को जो चाहे सो
करे दग्ध, दारित या भग्न।
कुछ दिन पीछे बादशाह ने
फिर बुलवाया उन्हें समक्ष;
पर मानो दृढ़ हुआ और भी,
पीड़ित होकर उनका पक्ष।
"अरे! व्यर्थ ही बल दिखला कर
भरम गँवाया तूने वीर!
क्या यह आत्मा मर सकता है?
जी सकता है कभी शरीर?
मेरा जीवन-मन्त्र बँधा है
देख, गले में तू यह यन्त्र;

Hindi Premi

तेरी वह तलवार तुच्छ है,
मैं हूँ अब भी स्वतः स्वतन्त्र।''
''मैं स्वतन्त्र ही कर दूँ तुझको
हो जा मरने को तैयार,
देखूँ तेरे जन्त्र-मन्त्र सब
हाँ जल्लाद, तुले तलवार।''
ध्यानमग्न गुरु छोड़ चुके थे
मानो पहले ही निज देह,
सिर कट गया और ऊपर को
बरसा उष्ण रुधिर का मेह।
पढ़ा गया वह यन्त्र खोलकर,
सुनता था सारा दरबार,
बस इतना ही लिखा हुआ था—
''सिर दे डाला, दिया न सार!''
माँगा गुरु-शव कुछ लोगों ने
किया यवन ने अस्वीकार;
रखवा दिया उसे पहरे में
जिसमें हो न सके संस्कार।
अन्त्यज कुल का वृद्ध एक जन,
जो गुरु था हुआ कृतार्थ,
पुत्र सहित दिल्ली पहुँचा था
इच्छापूर्वक इसी हितार्थ।
अर्द्ध रात्रि, ऊँचे अट्टों की
ओट हो गया चन्द्र समक्ष,
पर चकोर-सम पिता-पुत्र का
अब भी सम्मुख था निज लक्ष।
सुन पड़ती थी कहीं कहीं से
गीतध्वनि, मृदंग की थाप,
झूम झरोखों पर लटपट-सा
वायु छटपटाता था आप!
प्रहरी नीचे झीम स्वप्न में
देख रहे थे ऊँचे दृश्य;
किन्तु पुनीत पिता-पुत्रों को
वे सब बातें थीं अस्पृश्य।

Hindi Premi

ऊपर चढ़े चोर-सम दोनों
करने को शुभकार्य नितान्त,
उतरे, ज़हाँ अस्त अरुणोपम
पड़े हुए थे गुरु चिर शान्त।
"जय गुरुदेव, धन्य तुमने ही
धर्म बचाया अपनी ओट;
अब घर चलो, उठो हे स्वामी!
उबरूँ मैं इस रज में लोट।"
कहा पुत्र से उसने—"जिसमें
जग प्रहरी न करें सन्देह,
गुरु को लेजा और छोड़ जा,
यहीं काट कर मेरी देह।"
कहा पुत्र ने—"मुझे छोड़कर
गुरु को ले जाओ तुम आप;
बेटा फिर भी हो सकता है,
बने रहो हे मेरे बाप!"
"पागल! मैं मरने को ही हूँ
पर तू है कुछ करने योग्य,
इससे यह मेरा विचार ही
है तेरे आचरने योग्य।
तू भी मुझ-सा मरना पावे
अपना ऐसा बेटा छोड़;
जाग न जायँ जवन, जल्दी कर,
तुच्छ मोह तिनके-सा तोड़।"
बाप हँस रहा था, बेटे को
मानो मार गया था काठ,
स्वयं वृद्ध ने निज सिर काटा
कर जी में 'जपुजी' का पाठ।
बेटा चौंक पड़ा, झट उसने
वहीं बाप को किया प्रणाम;
फिर गुरु-सिर लेकर बच आया
रथ में रख लाया गुरुधाम।
था आनन्द पुरप्रांगण में
हाहाकार कि जयजयकार!

Hindi Premi

रोते रोते गाते थे सब–
"सिर दे डाला, दिया न सार!"
काँप उठा आकाश अचानक
प्रान्त प्रान्त कर उठा पुकार–
सुना सभी ने, कह सभी ने–
"सिर दे डाला, दिया न सार!!"
उबल उठे उत्तप्त पंचनद,
रहा क्षोभ का वार न पार,
हर हर करके हहराये वे–
"सिर दे डाला, दिया न सार!!!"

Hindi Premi

गुरु गोविन्दसिंह

संस्कार

क्या चिन्ता यदि अस्त हो गया
तेगबहादुर रूपी चन्द्र?
देखो, गुरुगोविन्द-दिवाकर
उदित हुआ है वह निस्तन्द्र!
किन्तु न देख सका तत्क्षण ही
उधर घूम कर आलमगीर,
महाराष्ट्र वीरों ने उसको
कर डाला अत्यन्त अधीर।
सिक्ख-संघ के भाग्य-विधाता—
निर्माता थे गुरुगोविन्द,
जो दे गये वंश तक की बलि,
वे दाता थे गुरुगोविन्द।
करके पितृ संस्कार उन्होंने
कहा—"शान्ति पाओ तुम तात!
भूलेगा गोविन्द जात क्या.
कभी तुम्हारा यह अपघात।
वैरव्रत पर ही अर्पित है
मेरा तन, मन, धन, सर्वस्व,
आर्य जाति की जागृति में ही
है मेरा जीवन-सर्वस्व।
है बलिदान बपौती मेरी,
कहता हूँ मैं आज सगर्व!

Hindi Premi

पिता, तुम्हारे पद चिह्नों पर
प्रस्तुत है असि-धारा-पर्व!
जो पथ दिखलाया है तुमने
उससे नहीं हटेंगे पैर;
देते जावेंगे हम निज बलि,
जब तक ले न सकेंगे वैर।
धन-जन, हय-गज, शस्त्र-सैन्य की
नहीं मुझे उतनी परवाह,
तुम निश्चिन्त रहो, मुझमें है
दृढ़-निश्चय, साहस, उत्साह!
भागें सर्व भण्ड भय पाकर
हिन्दू धर्म बढ़े ध्रुवमेव;
गावें सिक्ख वीर विजयी हो
'जय गुरुदेव जयति गुरुदेव'—"
गरजे सभी, चिता को झुककर,
"जय गुरुदेव, जयति गुरुदेव!"
"हा! हा!" कहा—अग्नि ने रुककर—
"जय गुरुदेव, जयति गुरुदेव!"
निर्वापित हो गयी भले ही
धरती पर वह चिता विशाल,
किन्तु धर्म की बलि-वेदी में
छोड़ रही है अब भी ज्वाल।

संघटन

जो कहते हैं सो करते हैं,
नहीं भूलते हैं प्रण वीर;
धारण करते हैं भूषण-सम
रण में बढ़ बढ़ कर व्रण वीर।
और सुखों की बात छोड़िए,
भूख और भोजन भी भूल
गुरुवर करने लगे संघटन—
उद्धत यवनों के प्रतिकूल।

Hindi Premi

किया उन्होंने तप कुछ दिन तक
अलग हिमालय में एकान्त,
प्रथम आपको आप बनाया
श्रम-सहिष्णु, सक्षम, दृढ़, दान्त।
तब कवि-कोविद-संग उन्होंने
पढ़े-गुने श्रुति, शास्त्र, पुराण,
और साथ ही विरोधियों के
देखे-सुने हदीस-कुरान।
नव नव नाट्य दिखाते हैं निज
जिसमें दोनों—ह्रास-विकास,
राष्ट्रों का जीवनचरित्र-सा
मनन किया गुरु ने इतिहास।
पुण्य पुराण-पाठ कर उनका
फूल उठा आशा से वक्ष,
मिले उन्हें रामायण-भारत
नव बल-कौशल-से प्रत्यक्ष।
"लेकर वन्य वानरों को भी
लिया गया रावण से वैर,
रक्खे सिक्ख संघटित होकर
म्लेच्छों के मस्तक पर पैर।
यवन हमारे भाई भी हों,
पर अन्यायी कौरवतुल्य;
जहाँ धर्म, जय वहीं अन्त में
क्या है उनका बलबाहुल्य!"
सीधे-सादे, सरल, सौम्य थे
हुए यहाँ तक विनयविनीत—
जिससे आज हुए थे हिन्दू
बात बात में भावुक-भीत।
शान्तिप्रिय सन्तोषी थे वे
सदय-हृदय, विग्रह से दूर,
उनके उन अतिरिक्त गुणों से
लाभ उठाते थे अरि क्रूर।
खो बैठे थे क्षुद्र जाति पर
वे निज जातीयत्व यथार्थ,

Hindi Premi

मृषा स्वार्थ लेकर ज्यों लोलुप
खो देते हैं निज परमार्थ।
विधि-वादी, श्रम-विमुख, निद्यम,
हुए आलसी थे वे मन्द,
क्षणभंगुर-सा सोच भुवन को
समझे थे माया का फन्द।
भूल गये थे वे कि भले ही
क्षण में हो जावे भव-भंग,
किन्तु हमारी कुल-परम्परा
अक्षय है अपनों के संग।
अब भी धर्म शेष था उनमें
पर वे थे आचार भ्रष्ट;
उपचारों के पहले गुरु ने
वारम्वार विचारा कष्ट।
"चिड़ियों से मैं बाज गिराऊँ
तभी कहाऊँ मैं गोविन्द,
अपना क्षोभ शत्रु-शोणित में—
क्यों न बहाऊँ मैं गोविन्द।
लाख लाख म्लेच्छों से मेरा
एक एक भट करे न युद्ध,
तो फिर वैरि-विरुद्ध वृथा ही
किया उन्हें मैंने उद्‌बुद्ध।"
सिक्खों में श्रद्धा थी, पर वे
थे विशेष कर विद्या-हीन,
द्विज जो संस्कृत-शिक्षा देते
वे थे स्वयं स्वार्थ में लीन।
गुरु ने कहा—"ब्राह्मणेतर भी—
पाते हैं जब पवन-प्रकाश,
तब उनके संस्कृत पढ़ने से
होगा जड़ता का ही नाश।
जिन्हें शूद्र कहते हैं वे ही
हैं समाज के सच्चे अंग,
प्रथम पैर ही पुजते हैं जो
ले चलते हैं सब कुछ संग।

Hindi Premi

पाप-पुण्य निज कर्म्मों पर हैं
शूद्र-विप्र का एक शरीर,
नाली में अस्पृश्य, नदी में
पावन होता है घन-नीर।
आर्य जाति की थाती रख कर
किया ब्राह्मणों ने बहु कार्य,
किन्तु पचाकर उसे स्वयं ही
न हों आज वे अधम अनार्य।
आप न उठ, अब औरों को ही
गिरा गिरा कर द्विज, तुम उच्च;
मुझको तो चन्दन अभीष्ट है;
बना रहे तालद्रुम उच्च!''
हिन्दू-विद्यापीठ सदा से
रहा धन्य वह काशीधाम;
गये वहाँ कुछ शिष्य और वे
बन आये पण्डित प्रियकाम।
भाषान्तरित कराये गुरु ने
पुण्य पूर्वजों के आख्यान,
हुआ सर्व साधारण को यों
अतुल आत्मगौरव का ज्ञान।
अपनी भाषा में अपनों के
गाने लगे लोग अब गीत,
जागा स्वाभिमान यों उनमें
और हुए वे प्रकृत पुनीत।
बड़ी देव भाषा से भी है
जनता की भाषा जनतार्थ,
उसमें दोनों ही सधते हैं
उसके स्वार्थ और परमार्थ।
हुई धीर गाथाओं पर बहु
शूर सिखों के मन में प्रीति,
वीर मराठों में थी जैसे
कथा और कीर्तन की रीति।
गुरु का सच्चा गौरव यह है
वह गढ़ सके स्वयं नव मन्त्र,

Hindi Premi

वे कवि थे, रचते थे बहुधा
बलदायक बहु वृत्त स्वतन्त्र।
हँसकर बोले एक वार वे
पाकर दो मणि कंकण भेंट,
"कंकण नहीं, मुझे तो कर दो,
जो वैरी को धरें समेंट।"
कहते कहते सघन गगन-सम
सहसा वे हो गये गभीर;
नद के बहते हुए नीर-सम
टहल रहे थे उसके तीर।
कंकण एक उतार उन्होंने
दिया डब्ब-से जल में डाल,
जो ज्वलन्त अंगार-सरीखा
बुझता-सा डूबा तत्काल।
तब भी जल पर एक चिह्न वह
छोड़ गया कुण्डल-सा गोल,
घट कर नहीं किन्तु बढ़कर जो
हुआ दृष्टि की ओट अतोल।
एक सिक्ख ने देख रिक्त कर
कहा—"गिरा कंकण किस ठौर!"
फेंक दूसरा भी पानी में
बोले वे उससे—"इस ठौर!"
"अलंकार तो आज भार हैं,
दो अच्छे-से आयुध भेंट;
कंकण नहीं, मुझे तो कर दो,
जो वैरी को धरें समेंट।"
धन ही नहीं जनों ने उन पर
दिया आप अपने को वार,
और उन्होंने उनको लेकर
गढ़ा अपेक्षा के अनुसार।
लोगों को परलोक-योग्य वे
करने लगे मृत्यु-भय मेंट,
जीवन तो जाने ही को है
दे दो उसे धर्म्म की भेंट।

Hindi Premi

विविधायुध आभा में ही अब
बहुधा वे करते थे वास,
पड़ता है निर्मल जल में ज्यों
चढ़ते रवि का विम्ब-विकास।
जाकर कोसों दूर निमिष में
लक्ष्य वेध कर उनके बाण,
बल-गौरव के कर-लाघव के
सूक्ष्म-दृष्टि के बने प्रमाण।
लेते शस्त्र, भेंट वे देते,
शस्त्र बाँधने का उपदेश,
बस उनका उद्देश यही था—
योद्धा बन जावे निज देश।
हेषाध्वनि करते थे उनके
रंग रंग के तरल तुरंग,
कूद धरें उड़ता विहंग जो,
क्या सूकर, क्या सरल कुरंग?
जिनसे ओट मिले अपनों को,
शत्रु जनों को दूनी चोट,
ऊँचे उपगिरि तुल्य उन्होंने
बनवाये बहु दृढ़ गढ़-कोट।
एक वार गुरु ने निज भोजन
दिया कहीं कुत्तों को डाल,
वे लड़ पड़े, दिखाया गुरु ने—
कौवे मार ले गये माल।
"आपस में लड़ने वालों का
यही हाल समझो सब ठौर;
दो झगड़ेंगे और तीसरा
ले जावेगा मुँह का कौर!"
सात्विक, सारस्वत, सन्तोषी
कुछ ब्राह्मण थे उनको इष्ट,
किया उन्होंने एक निमन्त्रण
बनवाये बहु भोजन मिष्ट;
किन्तु कहा, "जो मांस खायगा
वही पायगा दान सभुक्ति;"

Hindi Premi

अस्वीकार हुआ यह जिनको
हुए वही स्वीकार सयुक्ति!
छुड़वा दिया एक खर गुरु ने
उढ़वा कर बाघम्बर साज,
उसे देख भागे जो पहले
आयी उनको पीछे लाज।
गुरु बोले—"मैंने तो तुमको
दिया सिंह का वाना-वेष,
अब तुम जानो, यदि पीछे से
निकलो कभी शृगाल विशेष।"

यज्ञ

शक्ति-समाराधन करने को
किया उन्होंने यज्ञारम्भ,
जिसमें देवी के प्रसाद से
दलें दस्युओं का वे दम्भ।
ऐसा न था कि अपने ऊपर
न हो उन्हें पूरा विश्वास,
किन्तु उचित है यह मनुजों को
करें देवताओं की आस।
उठता था स्वाहा स्वाहा का
नाद और आहा आमोद,
भरता था पर्जन्य-पुत्र से
पावन धूम गगन की गोद।
एक वर्ष तक चला यही क्रम
अन्तिम दिन बोला आचार्य—
"किसी विशिष्ट व्यक्ति की बलि से
आज पूर्ण हो मख का कार्य।"
बोले उस तान्त्रिक से गुरुवर—
"सुत बलि लेगी अम्बा शक्ति?
तो फिर महाराज, खोजूँ मैं
कहाँ आपसे बढ़कर व्यक्ति?"

Hindi Premi

खिसक गया वह जन यह सुनकर
गुरु के नेत्र हो गये लाल;
लेकर सब साकल्य उन्होंने
दी तुरन्त अन्ताहुति डाल।
उठी अटगुनी ज्वाला तत्क्षण,
फैला उजियाला अत्यन्त;
खड्ग खींचकर खड़े हो गये
देवी के सम्मुख वे सन्त।
"माँ, बलिदान चाहती हो तो
आने दो तुम उसका योग,
क्षुद्र एक जन से क्या होगा
दूँगा मैं सौ सौ बलि-भोग।"
धसी सिमिट मख-शिखा विम्ब-मिष
जगमग करती थी असि इष्ट;
मानो ज्वालामुखी भवानी
आकर उसमें हुई प्रविष्ट!
देवी को प्रणाम करके गुरु
बोले स्वजनों से—"हे तात!
हैं अपने अनुकूल अम्बिका,
किन्तु याद रखना याद वह बात—
जो है आप सहायक अपना
हैं उसके ही देव सहाय,
रहे आत्मविश्वास हृदय में
और न छूटे अध्यवसाय।
देवी से वर लिया किसी ने
लेकर उनका ही अवलम्ब—
'संकट में जब तुझे पुकारूँ
मुझे उबार लीजियो अम्ब!'
काँप उठा फँस एक वार वह
रण में मृत्यु-नृत्य सा हेर;
घिग्घी बँधी, तदपि ज्यों त्यों कर
उसने वहाँ लगाई टेर।
कहा प्रकट होकर काली ने—
'खड्ग उठा, तेरी है जीत।'

Hindi Premi

'उठा सकूँगा न मैं खड्ग तो'
बोला उनसे वह भयभीत।
'तो फिर भाग, न कोई तुझको
पकड़ सकेगा, जा उस ओर;'
'हाय! भाग भी नहीं सकूँगा,
जकड़ गये हैं पैर कठोर।'
'न तो खड्ग लेगा न भगेगा'—
कहा भवानी ने—'धिक् पापि!
ऐसे कायर की सहायता
मैं भी करती नहीं कदापि।'—"

परीक्षा

दान-दक्षिणा-पूर्वक गुरु ने
दिया ब्राह्मणों को तब भोज;
होकर तृप्त असीसा सबने—
बढ़े प्रताप तेज-बल-ओज!
सभा बुलाई गयी अन्त में
दूर दूर से आये सिक्ख,
समयोचित उपहार भेंट बहु
श्रद्धापूर्वक लाये सिक्ख।
लिए वही असि निकले गुरुवर,
कर भीतर कुछ नया प्रबन्ध,
करि-सम कर नीचे ही थे पर
कुम्भ-सदृश थे उच्चस्कन्ध!
खड़े हुए ऊँचे चत्वर पर,
नीचे थी सिक्खों की भीड़,
सम्प्रति सबकी हृत्तन्त्री में
थी उत्सुक भावों की मीड़।
तब गुरु ने गम्भीर-नाद से
कहा—"भाइयो, सुनो सहर्ष,
पूर्ण हुआ वह यज्ञ हमारा
यह आरम्भ हुआ नव वर्ष।

Hindi Premi

लेकर नयी नयी आशाएँ
लेकर नये नये उत्साह,
बहता है मेरी नस नस में
नये रुधिर का नया प्रवाह।
देखो, 'दुर्गादत्त' खड्ग यह,
उचित यही अब इसका नाम,
दीख पड़ा मुझको अम्बा का
इसमें अतुल विम्ब अभिराम।
इस अपूर्व अवसर पर हमसे
माँग रही हैं वे बलिदान,
जीवन सफल करे सो सत्वर
बढ़े, चले चत्वर-सोपान।''
सन्नाटा था! बढ़ा एक जन–
न था वदन पर भय का लेश,
बोला–''स्वीकृत हो यह किंकर;
देवकार्य, गुरु का आदेश!''
'भाई दयाराम लाहौरी,'
चारों ओर हो गयी धूम,
उसे नया ग्रह-सा लोगों ने
देखा समय सविस्मय घूम!
धन्य धन्य की ध्वनि में उसको
गुरु भीतर ले गये सहर्ष,
जब लौटे, शोणित-सिंचित थे
रंजित खड्ग लिए दुर्द्धर्ष।
मौरी से आकर चत्वर पर
सम्मुख फैल रहा था रक्त,
किस रणचण्डी के सुहाग का
उफन रहा था आज अलक्त!
सिहर उठा वह संघ देख यह,
फिर भी थे सारे जन मौन;
सिंह-सदृश गुरु गरज उठे फिर–
''अब की वार चलेगा कौन?''
फिर सन्नाटा! बढ़ा धीर-गति
धर्मसिंह दिल्ली का जाट,

Hindi Premi

बोला प्रणतियुक्त—"प्रस्तुत हूँ,
दीजे यह मेरा सिर काट।"
फिर भी वही विपत्ति! बहुत जन
खिसक उठे दिखला कर पीठ;
'हिम्मत' धीवर ने हिम्मत की
बोला—"उद्यत है यह ढीठ!"
चौथा 'मुहकम' छीपा था वह
जिसने दिखलाया यह क्षात्र,
और पाँचवाँ 'साहब' नाई
हुआ सिंह पदवी का पात्र।
धन्य धन्य वे शिष्य और गुरु,
आती नहीं साँच को आँच;
तीन बार सबकी होती है
पाँच बार थी इनकी जाँच।
उठी यवनिका, देखा सबने
जीवित थे वे पाँचों वीर—
गुरु के ऐसे कपड़े पहने
पुलकित अंग, अभंग शरीर।
रुण्ड समेत समीप पड़े थे
पाँच अजा-पुत्रों के मुण्ड,
निरख नाट्य-पट-परिवर्तन-सा
चकित हुए लोगों के झुण्ड।
लज्जित हुए सभी—'क्यों हमने
दिया न अपने को गुरु-हेतु?
रख छोड़ा मानो झूठी ही
जय जय जपने को गुरु-हेतु।'

दीक्षा

"धन्य आज का दिन" गुरु बोले—
"सीखे हैं सिख मरना ठीक,
जी सकता है वही जगत में
मर सकता है जो निर्भीक।

Hindi Premi

हुए 'पाँच प्यारे' ये मेरे,
सब सोढ़ी क्षत्रिय हैं धन्य
इनमें जिन्हें शूद्र जो समझे
वही शूद्र, जड़-जीव, जघन्य।
यही पाँच पाण्डव हैं मेरे,
मैं गोविन्द!" हँसे गुरुराज,
"कौरव-कालयवन सौ भी हों
तो भी नहीं मुझे भय आज।"
किन्तु मुझे आशा है, निश्चय
नहीं यहीं यह शौर्य समाप्त,
पाँच नहीं, सिक्खों में ऐसे
पाँच लाख भी होंगे प्राप्त।"
चरणों में गिर गुरुवर के
चिल्ला उठे सहस्रों शिष्य—
"आज्ञा हो, मर मिटें कहाँ पर
इसी समय हम भूल भविष्य।"
"वीरो, मुझे यही आशा थी,
आओ, करो अमृत अब पान;
हम सब हैं बलिदान-हेतु ही,
जिये जयी भावी सन्तान।"
गुरु ने पाँचों को दीक्षा दी,
ली भी उनसे गुरुपान होम;
पंचामृत घोला कटार से
चखा-चखाया वह नव सोम।
"एक जाति हो सब सिक्खों की,
जब सबका वीरव्रत एक;
एक विशेष चिह्न हों सबके,
और एक ही विनय-विवेक।
मैं भी सबके ही समान हूँ,
सबका गुरु है आदिग्रन्थ;
एक अकाल उपास्य हमारा,
खालिस यही खालसा पन्थ।"

Hindi Premi

पंच ककार

पाँच ककारों के धारण का
गुरु ने सबको दिया निदेश–
"कच्छ, कृपाण, कड़ा, कच, कंघा
कहीं न छूटें देश-विदेश।
आराधन-साधन या जप-तप
सबका मूल समझिए कच्छ;
संयम ही विजयी जीवन है,
तन हो सबल और मन स्वच्छ।
दुष्ट-दलन, दुर्बल की रक्षा,
कर सकता है एक कृपाण;
धर्म-धनारि, अनार्य-दस्यु-भय
हर सकता है एक कृपाण।
कड़ा–सूत का नहीं, सार का,
यही हमारा हो उपवीत;
पड़ा रहे कर में जय-कंकण–
शूर सिखों का चिह्न पुनीत।
केश हमारे वेश-रूप हों
कंघी के संगी चिरकाल,
रत हम आज वीरता व्रत में,
कैसे बन सकते हैं बाल!
हिन्दू-जाति-धर्म के प्रहरी
हम स्वदेश के सुभट समस्त,
आचारों के आडम्बर में
बँधें न अधिक हमारे हस्त।
कर में प्रखर कृपाण हमारे,
रहे हृदय में हर-विश्वास;
लोक और परलोक कहीं भी
नहीं हमें फिर कोई त्रास।
रण में मरण भाग्य, निज समझो,
किन्तु कलह में किसका क्षेम?
यादव-गण की याद न भूलो,
रहो पाण्डवों-से सप्रेम।

Hindi Premi

आज सिक्ख भी 'सिंह' हुए तुम,
सबके नामों में हो सिंह;
और नाम-सम सभी एक-से
तुम सब कामों में हो सिंह।''

उद्बोधन

यों सिक्खों को सिंह बनाकर
लिया स्वस्थ-सम गुरु ने श्वास,
वे बलिदान दे सकेंगे अब—
हुआ उन्हें मन में विश्वास।
फिर भी जिस स्वदेश के ऊपर
करने जाते थे वे युद्ध,
हाय! यवन पर-वश हो उलटा
अड़ा-खड़ा था वही विरुद्ध!
अपने चारों ओर उन्होंने
देखा, मिले कहीं कुछ तत्व,
तो कुछ क्षुद्र पहाड़ी राजे
दीख पड़े निर्बल-निस्सत्व।
किया उन्हें उद्बोधित गुरु ने
कि वे बना कर निज समुदाय,
धर्मशत्रु - संहार - कार्य में
बनें आप अनिवार्य सहाय।
''कब तक क्रीत दास यवनों के
बनें रहोगे तुम हे वीर!
कब तक पद-मर्दित रक्खेंगे
तुम्हें धर्म-वैरी बेपीर?
याद करो निज रूप तुम्हीं हो
सूर्य-चन्द्र-कुलजात नृपाल!
यदि अपने को भूल जाय तो
बने सिंह भी श्वान-शृगाल।
धार्मिक, सामाजिक या नैतिक
कौन निरादर है वह घोर—

Hindi Premi

सहना पड़ता नहीं बन्धु, जो
तुम्हें निरन्तर चारों ओर?
हिन्दू रहने का भी हमको
'कर' देना होता है हाय!
और हमारे ही बल से वे
करते हैं हम पर अन्याय।
दे दे कर सहयोग हमीं हैं
चला रहे यह शासन-यन्त्र,
जो हम मुक्तिलक्ष्य वालों को
रखता है पशु-सम परतन्त्र!
अपने ही जयसिंह धराधिप
कहला कर मिरजा जयशाह,
अपने ही शिवराजों को हैं
दिखा हरे दिल्ली की राह!
होते रहे सफल अरि,—हम में
पाकर अति अनैक्य या फूट,
धर्म, धरा, धन—तीनों ही की
मची इसी कारण यह लूट।
एक वेद हैं, एक शास्त्र हैं
और एक हैं निज कुल-गोत्र,
तदपि हाय! हम एक नहीं हैं,
गाते हैं अपने ही स्तोत्र।
हम जयचन्द चाहते हैं क्या
पृथ्वीराज न हों सम्राट;
आवे क्यों न मुहम्मद गोरी
लेंगे उसे चरण तक चाट!
अपने को तो उच्च बताकर
कह अपनों को नीच निकृष्ट,
विजातियों के, विधर्मियों के,
चरण चूमते हैं हम धृष्ट!
इतिहासों के पृष्ठों में यों
न हो और अब तुम उपहास्य,
उचित नहीं यह आर्य जनों को,
करें दस्यु गण का जो दास्य।

Hindi Premi

राम-कृष्ण के, भीष्मार्जुन के।
चन्द्रगुप्त-विक्रम के वंश,
धारण करो हाय! तुम कुछ तो
उनके गुण-गौरव के अंश।
यवनों, शकों और हूणों से
बदला लेने वाले आज,
म्लेच्छों से निज जाति-धर्म तक
बचा नहीं सकते, हा लाज!
तुम साके करने वाले हो,
फिर भी संवत् चलें नवीन,
आओ मिलकर घोषित कर दें
'हुए आज से हम स्वाधीन!'
अपमानित होकर जीने से
अच्छा है मर जाना, मार,
मर कर वीर अमर हैं, जीकर
भीरु मरे हैं वारंवार!
सजातीय सम्राटों के भी
पकड़ यज्ञ-हय निस्संकोच,
लड़ पड़ते थे स्वाभिमान-वश
तुम्हीं शक्ति सामर्थ्य न सोच।
देखो वे चित्तौर-चिताएँ–
बुझी नहीं अब भी वह आग,
राजसिंह में उस प्रताप की
ज्योति उठी फिर भी वह जाग।
हुए क्षत्रपति दाक्षिणात्य वे
महाराष्ट्र में परिणत हाल,
क्या मर भी न सकेंगे हा! यदि–
जी न सकेंगे हम इस काल!
जाति-धर्म्म की और देश की
लज्जा रखने के ही हेतु,
यवनों के विरुद्ध गुरुकुल ने
फहराया है निज रण-केतु।
इसीलिए बलिदान दिया है
पूज्य पिता ने अपने आप,

Hindi Premi

मैं भी प्रस्तुत हूँ, जैसे भी
कटे हमारा सबका पाप।
वह दिल्ली का बादशाह है,
मैं आनन्दपुरी यह सन्त,
फिर भी एक दृश्य दीखेगा,
सीखेगा कुछ पाठ दुरन्त।
एक देश का, एक जाति का,
एक राम का लेकर नाम,
आओ, जागें एक साथ हम,
भागें दस्यु, बचें धन-धाम।
छा जाता है जिनके ऊपर
एक बार जिसका आतंक,
उठते हैं क्या तद्विरुद्ध वे
न्यायपक्ष पर भी निःशंक।''
समझा राजाओं ने उलटा–
गुरु को लेना है प्रतिशोध;
औरों की उदारता में भी–
स्वार्थ देखते हैं दुर्बोध।

संघर्ष

गुरु ने कहा कि ''क्या चिन्ता है,
रक्खूँगा मैं तो निज मान,
आज न होंगे तो कल होंगे–
सफल हमारे सब बलिदान।
डरते हैं ये दुर्बल राजा–
मरें मिटें हम सब क्यों व्यर्थ?
अच्छी बात, बनाऊँगा मैं
मार मार कर इन्हें समर्थ!''
छोड़ दिया सिक्खों को गुरु ने–
''भंग करो इनकी जड़ शान्ति;
जागे क्रोध-मूर्ति रखकर ही
इनमें स्वाभिमान की कान्ति।''

Hindi Premi

अरि-विरुद्ध राजा न मिले थे,
गुरु-विरुद्ध मिल गये समस्त;
भाल पीटते हैं अपना ही
क्लीब—कर्महीनों के हस्त!
सात सात राजा चढ़ आये
दस सहस्र सेना के संग,
दो सहस्र सैनिक लेकर ही
दिखलाया गुरु ने रण-रंग।
बहुसंख्यक भी विपक्षियों का
सारा गर्व हो गया चूर्ण,
लड़े एक सौ से, सिक्खों में
था ऐसा साहस परिपूर्ण।
हरीचन्द राजा रखता था
अपने धनुर्बाण का दर्प,
किन्तु उसे डस गया अन्त में
गुरु-हर का खर तर शर-सर्प!
विवश सन्धि की सब राजों ने
और हुए वे गुरु के साथ,
बादशाह को कर देने से
खींच लिया उन सबने हाथ।

सय्यद बुद्धूशाह

सय्यद बुद्धूशाह नाम के
एक यवन थे गुरु के मित्र।
अन्ध न करके जिन्हें धर्म ने
दी थी दृष्टि उदार पवित्र।
उनका ही उपरोध मानकर
गुरु ने उसे नीतिमय जान,
सैनिक बना लिये थे अपने
शाही बागी बहुत पठान।

Hindi Premi

किन्तु पहाड़ी राजाओं से
जिस दिन होना था संग्राम,
उसी रात को धोखा देकर
भाग गये वे नमकहराम।
पाकर यह संवाद शीघ्र ही
लज्जा और व्यथा से त्रस्त,
आये स्वयं समर में सय्यद
लाये वे निज सैन्य समस्त।
सच तो यह है रहा इसी से
उस प्रसंग में गुरु का पक्ष,
किन्तु शोक! सय्यद का बेटा
बना वैरि-बाणों का लक्ष!
गुरु ने उन हतपुत्ररत्न को
लिया तप्त निज उर पर खींच,
दो बूँदों से उसे उसी क्षण
दिया शूर सय्यद ने सींच!
"मित्र तुम्हारा नहीं, शत्रु ने
मेरा रत्न हरा है आज,
मेरे पुत्र तुम्हारे भी हों
उनका बन्धु मरा है आज।
और क्या कहूँ, मुझे हृदय में
है केवल इतना सन्तोष–
उसके घातक रिपु के वध से
सफल हुआ मेरा रण-रोष।"
"और तसल्ली है मुझको भी
चुका पठानों वाला कर्ज;
जो कुछ हुआ खुदा की मरजी,
अदा किया खुद मैंने फर्ज।
वह मर्दों की मौत मरा है,
आप न करिए उसका रंज;
हम सब सौदा कर जावेंगे
फिर भी भरा रहेगा गंज।"
गुरु ने कहा–"आज हम दोनों
भाई हुए यहाँ एकत्र,

Hindi Premi

लो, तुम मेरी आधी पगड़ी
और प्रमाण रूप यह पत्र।"
बोले सय्यद लेकर सादर
गुरु का वह आदर अनमोल—
"खुदा करे कि मिलें यों ही सब
हिन्दू-मुसलमान जी खोल।
राम-रहीम एक हैं, खाली
जुदे जुदे हैं उसके नाम।"
हो दो जानु, देख ऊपर को
किया उन्होंने प्रणत प्रणाम।
गुरु बोले—"मैं यत्न इसी का
करता हूँ प्राणों पर खेल;
जब तक हिन्दू सबल न होंगे;
कभी न होगा सच्चा मेल।
हमको है अधिकार करें हम
पुनः प्राप्त गत-गौरव-मान,
और बनें फिर भी वैसे ही
थे जैसे हम प्रथम महान।
मुसलमान भावी-विचार कर
बनें तनिक पर-धर्मसहिष्णु,
बने रहेंगे सदा न यों ही
हिन्दू विजित और वे जिष्णु।"

युद्ध पर युद्ध

विजय हुई पर सजातियों से
लड़ना पड़ा प्रथम ही बार,
यह विचार कर गुरु के मन में
हुआ खेद का ही संचार।
फिर भी शुभ परिणाम देखकर
हुआ इधर उनको सन्तोष,
उधर, देख विद्रोह नृपों का,
भड़क उठा यवनों का रोष।

Hindi Premi

तीन नायकों के अधीन चढ़
आयी यवनों की बहु सैन्य,
और पहाड़ी भूप वहाँ भी
दीख पड़े दिखलाते दैन्य।
उन्हें बचाने का भी मानो
पड़ा स्वयं गुरु पर ही भार,
किन्तु किसी मिस भी रिपुओं का
करना था उनको संहार।
धीरज ही न दिया गुरुवर ने
दी उनको अपनी कुछ फौज;
प्रकृत-शत्रु-सम्मुख सिक्खों को
मिली आज मनमानी मौज।
पड़े बुभुक्षित पंचानन-सम
यवनों पर गुरु-सैनिक टूट,
देख काल-सा इनको उनके
गये अचानक छक्के छूट!
भागे वे, पर नव बल पाकर
लौटे, जैसे पलटे रोग,
किन्तु भागना पड़ा उन्हें फिर
था गुरु का वह सफल प्रयोग।
प्रसव-पीड़िता समर-भूमि अब
यमज जयाजय की थी सौर,
आये गुरु आनन्द दुर्ग में
वैरी लौट गये लाहौर
शाही सूबेदार दिलावर
झुँझलाया सुनकर सब हाल,
भेजी गुरु के ऊपर उसने
सुत रुस्तम युत चमू विशाल।
एक पहाड़ी नाले पर फिर
हुआ सिक्ख-यवनों का युद्ध,
जल के साथ बहा शोणित भी
पर क्या वह संगम था युद्ध?
नहीं ठहरता समय किसी की
हार-जीत होने के हेतु,

Hindi Premi

थका और माँदा दिन मानो
चला गया सोने के हेतु।
युद्ध रुका जब रात हो गयी,
तब भी तम में वारंवार,
सुन पड़ती थी झिल्लीरव-मिष
रण-शस्त्रों ही की झंकार!
यत्र तत्र बहु वह्नि-राशियाँ।
जला रहे थे दोनों पक्ष,
मरघट में मृत-वीरों की-सी
हुईं चिताएँ वे प्रत्यक्ष!
बीच बीच में अशिव शिवाएँ
कर उठती थीं हाहाकार,
और चौंक उठते थे सैनिक
मानो कुछ दुःस्वप्न निहार!
आँखें फाड़ फाड़ कर प्रहरी
देख रहे थे यथा उलूक।
बना रही थी प्रखर पवन को
उठ उनके हृदयों की हूक!
सहसा झंझा के झर्झर में,
आकर अम्बर को झट झम्प,
गरज उठे घन, अरि-अभाग्य बन--
करके धरती का हृत्कम्प।
घहरे घन मानो यवनों पर
घुर-घुर कर आ पड़े बराह,
पानी पड़ने लगा झड़ाझड़,
और हताहत उठे कराह।
बिजली चमक रही थी ऊपर
मानो कालफणी की डाढ़,
सहसा बहा ले गयी आकर
यवनों को पानी की बाढ़।
सिक्ख सुरक्षित थे पहले ही
उच्चस्थल में डेरे डाल,
आकर मानो उनके कर में
जय दे गया स्वयं ही काल।

Hindi Premi

कहते हैं 'हिमायती नाला',
तब से उस नाले को सिक्ख,
निज कृतज्ञता जना रहे हैं
जय देने वाले को सिक्ख।
वारंवार पराजित होकर
यवन हुए अत्यन्त निराश,
क्षुब्ध हुआ औरंगजेब भी
सुनकर निज गौरव का नाश।
भेजा स्वयं शाहजादे को
उसने उसी समय पंजाब,
चढ़े मुअज्जम से दल-बादल
नभ को छोड़ धरा को दाब।
ऐसी सेना के योद्धा भी
कर न सके गुरु की कुछ हानि,
मारे गये रात्रि-रण में बहु
शेष हार भागे सग्लानि।
चिन्तित हुआ मुअज्जम सब सुन
चढ़ने चला स्वयं इस बार,
पर समझाया गया—सन्त से
जायँ कहीं श्रीमन्त न हार।
वहाँ जीत कर भी अपयश है—
भिक्षुक पर इतना अभियान?
रहे शान्ति से यदि वह आगे
तो समुचित है क्षमा-प्रदान।
वार वार जीते यों गुरुवर
किन्तु पहाड़ी भूप कठोर,
जाने लगे फूट कर उनसे
क्रम से शत्रु जनों की ओर।
कर ला लाकर फिर यवनों के
वे सब होने लगे अधीन,
एक एक कर दण्डित होकर
दुर्विध हुए वहाँ भी दीन।
गुरु-गज पर चढ़ने के इच्छुक
खड्ग चलाती जिसकी सूँड़,

Hindi Premi

घेर घुमाये गये गधों पर
डाढ़ी-मूँछ और सिर मूँड़!
प्राण बचे, पर मान गया सो
गुरु पर उतरा इसका रोष,
जो बाहर कुछ कर न सकेंगे,
देंगे घरकों का ही दोष।
विवश सन्धि करके भी गुरु से
मन में थे वे उन पर क्रुद्ध,
अवसर पाते ही प्रायः सब
फिर उनसे हो गये विरुद्ध।
'हम राजा, गोविन्द भिखारी,
दिखलावे हम पर अधिकार?'
यवनों से मिल मिल कर अब वे
गुरु पर करने लगे प्रहार।
गुरु ने कहा—"अकाल पुरुष की
जैसी इच्छा, जो भवितव्य,
हम अपना कर्त्तव्य करेंगे
विधि अपसव्य रहे या सव्य।"
आठ सहस्र सैन्य जन गुरु के
किन्तु उधर थे बीस सहस्र,
तोप, तीर, तलवारों से अब
चला अहर्निशि युद्ध अजस्र।
चलतीं इधर उधर से तोपें
गढ़ पर अड़ते दिन में सिक्ख,
और रात में असियाँ चलतीं—
बढ़ कर लड़ते जिनमें सिक्ख।
बढ़ता था उत्साह सिखों का
घटते देख शत्रु दिन रात,
बनती और बिगड़ती जाती
एक साथ दोनों की बात।
छोड़ा मत्त नाग रिपुओं ने
गढ़-कपाट डाले जो तोड़;
दिया विचित्रसिंह ने उलटा
भाले से उसका सिर फोड़।

Hindi Premi

दला द्विरद ने अपना ही दल;
भागा जो पीछे चिंघाड़;
सिंह-समान दहाड़ सिक्ख भी
टूट पड़े पंजे-से झाड़।
जब तक अरि सँभलें, बहुतों को
मार गये गढ़ में वे भाग,
बिल से निकल काट वैरी को
घुसे यथा फिर बिल में नाग!

मातृ-भक्ति

सिंह-रूप भी गोरक्षक थे
गुरु गोविन्दसिंह बेजोड़;
वैरी ने गो-शपथ दिलाई
लड़ें न यदि अब वे गाढ़ छोड़।
भोली-भाली गुरु जननी को
इससे हुआ बड़ा संकोच,
यह गो-शपथ निभेगी कैसे
होने लगा उन्हें अति शोच।
गाय बनाई थी आटे की,
और गले में था वह लेख;
हँसे घृणा से वैरिजनों की
गुरु यह सारी लीला देख।
''फँसे वैरियों की बातों में
यहाँ नहीं हैं ऐसे मूढ़;
यह तो भौंडी रही, दूसरी
युक्ति निकालें वे कुछ गूढ़।
स्वकृत शपथ ही पालनीय है—
यों उनको भी है सौगन्ध—
'जो वे भारत छोड़ न जावें,
तोड़ न जावें सब सम्बन्ध।'
गो-ब्राह्मण के रक्षणार्थ ही
करता हूँ मैं यह आयास,

Hindi Premi

पर अपने कुत्सित कर्मों का
क्या उत्तर है उनके पास?
एक बार गायें आगे कर
यवन हो गये थे कृतकार्य,
वार न करके बस प्रहार ही
सह कर हार गये थे आर्य।
न तो भक्षकों से गायें ही
बचीं, न उनके रक्षक आप,
क्षुद्र पुण्य के भ्रम में यों ही
किये हाय! हमने बहु पाप।"
माँ ने कहा—"ठीक है बेटा,
वही करो जो समझो ठीक;
तुम सपूत हो, जैसी चाहो
स्वयं चलाओ अपनी लीक।
फिर भी हम अबलाएँ ठहरीं,
होता है इससे कुछ खेद;
दुर्बल हृदय काँप उठता है
जान समझ कर भी सब भेद।"
माँ की आँखों में आँसू थे,
हाय गाय की शपथ कठोर!
गुरु भी गद्‌गद हुए खेदकर
भक्ति-भाव से उनकी ओर।
"माँ, बाहर मैं लड़ न सकूँगा,
शत्रु समझते हैं यह बात,
अच्छा, चौडे ह्री में मुझ पर
कर देखें अब वे आघात।
तुम प्रसन्न हो तो मैं वह भी
कर डालूँ जो हो वीभत्स";
माँ ने उन्हें लगाकर उर से
कहा—"जियो, विजयी हो वत्स!"
गिरि से सिंह-सदृश गुरु गढ़ से
निकले परिकर-वृन्द समेत;
मिटा द्विरद-मद विपक्षियों का
फिर भी छोड़ भगे वे खेत।

Hindi Premi

चली न उनकी चाल एक भी,
बिगड़ गयी उनकी सब औज,
दी तब सरहिन्दी सूबा ने
उन्हें बहुत-सी शाही फौज!
लड़ते रहे निरन्तर गुरुवर,
अड़े शत्रु भी घेरा डाल,
चुकी खाद्य-सामग्री गढ़ की,
दीख पड़ा अब वहाँ दुकाल।
गढ़ को छोड़ अन्त में गुरुवर
निकले सुदृढ़ बनाकर व्यूह,
फटा प्रभंजन से घन घन-सा
कटा, हटा फिर शत्रु-समूह।
हारे शत्रु जीत कर भी यों
मिला मरा-सा जीता दुर्ग;
जीत सके गुरु को न सामने
पाया पीछे रीता दुर्ग।
हुए सोहली के राजा के
अतिथि, गये फिर गुरु जंबूर,
लिया वहाँ के भूपति ने भी,
दिया उन्हें आदर भरपूर।
किया ख्यातसर में जाकर फिर
गुरु ने एक बड़ा दरबार,
आये दूर दूर से जिसमें
उनके सिक्ख शूर सरदार।
एक नयी बन्दूक उठाकर
गुरु ने चाहा जीवित लक्ष,
तत्क्षण बढ़ आये दो दो जन
करके अपना वक्ष समक्ष।
गुरु ने कहा—"धन्य तुम दोनों,
धन्य तुम्हारी माँएँ धन्य;
जब तक शत्रु शेष हैं अपने
तब तक कौन लक्ष्य है अन्य?"
सूचित किया उन्होंने सबको—
उद्यत हों आगामि-रणार्थ;

Hindi Premi

प्रस्तुत थे गुरु की आज्ञा से
और अधिक क्या, वे मरणार्थ।
आये फिर आनन्दधाम में
वे कुछ दिन यों बाहर घूम;
पुनर्जन्म-सा हुआ दुर्ग का
होने लगी वहाँ पर धूम।
भेंट लिए आते थे कुछ जन,
कलमौठे का नृप अविनीत,
बना लुटेरा उन्हें लूटकर,
कुपित हुए गुरुपुत्र अजीत।
बालक थे, चढ़ गये तदपि वे,
जैसे हो चढ़ता मार्तण्ड,
उसे सहायक सहित उन्होंने
दिया शीघ्र न्यायोचित दण्ड।
डरने लगे पहाड़ी राजा
गुरु को पुनः प्रतिष्ठित देख,
जा यवनों के द्वार पुकारे
हाय! अहित में ही हित लेख।
गाये वहाँ चाटुकारों ने
अपनी राजभक्ति के गीत,
धार्मिकता कहते हैं बहुधा
आत्म भीरुता को भयभीत।
गुरु की वार वार जय सुनकर
लाल हो गया आलमगीर;
हुक्म हुआ—''पकड़ो बागी को
देखूँगा मैं उसके तीर।''
किन्तु पकड़ना खेल नहीं था
ज्वालशिखी थे गुरु गोविन्द,
तदपि पहाड़ी हिंसक लेकर
चढ़ आया सारा सरहिन्द।
फागुन, सत्रह सौ उनसठ में
जली नयी होली की आग,
बढ़ बढ़ कर खेली वीरों ने
शस्त्रों से शोणित की फाग।

Hindi Premi

चिर रण-शिक्षित यवन उधर थे
किन्तु इधर थे दीक्षित सिक्ख,
हुए पूर्व की भाँति आज भी
समरोत्तीर्ण परीक्षित सिक्ख।
तोपों के उस धुवाँधार में,
शस्त्र चमकते थे इस भाँति,
विद्युद्दाम दमक उठते हैं
घिरते मेघों में जिस भाँति।
लोहे के पानी की वर्षा,
किन्तु रुधिर की ही थी कीच,
धर-धर, मार-मार की ध्वनि ही
सुन पड़ती थी रण के बीच।
ऐसे में भी देख एक ही
रूप धन्य वह सिक्ख सुधीर,
शत्रु-मित्र सब हताहतों को
पिला रहा था भर भर नीर।
गुरु के दुर्गादत्त खंग ने
दी अनेक अरि-पशुबलि आज,
रणचण्डी फिर उनके ऊपर
रखती क्यों न जीत का ताज।
गुरु की विजय ध्वनि में मानों
अल्ला हो अकबर था मग्न;
न थे यवन ही उसके बन्दे,
भागे वे करके क्रम भग्न।
'वाह गुरू की फतह' हुई फिर
बजने लगे ढोल, ढप, ढाँक;
लौटे सिक्ख यथा कृषिरक्षक
महिष वराहादिक पशु हाँक।
पुनः पचास सहस्र सैन्य सह
चढ़े शत्रु दिखला कर ठाठ,
अबकी बार पढ़ाया गुरु ने
उनको एक नया ही पाठ।
सेना थोड़ी थी, उसमें भी
कुछ को कुछ भागों में बाँट,

Hindi Premi

पुत्र अजीतसिंह आदिक युत
भेजा अलग उन्होंने छाँट।
टूट पड़ीं वे सभी टोलियाँ
रिपु-सेना पर–जब थी रात,
उधर निकल गढ़ से गुरु ने भी
मचा दिया भीषण संघात।
दिन भर के मारे-धारे थे
पहले से ही शत्रु समस्त,
अब आकस्मिक इस विपत्ति से
ग्रस्त हुए वे अस्त-व्यस्त।
खो बैठे व्याकुल होकर वे
शत्रु-मित्र की भी पहचान,
आपस में लड़ मरे बहुत-से
सभी ओर सिख ही सिख जान।
'वाह गुरू की फतह' हुई फिर
गया दूर दिल्ली तक नाद।
सब सुनकर औरंगजेब को
हो आया मानो उन्माद।
क्या लाहौर और वह दिल्ली,–
क्या सरहिन्द और कश्मीर,
एक साधु पर सारी शाही
उमड़ पड़ी इस बार अधीर।
जो कुछ हुआ जानते थे गुरु
फिर भी उनका था यह लक्ष,
जीने से बढ़कर है मरना
लेते हुए धर्म का पक्ष!

गुरुपत्नी

कहा उन्होंने प्रिय पत्नी से
"प्रस्तुत हो, अब वही प्रसंग,
क्या जाने कब कहाँ भेजना
पड़े तुम्हें बच्चों के संग।"

Hindi Premi

"पालनीय हैं बच्चे-बूढ़े,
मुझसे क्या कहते हो नाथ!
फूल-सेज पर साथ रही सो
काँटों में न रहेगी साथ?"
क्षत्राणी के अरुण वदन पर
आया एक अलौकिक तेज,
पति के संग चिता भी बहुधा
बनती है सतियों की सेज।
"करो न मेरे लिए चित्त में
तुम कुछ चिन्ता या संकोच;
निज कर्तव्य समझती हूँ मैं,
रहे तुम्हें औरों का सोच।
कुछ न कर सकें हम अबलाएँ,
मर तो सकती हैं रख धर्म्म;
किसका माथा नीचा होगा
देख हमारा ऐसा कर्म्म?
मैं संकट में साथ छोड़ दूँ,
नाथ, यही क्या मुझको न्याय्य?
भार सिद्ध हूँगी न कभी मैं,
दूँगी यथाशक्ति सहाय्य।
शस्त्र चलाकर हर न सकूँगी
यदि मैं शत्रु जनों के प्राण,
तो क्या कर न सकूँगी अपने
हताहतों का भी कुछ त्राण?
एक घूँट जल भी अवसर पर
पहुँचा सकें कहीं ये हाथ,
तो इतने से ही कृतार्थ
हूँगी नाथ, तुम्हारे साथ।
होता नहीं विपत्ति काल में
मर्यादा का बहुत विचार,
सिक्ख मात्र मेरे बच्चे हैं,
हम सब हैं अभिन्न परिवार।
फिर भी यही चाहती हूँ मैं,
रहूँ संग सबसे अज्ञात,

Hindi Premi

लोगों की चर्चा बनती है
बाहर जाकर घर की बात।
स्वामी, तुमने बना दिया है
सिंह उन्हें भी जो थे मेष,
कहो, एक नारी को तुम क्या
दे न सकोगे नर का वेष?
कसा तुम्हारा कटि-पट बहुधा,
बाँधा मैंने तुम्हें निषंग।
इसके बदले में नर-भूषा
पावें तुमसे मेरे अंग।''
''धन्य, मिटा दी तुमने मेरी
बहुत दिनों के श्रम की श्रान्ति।
मिली आज सुख-शान्ति, नहीं तो
रही सदैव कलह की क्रान्ति।
प्रकट किया अवसर पर तुमने
निज यथार्थ अर्द्धांगी भाव,
फिर भी क्या आवश्यक है जो
करो आज ऐसा प्रस्ताव?
नारी तो नारी रहकर ही
अच्छी लगती है सुकुमारि!
रुधिर-रंग में न हो कदाचित्
इतना मधुर तुम्हारा वारि।
जो हो, इसी समय हाँ ना का
कर सकता मैं नहीं विवेक;
सम्प्रति नहीं सोचने देता
मुझको भावों का उद्रेक।''
''किन्तु तुम्हारी अर्द्धांगी ने
सोच लिया निज निश्चित सार,
मेरी रक्षा के बदले तुम
करो विपक्ष-विनाश विचार।''
कर सकता है एक वीर जो
करते रहे धीर गोविन्द;
चम्पक सम आनन्द दुर्ग को
छू न सके बहु वैरि-मिलिन्द।

Hindi Premi

गुरु की विकट मार ने उनको
बढ़ने दिया न गढ़ के पास,
फिर भी वे उस सिंह-शैल को
घेरे रहे सजग सायास।
अधिक अधिक हैं, अल्प-अल्प हैं,
जूझ रहे थे दोनों पक्ष,
सिक्ख स्वल्प थे, हार बिना भी
हार देखने लगे समक्ष।
इतने पर भी हुई दुर्ग की
भोजन - सामग्री निःशेष;
भूखे भक्ति नहीं होती है,
युग-सा कटने लगा निमेष।
उधर विपक्षी भी अस्थिर थे
फिर अपना न मान बह जाय;
शान बचे शाहंशाही की
जैसे रहे बान रह जाय।
भेजा गढ़ में दूत उन्होंने
बोला वह—"अब भी है योग,
अब भी दुर्ग छोड़ जावें गुरु,
छेड़ेंगे न उन्हें हम लोग।
बादशाह से वैर! नहीं है
इसमें गुरु-गति-मति का गन्ध,
अच्छा हो कि सन्धि कर लें वे
कर के जाति-बन्धु-सम्बन्ध।"
गुरु के पुत्र अजीतसिंह ने
कहा गरज कर खड्ग निकाल,—
"बस, अब जीभ सँभाल नहीं, तो
कण्ठ काट देगा करवाल।
तेरा बादशाह होगा वह
मेरा धर्मद्वेषी दस्यु,
स्वयं असुर का असुर रहेगा
होकर भी सुर-वेषी दस्यु।
मरने के डर से यवनों से
होगी नहीं हमारी सन्धि,

Hindi Premi

होती है विग्रहगर्भा ही
तुम जैसों की सारी सन्धि।
हम जीने के लिए करेंगे
सम्भव या समुचित सब यत्न,
पर मरने के डर से हमको
डरा सकेंगे नहीं सपत्न।
जूझ रहे हैं धर्म-हेतु हम
चाहे जो कुछ हो परिणाम;
अपनी हार-जीत तुम जानों
कर्म हमारे हैं निष्काम।
देख रहे हैं जीवन-कौतुक
हम हैं परमपुरुष के दास;
जो कुछ यहाँ हाट में लेंगे
रख देंगे सब प्रभु के पास।''

अधीर सिक्ख

लौट गया चर, इधर सिखों का
लोट गया धीरज भी लेट;
कायर कर देता है बहुधा
वीरों को भी पामर पेट।
गुरु से कहने लगे बहुत जन
''चलिए निकल चलें गढ़ छोड़,
शत्रु न छेड़ेंगे कहते हैं,
जूझेंगे फिर हम दल जोड़।''
गुरु ने कहा—''भाइयो, रोको,
पत्ते-सा न हृदय हिल जाय;
सम्भव है रक्षा पाने का
कुछ उपाय अब भी मिल जाय।
वैरी की बातों में आये
और गये—होगा बस नाश;
तुम्हें निकल जाने देंगे वे
जो ताने बैठे हैं पाश?

Hindi Premi

अच्छा चलने के पहले तुम
भिजवा देखो कुछ सामान;
काठ - कवाड़, लीतड़े - लत्ते
रखना उसमें यही प्रधान।''
भिजवाया लदवा कर बाहर
गुरु ने ऐसा ही कुछ माल;
देखा गया—शत्रु उस पर भी
बढ़कर टूट पड़े तत्काल।
यह सब देख निराश भाव से
बोले सिक्ख वचन यों दीन—
''यवन नहीं छेड़ेंगे हमको,
यदि हम सब हो जायँ अधीन।''
''यवनों की अधीनता?'' गुरुवर
गरज उठे—''तुमको धिक्कार;
ऐसे जीने से तो मुझको
मर जाना अच्छा शत बार।
यवनों से निज सन्धि न होगी
फहरेगा बस विग्रह-केतु,
क्योंकि हमारे लिए म्लेच्छ वे,
हम काफिर हैं उनके हेतु।
यवनों की अधीनता? कैसे
निकली मुँह से ऐसी बात?
इसीलिए क्या सिक्ख-संघ का
उनके संग हुआ संघात?
हां! तुम तपोभ्रष्ट होते हो,
जाते हो यों मुझको छोड़;
तो लिख दो—हम सिक्ख नहीं हैं,
और चले जाओ मुँह मोड़।''
थे ही कितने? कुछ सौ ही थे,
खिसक गये धीरे से सिक्ख;
छँटकर पैंतालीस रहे बस
कटे छँटे हीरे-से सिक्ख।
''तुम्हीं बहुत हो'' बोले गुरुवर—
''व्यर्थ न था मेरा आयास,

Hindi Premi

आज पाँच प्यारे वे मेरे
तुम्हें मिलाकर हुए पचास!''
फिर भी कुछ साहाय्य कहीं से
पा न सके वे सिख-सिरमौर;
आ न सका बाहर से कोई
चले गये घर से ही और।

बलिदान

अब क्या करते, एक रात को
रच कर सूची-व्यूह कठोर,
छोड़ चले आनन्द-धाम को
वे चमकौर दुर्ग की ओर।
जब तक टूटें उनके ऊपर
पाकर इधर शत्रुगण गन्ध,
किया स्त्रियों-बच्चों का गुरु ने
तब तक जो कर सके प्रबन्ध।
भीतर आर्द्र, किन्तु बाहर वे
थे घन-सम गम्भीर नितान्त,
करने लगे बिदा उन सबको
करके स्निग्ध गिरा से शान्त।
अधिक कथन का समय नहीं था
गुरु ने कही एक ही बात—
''वीर वत्स तुम वही रहो बस,
सहो भले ही सौ उत्पात।''
कर धर अग्रज जोरावर का,
जिसका वय था बस नौ वर्ष,
गुरु का सात बरस का बच्चा
बोला फतहसिंह सविमर्ष—
''पिता, हटाते हो क्यों हमको
क्या हम बाँधे नहीं कृपाण?
चला सकेंगे क्या न उसे हम?
तुम्ही चलाओगे निज बाण?''

Hindi Premi

"इससे भी गुरु कार्य हेतु मैं,
भेज रहा हूँ तुमको तात,
है मुझ गुरु की फतह तुम्हीं में
जाओ, यश पाओ अवदात।"
कह सकता था हाय! कौन जन
कहाँ मिटेगा यह विच्छेद?
ओस नहीं, ऊपर से आँसू
बरसाता था स्वर्ग सखेद।
अन्धकार के सन्नाटे में
था सन-सन कर रहा समीर;
मानो पीछे छोड़ मौत को
बढ़े जा रहे थे सब वीर।
आगे आ आकर अरि-भय की
आकृतियाँ देती थीं शाप,
किन्तु चीरते हुए उन्हें वे
चले जा रहे थे चुपचाप।
टुकुर-टुकुर टकटकी लगाये
देख रहे थे तारे दीन;
वीरों की छाया भी मानो
उन्हें छोड़कर हुई विलीन।
सहसा शोर हुआ पीछे से,
आगे ही था गढ़ चमकौर;
बोला वीर अजीतसिंह तब—
"पीठ दिखना है अब और।
हम वीरों के व्रतधारी हैं,
झेलेंगे छाती पर घाव;
पूजेंगे हृदयस्थित हरि को
उन्हीं पंकजों से निज भाव।"
लौट पड़ा रणधीर झूम कर,
लौट पड़ा सब शूर-समाज;
आत्मसमर्पण भावी गुरु को
किया स्वयं गुरु ने भी आज!
क्षण भर में यवन आ गये
दो सेनापतियों के साथ;

Hindi Premi

अँसिसंयुत उल्काएँ भी थे
लिये हुए बहुतों के हाथ!
रसनाएँ लपलपा उठा निज
बहुसंख्यक वह भीषण काल,
जिनके साथ साथ डाढ़ें भी
चमक रही थीं कठिन कराल!
गरजे गुरु के शिष्य सिंह सम—
"एक अकाल, एक ओंकार!"
सहम गये सब वैरी सहसा,
कर न सके वे बढ़कर वार।
पाँच पंक्तियों में दस दस जन
करने लगे यथाक्रम युद्ध,
गिर गिरकर दस से पचास तक
वैरी हुए और भी क्रुद्ध।
आन बान पर रक्तदान कर
जीवन वार रहे थे सिक्ख;
आह न करके "वाह गुरू की
फतह" पुकार रहे थे सिक्ख।
बढ़ते आते थे हट कर भी
वैरी सहते हुए प्रहार,
गढ़ की ओर सिक्ख हटकर भी
करते थे बढ़ बढ़ कर वार।
कहा अजीतसिंह ने गुरु से—
"दूर नहीं अब गढ़ का कोट;
किन्तु कदाचित् सब जूझेंगे,
कोई पा न सकेगा ओट।
तात, तुम्हारा लघु जन हूँ मैं,
करो आज तुम अपना त्राण;
पुनः प्रभावित होंगे तुमसे
मेरे ऐसे अगणित प्राण।"
मेरा और पुत्र! तुम सबका
रक्षक है बस एक अकाल,
तरो शत्रु-शोणित में मेरे
मानस के तुम मंजु मराल।

Hindi Premi

छूकर चरण पिता के तत्क्षण
आगे झपटा वह विक्रान्त,
सिक्खों का बुझता दीपक-सा
दीप्त हो उठा भीषण भ्रान्त।
अरि-उडुगण में धूमकेतु-सा
घूम रहा था वह विख्यात,
क्या जानें कै तारे टूटे
उसके असि-भय से उस रात।
एकाकी, अभिमन्यु-सदृश, बहु–
वैरिजनों से लेकर वैर,
ऊँची गति को प्राप्त हुआ वह
रखकर उनके सिर पर पैर।
उसका अनुज जुझारसिंह था,
जिसका वय था चौदह साल,
चार बरस छोटा अग्रज से
बोला गुरु से वह गुरुबाल–
''आज्ञा हो, निर्भय अग्रज का
करूँ अनुसरण मैं भी आज,
रहूँ यथार्थ तनुज आपका,
रक्खूँ अनुज नाम की लाज!''
''वरो वत्स, तुम कीर्तिवधू को
बाँधे हुए मान का मौर;
निज गुरुकुल का नाम-निकेतन
एक खण्ड ऊँचा हो और।''
डाली गुरु ने दृष्टि पार्श्व में
एक युवक की ओर सगर्व,
था जो जड़-पाषाण मूर्त्ति-सा–
खोकर चित्त-चेतना सर्व।
थाम लिया झट उसे उन्होंने
गिर न जाय निश्चेष्ट शरीर,
इधर एक जन से जुझार ने
माँगा पीने को कुछ नीर।
गुरु ने कहा–''शत्रु-शोणित से
बढ़कर कौन नीर है अन्य?

Hindi Premi

असि-रसना से स्वाद उसी का
पाओ, हो जाओ चिर धन्य!"
गया जुझारसिंह झोंके-सा,
गिरे अनेक शत्रु ज्यों शाल,
इधर युवक भी सँभल नीर ले
चला तीर जैसा तत्काल।
रोक न सके रोककर भी गुरु
विफल हुआ बल-वीर्य अमोघ,
उमड़ बाँध के ऊपर से ज्यों
निकल जाय झट जल का ओघ।
फिर भी वह कह गया कि "स्वामी,
लो निज रक्षा का पथ शोध,
मानो तुम अपने अजीत का
और स्वयं मेरा अनुरोध।"
यद्यपि आहत हुआ उधर था,
अब तब था जुझार का गात्र,
तदपि युवक ने जीवन रहते
लगा दिया मुँह से जल-पात्र।
"न जा तृषार्त, तृप्त होकर जा
ओ अपनी माई के लाल!"
"ऐं तुम कहाँ यहाँ हे माता!"
चौंक हुआ चिर नीरव बाल!
इतने ही में पुरुष-वेषिनी
गुरु-पत्नी पर हुआ प्रहार,
और प्रहारक नाहरखाँ था—
शाही-सेना का सरदार।
लगा उसी क्षण उसके सिर में
आकर गुरु के कर का बाण,
गुरु-पत्नी के रहते रहते
उस घातक ने किया प्रयाण।
उसका साथी सेनापति भी
हुआ हताहत उसके बाद,
छाया क्षुब्ध शत्रुसेना में
एक साथ भय और विषाद।

Hindi Premi

चुने शत्रुओं को चुन चुनकर
गिरा रहे थे गुरु-शर चण्ड,
उगल रहा था काला नल-कण
कृष्ट कुण्डलाकृति कोदण्ड!
कुछ कर धर न सके अरि उनका
हुए स्वयं मर मर कर मन्द,
गुरु आ गये अन्त में गढ़ में
और हुए झट फाटक बन्द।
उन पचास साथी शूरों में
शेष बचे थे केवल पाँच,
पैंतालीस होम अपने को
बचा गये थे उनकी आँच।
अपनी नहीं पुत्र-पत्नी के
अनुनय की रक्षा के हेतु
रिपु-समुद्र तर सके आज गुरु
ज्यों त्यों कर रच कर शर-सेतु।

आत्मरक्षा

किन्तु सुरक्षित न थे वहाँ भी,
करके पृष्ठ भित्ति में छेद,
उसी रात को निकल गये वे,–
मानो पक्षी पिंजर-भेद!
रह कर दिन भर एक गहन में,
चल कर फिर वे रातों रात,
मिले गनीखाँ और नबीखाँ,–
दो पठान धनियों से प्रात।
दोनों घोड़ों के व्यापारी,
गुरु के परिचित थे प्राचीन,
विस्मित हुए देखकर सहसा
वे इनका कुछ वेष मलीन।
आश्रय दिया उन्होंने इनको,
किया उचित स्वागत-सत्कार,

Hindi Premi

कहने लगे अन्त में दोनों
हर्ष प्रकट कर वारंवार—
"हम तो रोजगार करते हैं
मिला आप जैसा यह माल,
बादशाह के हाथ बेचकर
हो जावेंगे आज निहाल!"
गुरु ने कहा—"भला बेचो तो?
लाभ रहेगा निस्सन्देह;
तुम ऐसे होते तो मुझको
न था तुम्हारा ही यह गेह।
घोड़ों का सौदा करते हो
मुझ ऐसे पुरुषों के साथ,
पर तुम बेच नहीं सकते हो
पुरुषों को पशुपन के हाथ।
मैं कुछ पुरुष-परीक्षा का भी
करता रहता हूँ अभ्यास,
मुझे कभी धोखा देगा तो
देगा मेरा ही विश्वास!
आया नहीं यहाँ मैं यों ही
आँख बन्द करके या झीम;
हिन्दू-मुसलमान हम दो हैं,
किन्तु एक है राम-रहीम।
यवनों का हिन्दू-विरोध ही
मुझे किये है यवन-विरुद्ध;
और नहीं तो मनुज मात्र में
रखता हूँ मैं समता शुद्ध।
हिन्दू-गुरु हूँ मैं पहले ही
हूँगा आज तुम्हारा पीर;
मुझे मालवे पहुँचाने की
करो यही अब तुम तदवीर।"
सहज साधु थे, यवन सन्त बन
बिखरा कर सिर के सब बाल,
छिपें घनों में भानु-तुल्य गुरु,
बचे वैरियों से उस काल।

Hindi Premi

बच्चों की हत्या

किन्तु हाय! उनके वे बच्चे
उनकी बूढ़ी माँ के साथ,
शवर-जाल में सिंही-शिशु सम—
पड़े काल रिपुओं के हाथ!
कहते हैं, गुरु का द्विजजन्मा
गंगाराम नाम का भृत्य,
यवनों से मिल गया लोभ-वश,
किया उसी ने यह दुष्कृत्य।
होते हैं ब्राह्मण कुल में भी
रावण-से राक्षस बहु-वन्य
और विभीषण-तुल्य राम के
भक्त राक्षसों में भी धन्य!
ऊँचों में भी नीच मिलें तो
ऊँचों का यश हो क्यों मन्द?
गुरुओं के वैरी थे बहुधा
स्वयं उन्हीं के भाई-वन्द।
सरहिन्दी सूबा के सम्मुख
ले जाये जाने की बेर,
बच्चों से बूढ़ी दादी यों
बोली,—उन पर कृश कर फेर—
"हे मेरे बेटे के बेटो,
मेरे दुगुने हर्ष - विषाद!
मरे तुम्हारे दादा कैसे,
तुम्हें न भूले इसकी याद।
आज बहुत करके तुमको भी
अदय यवन डालेंगे मार,
किन्तु वही करना कि कहें सब
'सिर दे डाला, दिया न सार।'
वत्स, न भूले तुमको अपने
पूज्य पिता की अन्तिम बात—
'वीर वत्स तुम वही रहो बस,
सहो भले ही सौ उत्पात।'

Hindi Premi

जाओ, उधर अमर हो तुम, लो—
हिन्दू के घर घर अवतार,
मरूँ इधर मैं रोती-गाती—
'सिर दे डाला, दिया न सार।'—"
"दादीजी निश्चिन्त रहो तुम,
गाओ और मनाओ मोद,
मृत्यु एक निद्रा है अपनी,
सेज अकाल पुरुष की गोद।
नित्य खेलते थे लड़कों में
हम मरने-जीने के खेल,
अनायास क्रीड़ापूर्वक ही
लेंगे उसे यहाँ भी झेल।"
भरा हुआ था बड़े ठाठ का
सूबा का शाही दरबार,
खड़े हुए थे देवदूत-से
गुरु के दोनों दिव्य कुमार।
निर्निमेष रह गये देखते
क्षण-भर सब विस्मय के साथ,
फेरे बड़ी दाढ़ियों पर फिर
काजी-मुल्लाओं ने हाथ।
बोला तब सूबा बजीर खाँ,—
"क्या अच्छे लड़के हैं वाह!
इनके साथ खेल उठने की
हो उठती है जी में चाह।
बच्चो, मुसलमान होने को
हो जाओ अब तुम तैयार;
तुम्हें मारने के बदले हम
प्यार करेंगे सौ सौ बार।"
"तो क्या फिर हम नहीं मरेंगे?
अमर रहोगे क्या तुम आप?
किन्तु अमर हों तो भी हम तो
नहीं करेंगे ऐसा पाप।
बूढ़े भी मर मिटे हमारे,
फिर हम बच्चों की क्या बात?

Hindi Premi

वीर-वत्स हम, वही रहेंगे,
सहें भले ही सौ उत्पात।''
''अरे, तुम्हारे बूढ़ों ने तो
कर ली थी दुनिया की सैर,
तुम नादान, मौत के घर में
रखने जाते हो क्यों पैर?''
''रक्खो तुम दानापन अपना,
रहने दो हमको नादान,
बन सकते हैं बड़ी खुशी से
धर्म-मृत्यु के हम मेहमान।
देखी दुनिया दंग तुम्हारी,
देख यह जगतीतल तंग,
रंग बदल कर भी यह गिरगिट
नहीं बदलता अपने ढंग!''
बोला फतहसिंह भाई से—
''भैया यहाँ नयी क्या बात?
वही सूर्य्य-शशि, वे ही तारे,
वही रात-दिन सायं-प्रात।
वे ही फूल और पत्ते हैं—
खिले नहीं कि झड़े तत्काल।
वही भूमि, जिस पर ये मानव
डाले बैठे हैं पशु-जाल,
धर्म हमारे साथ हमारा,
फिर क्या हमें चाहिए तात?
वीर-वत्स हम, वही रहेंगे,
सहें भले ही सौ उत्पात।''
''तुम बच्चे हो, अभी वहाँ के
मजे नहीं तुमको मालूम;
मरना कभी नहीं चाहोगे,
जीना चाहोगे झुक झूम।''
''मजे मुबारक रहें तुम्हें वे,
हमें नहीं कुछ उनसे काम;
जो रस चख कर डरें मौत से
करें क्यों न हम उसे प्रणाम।''

Hindi Premi

"आखिर मुसलमान होने से
करते हो तुम क्यों इनकार?"
"और तुम्हीं क्यों हठ करते हो
कि हम भ्रष्ट हों किसी प्रकार?"
मुसकाकर बोला वजीरखाँ–
"मुसलमान होने के बाद,
शादी करने को जन्नत की
हूरें तुम्हें करेंगी याद।"
"वे हूरें होंगी कि–चुड़ैलें,
इसे जानता है भगवान,
धर्म छोड़कर हमें स्वर्ग भी
जान पड़ेगा नरक-समान।"
"मुसलमान होने से तुमको
इज्जत देंगे शाहंशाह।"
"किन्तु धर्म्म जो धिक्कारेगा
कौन सहेगा उसका दाह?"
"जीकर कुछ कर तो सकते हो,
अरे, देख सुन कर हँस बोल;
मर कर क्या जाने, क्या होगा,
पड़ जाओगे अभी अडोल।"
"किन्तु चाहते हैं कब मरना?
जीने के इच्छुक हम लोग;
तुम्हीं कर रहे हो हठ करके
हमें मारने का उद्योग।
उस जीने से जिसमें हमको
जी में हुआ करेगी ग्लानि,
इस सन्तोष पूर्ण मरने में
तुम्हीं कहो–है लाभ कि हानि?"
"घोड़ों पर चढ़कर घूमोगे,
राज करोगे बने नवाब;
शूली पर चढ़कर क्या लोगे?
दोगे इसका कौन जवाब?"
"घोड़े नहीं गधे होंगे वे,
राज्य बनेंगे रंक-निवास;

Hindi Premi

हम, जो यों ही राज मान्य हैं,
क्यों हों विधर्मियों के दास?
गुरु गोविन्दसिंह के बालक,
यही हमारा पद विख्यात;
वीर-वत्स हम, वही रहेंगे,
सहें भले ही सौ उत्पात।
शूली? उसका डर न दिखाओ,
सुनी कथाएँ हमने बीस,
दिये अनेक महापुरुषों ने
सार न देकर अपने सीस।
सत्य-दान करके सन्तों ने
पाई है शूली बहु वार,
दे सकता था उन्हें और क्या
यह मिथ्या मानी संसार?
तुम्हीं कहो, कैसे छोड़ें हम
परम्परागत निज संस्कार?
स्वयं हमारे दादाजी ने
सिर दे डाला दिया न सार।''
''बच्चो, मरना खेल नहीं है,
करो न तुम ऐसी हठ होड़।''
''तब भी हम तुम सभी मरेंगे,
है जीने-मरने का जोड़।''
''तो फिर मरो'' कहा सूबा ने,
बोल उठे कितने ही लोग–
''इन्हें कभी बचने न दीजिए
मिटें अभी आगे के रोग।''
बोला फिर नवाब बच्चों से–
''सुन लो और समझ लो साफ,
मैं कर भी दूँ पर न करेंगे
काजी-मुल्ला तुमको माफ।''
''खोलें बड़ी खुशी से हम पर
वे सब अपने लाल कुरान,
किन्तु हमारा दोष नहीं कुछ,
इसका साक्षी है भगवान।

Hindi Premi

मारे जावें यहाँ भले ही,
नहीं करेंगे हम अपघात;
वीर-वत्स हम, वही रहेंगे,
सहें क्यों न सौ सौ उत्पात।''
''तो जो कुछ कहना हो, कह लो,
कर लो तुम अपनों की याद।''
''क्षमा करे वह हरि हम सबके
अनजाने के सभी प्रमाद।''
''सुनो, हमारे नबी, खुदा से
तुम्हें बख्शवा देंगे हाल।''
''तब क्या उनके बल पर ही तुम
करते हो ये कर्म कराल?
अग्रवर्तियों के अनुयायी
करें न उनके पीछे भूल,
मुक्ति दिला लावेंगे स्वकर्म ही,
नहीं किसी के नबी-रसूल।''
गरज उठे सब काजी-मुल्ला—
''ओ पाजी, काफिर कम्बख्त!''
काँप उठा था मानो उनके
शाही मजहब का ही तख्त!
फतहसिंह ने कहा—''भले ही
छोड़ो तुम वाणी के बाण;
धोखे में छिन गये प्रथम ही
हम दोनों के यहाँ कृपाण।
खरी बात रूखी होती है,
किन्तु रहे तुमको यह ज्ञात—
वीर-वत्स हम, वही रहेंगे,
सहें क्यों न सौ सौ उत्पात।''
कुछ सहृदय धीरे से बोले—
''क्या अच्छे बच्चे थे, वाह!
कच्चे होने पर भी कितने
पक्के थे, सच्चे थे, वाह!''
''बच्चे मगर साँप के बच्चे''
गरजे काजी-मुल्ला घोर—

Hindi Premi

"किये जायँ ये पक्के काफिर
जीते जी दोनों दरगोर।
मिट्टी नहीं, ईंट-चूने से
चिनवा दिये ज़ायँ ये ढीठ,
पहचानें कुछ तो मरने को
ये क्या, इनके बाप बसीठ।"
"तुम तो मरने को कहते हो,
डरते होगे उससे आप,
मरना क्या, जीने को भी कुछ
गिनते नहीं हमारे बाप!"
जोरावर ने कहा फतह से
"भाई घबराना मत आज,
जाति, धर्म, कुल और देश की
रखनी होगी तुमको लाज।"
"भैया, मैं क्यों घबराऊँगा?
मुझ पर गुरु-वाणी की छाँह;—
'सिर देकर भी नहीं छोड़िए,
धर्म और वह पकड़ी बाँह।'
वाह! गुरू की फतह—मुझी में,
शत्रु जनों के सिर पर लात;
वीर-वत्स हम, वही रहेंगे,
सहें भले ही सौ उत्पात।"
अचल खड़े थे दोनों बच्चे,
बने आप निज विजयस्तम्भ,
चारों ओर अन्त में उनके
हुई चिनाई ही आरम्भ।
निर्दय शत्रु निहार रहे थे,—
थे निष्कम्प उभय कुल-दीप;
सब प्रस्ताव-पतंग खलों के
दग्ध हुए, जो गये समीप!
जब पैरों तक हुई जुड़ाई
कहने लगा नवाब नृशंस—
"अब भी इस पिंजड़े के बाहर
आ सकते हो तुम दो हंस।"

Hindi Premi

"हमें बन्द करके भी इसमें
पा न सकेगा तू ये प्राण;
पावेंगे युग हंस इसी क्षण
हरि के पद-पद्मों में त्राण।"
"अरे कमर तक चिने गये हो,
बोलो, अब भी है मंजूर?"
"धन्यवाद! अपनी समाधि यह
देख रहे हैं हम भी घूर।"
"और देखता हूँ भैया मैं—
पागल सिक्खों का समुदाय।
जो इन हतभाग्यों की दारुण
दुर्गति बना रहा है हाय!"
काँप गया सुनकर वजीरखाँ,
बोला फिर भी सँभल-सँभाल—
"अब भी मुसलमान हो—बोलो?
गला बन्द होता है हाल।"
कहा कुपित हो जोरावर ने—
"मुसलमान हों हम किस हेतु?
क्या निज जैसे निर्दोषों को
जीवित चुना करें, इस हेतु?
धिक् अधर्मियो, यही भला है
कि वह गला हो जावे बन्द,
तुम जैसे हत्यारों से जो
बोला, होकर भी स्वच्छन्द।"
आँख बन्द कर हुए विमुख-से
उन नीचों से वे निष्पाप,
माता-पिता और उस प्रभु का
चिन्तन करते थे चुपचाप।
जीते जी चुन दिये गये यों
वे दोनों माई के लाल,
गाड़ धरें ज्यों चोर चुराकर
किसी धनी के मोती-माल!
चिर नीरवता! तदपि वहाँ पर
सुन-सा पड़ता रात विरात—

Hindi Premi

"वीर-वत्स हम, वही रहेंगे,
सहें भले ही सौ उत्पात!"
बाहर जाते शिशु को धरने
जाय यथा माता पुचकार,
बूढ़ी दादी भी बच्चों के
पीछे छोड़ गयी संसार।

एकाकी

गुरु गोविन्दसिंह सब सुनकर
रहे अचल-से एक निमेष,
अनुभव करने की भी मानो
शक्ति न थी उनमें अवशेष।
कुटुम्बियों के बिना अकेले,
सहने लगे आज वे शोक,
प्रातःकाल बिना तारों का
ओषधीष ज्यों इन्दु अरोक।
क्षोभ-शोक दोनों के मारे
हाल सिखों का था बेहाल,
आँधी, पानी में होते हैं
यथा अचल भी चंचल शाल।
उच्चाशय गुरु हुए न विचलित
पाकर भी बाधा विकराल,
घनाच्छन्न होने पर भी रवि
जाता है अपनी ही चाल।
"जड़ से उखड़ा समझो अब यों
उद्धत यवन-राज्य का झाड़,"
कहते हुए उन्होंने सहसा
वहीं एक कुश लिया उखाड़।
"खोकर भी सर्वस्व आज मैं,
हुआ अधिकतर आदरणीय,
होता है लघु पवन आप ही
उच्च, स्वच्छता से वरणीय।

Hindi Premi

मर कर भी आदर्श रूप में,
अमर हुए मेरे शिशु बाल;
बीज यथा मिट्टी में मिलकर
उपजाते हैं सुफल रसाल!
जिस कुल, जाति, देश के बच्चे
दे सकते हैं यों बलिदान,
उसका वर्त्तमान कुछ भी हो,
पर भविष्य है महा महान।
गुरुकुल वार चला अपने को
जाति-धर्म के ऊपर आज;
समझे स्वयं ग्रन्थ साहब को
अब अपना गुरु सिक्ख समाज।''
गुरु ने स्वयं ग्रन्थ साहब का
फिर सम्पादन किया सशुद्धि,
दिखलाई सब ओर उन्होंने
अपनी विमल विलक्षण बुद्धि
रामराय ने गुरु-वाणी का
भय से पाठ किया था अन्य,
गुरुगोविन्द वही कर निर्भय
बने स्वयं संशोधक धन्य!
जो था ''नीले कपड़े पहने,
तुर्क पठानी अमल भया,''
हुआ कि—''नीले कपड़े फाड़े,
तुर्क पठानी अमल गया।''
तब गुरु ने औरंगजेब को
भेजा अपना वह जय पत्र,
जो उनकी वाणी-रानी का
बना आज भी राजच्छत्र।
''तुझे चुनौती देता हूँ मैं,
आ तू और दिखा औचित्य—
अपनी उस धार्मिकता का जो
कर सकती है ऐसे कृत्य।
करके यह शैतान परस्ती
बनते हो तुम खुदापरस्त?

Hindi Premi

हम काफिर हैं, जो जड़ में भी
चेतन को पाकर हैं मस्त?
यह घात-प्रतिघात न जाने,
कब तक होगा कहाँ समाप्त,
क्रूरग्रह-सा तेरा आत्मा
भटके उस विग्रह में व्याप्त!
मेरे क्रोध-विरोधों का भी
तेरे ही ऊपर है दाय,
रह न जाये कोई उपाय तब
खड्ग खींच लेना ही न्याय!
भ्रातृ-रक्त में सान बनाया
तूने जो मिट्टी का कोट,
ढा देगी मेरे लोहे के
पानी की वर्षा की चोट,
मार सिंह के शिशु सूने में
करें भले ही गर्व शृगाल,
किन्तु याद रक्खें, जीवित है
अब भी यहाँ केसरी काल।''
पहुँच गये गुरुवर्य मालवे,
होने लगा संघ समवेत,
फिर भी शाही सेना से वे
लेने लगे बराबर खेत।

मुक्तसर

एक वार वन में जब कुछ ही
सैनिक जन थे उनके पास,
तभी आ दबाया रिपुओं ने
उन्हें समझ कर अबल उदास!
पुरुषार्थी लोगों का साथी
होता है अदृष्ट भी आप;
आ पहुँचे कुछ सिक्ख अचानक
और कटा वह संकट पाप।

Hindi Premi

धूसर सन्ध्या थी, ऊपर से
झाँक रही थी तारा एक,
नीचे प्राणदान कर कैसे
रक्खी थी, वीरों ने टेक।
गुरुवर गोदी में रक्खे थे
एक हताहत जन का सीस,
जूझे थे उसके साथी जो
उसे मिलाकर थे चालीस।
"भगवन्! हम हैं वही अभागे,
भागे थे जो तुमको छोड़,
हाय! हमारा मुँह मत देखो,
आये थे हम सब मुँह मोड़।"
"चुका चुके यह उसका बदला,
भाई, अब तुम करो न खेद;
बहा दिया निज शोणित तुमने;
बहता जब तक मेरा स्वेद।
क्षमा किया मैंने तुम सबको
माँगो कुछ जाने के पूर्व।"
"फाड़ डालिए लिख आये थे
जो कुछ हम आने के पूर्व।
सिक्ख सिक्ख हम सदा सिक्ख हैं,
धन्य हुए निज गुरु को देख;
हा! कैसे—'हम सिक्ख नहीं है,'
लिखा गया हमसे यह लेख?
जैसा पाप किया वैसा ही
करना पड़ा हमें अनुताप;
अबलाओं तक ने धिक्कारा
दिया आप उर ने अभिशाप।"
रोने लगा शिष्य गद्गद हो,
भर आये गुरु के भी नेत्र,
फाड़ दिया वह लेख उन्होंने,
हुआ 'मुक्तसर' तब वह क्षेत्र।

Hindi Premi

यवन साम्राज्य

लिखा चतुर औरंगजेब ने
गुरु जिसमें दिल्ली आ जायँ,
सहज सरल विश्वासी हिन्दू
सम्भव है धोखा खा जायँ।
शूर शिवाजी के प्रति उसका
सुना उन्होंने था बर्ताव,
राजनीतिकों की वाणी का
अर्थ-भिन्न होता है भाव।
व्यर्थ हुआ वाग्जाल कुटिल का,
पड़ा उसी पर यम का पाश;
एक एक संस्मरण मरण था,
बहुरूपी था उसका नाश!
मरा इधर तो वह छटपट कर
चला उधर पुत्रों में युद्ध;
वे मानो कुलरीति पालकर
बढ़े परस्पर पूर्ण विरुद्ध।
कामबख़्श के उष्ण रक्त से
आजमशाह हुआ अभिषिक्त!
पड़ा बहादुरशाह सोच में
दिल्ली थी सेना से रिक्त।
तब उसने गुरु से सहायता
माँगी, क्षुद्र भावना भूल;
भय से नहीं, किन्तु अनुनय से
होते हैं मानी अनुकूल।
सैन्य दैन्य हर कर गुरुवर ने,
भरकर अपना बल प्रवाह,
मारा स्वयं समर में उसका
बान्धव वैरी आजमशाह।

Hindi Premi

वैरागी से भेंट

इसके बाद गये गुरु दक्षिण,
जो हीरों-वीरों का प्रान्त;
हिन्दू-कुल-गौरव के मानी
थे जिसके विजयी बिक्रान्त।
सुना उन्होंने वहाँ विलक्षण
बन्दा वैरागी का नाम,
यह संसार छोड़ जो मानो
करता था लोकोत्तर काम।
सुत-धन खो जाने से उनको
थी ऐसे ही जन की खोज,
जो उनका अधिकार-भार ले,
रक्खे तपस्तेज-बल-ओज।
अपने को देखा, जो देखा
वैरागी ने गुरु की ओर;
उसे कलाधर-तुल्य देखकर
गुरु-हृदयोदधि उठा हिलोर!
"यह शरीर सम्पत्ति और यह
तेज! किन्तु उस पर यह वेश!
इहलौकिक कर्त्तव्य वीर! क्या
हुए तुम्हारे सब निःशेष?
भाई, किधर जा रहे हो तुम
अपना ओक-लोक सब छोड़?
अपने दीन-हीन-दुखी हम
बन्धु-बान्धवों से मुँह मोड़?
वृद्ध-अशक्तों से क्या होगा,
यहाँ तुम्हीं जैसों का काम।
लौटो, भव-विभवों में बैठा
तुम्हें पुकार रहा है राम।
भव के किस प्रहार से कातर
उससे विमुख हुए तुम तात!
क्यों आयी यह उदासीनता?
मुझे बताओ उसकी बात।"

Hindi Premi

"गुरो, तुम्हारा बन्दा हूँ मैं,
इतना ही मेरा इतिहास–
शान्त हुआ वीरव्रत मेरा–
लेकर एक करुण-निश्वास!
मारे सिंह, वराह, भालु बहु,
मेरा जीवन था आखेट;
किन्तु तीन मरते शिशु पाये
चीर एक हरिणी का पेट।
मेरे शर से मरते मरते,
डाली उसने मुझ पर दृष्टि,
साली मेरे रोम रोम में
नीरव विष-विषाद की वृष्टि?
भागा भव को पीठ दिखा कर,
होकर भी क्षत्रिय - सन्तान;
फिर भी लज्जित नहीं आज मैं,
पाया मैंने लक्ष्य महान।
किधर लौटने को कहते हो
अब मुझको हे ज्ञाननिधान,
क्या यह पन्थ नहीं है जिससे
करता हूँ मैं स्वगति-विधान?"
"इसे अपन्थ कहूँ मैं कैसे?
कहाँ त्याग-सा तप या यज्ञ?
किन्तु समय के पूर्व सुफल भी
नहीं तोड़ते कभी रसज्ञ।
त्याग त्याग करते हैं हम सब
क्या है किन्तु हमारे पास,
छिना सभी तो धाम-धरा-धन,
त्याग नहीं यह त्यागाभास!
'रपट पड़े की हरगंगा' में
मिट सकता है क्या उपहास?
घर में तो वे भी स्वतन्त्र हैं
जो हैं सदा पराये दास!
अकबर लाल किले में बैठे,
वन वन भटकें व्रती प्रताप;

Hindi Premi

नाम जपें हम अलग विजन में,
यह विराग है या अभिशाप?
गीता-पाठी होकर अब तो
समझे होगे तुम सविमर्ष—
अर्जुन-सम करुणाभिभूत हो
छोड़ भगे हो भव-संघर्ष।
गर्भवती उस हरिणी का वध
खेदजनक था निस्सन्देह,
किन्तु तुम्हारे क्या दोषी थे
परित्यक्त वे धन-जन-गेह?
हरिणी पर तो अड़ी तुम्हारी
करुणा-दृष्टि, शोक की सृष्टि,
पर जिस पर वह पड़ी हुई थी
पड़ी न उस धरणी पर दृष्टि।
वह थी 'स्वर्गादपि गरीयसी
जननी जन्मभूमि' चिरकाल;
देखा उसकी ओर न तुमने
था बेचारी का क्या हाल!
देखो, अब भी देख रही वह
पड़ी तुम्हारा यह मुँह जोह;
मुझे उसी की-सी लगती हैं,
उस हरिणी की आँखें ओह!
लूट खसोट रहे हैं उसको
हाय! विजाति विधर्मी टूट,
फूट फूट कर रोती है वह,
गया कभी का धीरज छूट।
सिंहासन - निवासिनी माता
पड़ी धूलि में दीन मलीन,
निज विभु-भक्ति-स्नेह बिना हैं
केश रूक्ष, वेणी मणिहीन!
उसका हरा दुकूल उसी के
शोणित से, देखो, है लाल!
सुनो उसी के क्रन्दन से है
गुंजारित वह व्योम-विशाल!

Hindi Premi

'मुझे उवारो, मुझे बचाओ!'
तुम्हें पुकार रही माँ भ्रान्त,
और पुत्र होकर तुम उसके
खोज रहे हो यह एकान्त!
घर में घुस आये हैं तस्कर,
करके उच्च हिमालय पार,
खोज रहे किस साधनार्थ तुम
निर्जन गहन गुहा का द्वार?
लूट लिया है दस्युगणों ने
आकर उसके धन का कोष,
नष्ट-धर्म्म-मन्दिर कर डाले
भ्रष्ट किये बहुतीर्थ सरोष।
वन्य बर्बरों की इच्छा ही
बनी व्यवस्था-विधि या नीति;
प्रीति चाहते हैं बदले में
दे दे कर वे हमको भीति।
तुम किस स्वर्ग-हेतु करते हो
अपनी वसुधा से वैराग्य?
जहाँ जन्म पाने में सुर भी
समझा करते थे निज भाग्य।
बद्ध दासता के बन्धन में
पड़े करोड़ों भाई बन्द,
लेने जाते हो एकाकी
कौन मुक्ति का तुम आनन्द?
तुम किस धर्म-कर्म का पालन
करते हो स्ववंश - अवतंस,
अरे! तुम्हारा धर्म-कर्म तो
मेंट रहे हैं म्लेच्छ नृशंस।
श्वास कहाँ तुम चढ़ा रहे हो?
फैला यहाँ नरक का नस्य!
है ध्रुव सत्य समक्ष तुम्हारे,
खोज रहे हो कौन रहस्य?
हरिणी की आँखों में तुमने
पाया करुण-शान्त-साहित्य,

Hindi Premi

देखा सुना न उन गायों का
मरना—बाँ बाँ करना नित्य!
क्या उन बहन-बेटियों को तुम
इसीलिए आये हो छोड़,
हर ले जायँ अधर्मी उनको—
हँस हँस कर कर कर के होड़!''
''हा! गुरुदेव, मचा दी तुमने
शान्त हृदय में कैसी क्रान्ति?
अब तक मानो मैं भ्रम में था,
तुमने आज मिटा दी भ्रान्ति।
आया नहीं एक क्षण को भी
इन बातों का मुझको ध्यान,
दुःखपूर्ण है सदा आदि में
सुखमय रहे अन्त में ज्ञान।
भारत में प्रज्वलित आज है
उसकी चरित चिता की आग,
जले सतीत्तन तुल्य उसी में
विषम हमारा त्याग विराग!''
मैं गोविन्दसिंह कहता हूँ
''मन की व्यथा तुम्ही से आज,
निज जातीय पतन से मुझको
है हिन्दू होने की लाज!''
''किन्तु आज भी हिन्दू कुल का
तुम जैसों से गौरव, गर्व,
शेष महज्जन-जनन-शक्ति है
अब भी उसमें अतुल अखर्व।''
''भाई, मैं तो अपना सब कुछ
कर आया उस पर बलिदान,
बचा न एक तनय तक मेरा,
फल के दाता हैं भगवान।''
''पर यह शिष्य-सूनु तो अब भी
है अविशिष्ट, मिले आदेश,
पूज्यस्थाणु रूप तुम मेरे,
देखो मेरा भावावेश।''

Hindi Premi

"अब भी कुछ आदेश चाहिए?
लो यह खंग और ये बाण,
गीता रखते हो पहले ही,
बनो वीर! बढ़ स्वयं प्रमाण।
जिसके तीन ओर अर्णव है,
चौथी ओर हिमालय पीन,
ऐसा देश-दुर्ग पाकर भी
रह न सके हा! हम स्वाधीन।
दिव्य भाव भरते थे भव में
जिसके ब्राह्मण सब कुछ त्याग,
करते थे जिसके दिग्विजयी
क्षत्रिय वीर विश्वजित याग।
जिसके व्यवसायी वैश्यों ने
कर डाला था जल-थल एक,
कला-कुशल शूद्रों ने जिसकी
सेवाएँ की थीं सविवेक।
रमणी-रत्न हेतु होता था
जहाँ कठिन लक्ष्यों का वेध,
होते थे वीरत्व - विधायक
राजसूय अथवा हय - मेध,
उसी देश की आज दशा यह—
उदासीन, अति दुर्बल-दीन!
भूल समष्टि-सिद्धि हम सब हैं
व्यष्टि-वृद्धि में ही अब लीन।
आश्रम - धर्म भूलकर हमने
सीख लिया बस एक विराग,
क्यों न विदेशी दस्यु लूटते
विभव हमारा—भव का भाग।
उत्तराधिकारी तक भी हा!
नहीं छोड़ती हमको शान्ति,
रवि भी अग्नि, चन्द्र तारों में
रख जाता है अपनी कान्ति।
रावण-वध कर राम हमारे
करते हैं सीता-उद्धार;

Hindi Premi

कंसों को संहार कृष्ण भी
हरते हैं निज भूतल-भार।
हम क्या करते हैं कि भूल कर
उनकी शिक्षा, उनके काम,
मरते जीते 'हरे हरे' कह
जपते हैं बस मुँह से नाम।''
''अहा! नरों में ही नारायण
दीख उठे हैं मुझको आज!
अब नर-हरि सेवा का ही मैं
निश्चय करता हूँ निर्व्याज।
नहीं चलाऊँगा मैं कोई
नया पन्थ, बनकर आचार्य,
सर्व-समन्वय का साधन ही
होगा इस जीवन का कार्य।''
गुरु ने कहा, ''सुना है तुम कुछ
रखते हो लोकोत्तर शक्ति?''
हँस बोला वैरागी बन्दा–
''मेरी शक्ति गुरू की भक्ति!
नहीं अलौकिक कुछ जगती में,
चमत्कारिणी सहसा दृष्टि,
चौंके होंगे देख प्रथम हम
चकमक की, चुम्बक की सृष्टि।
एक महात्मा की संगति में
साधा है मैंने कुछ योग,
अपनी ही विशेषताओं से
वंचित हैं बहुधा हम लोग!
पर इन चर्म-चक्षुओं का है
दिया जाल-सा तुमने काट,
दीख पड़ी है मुझे अचानक
मातृभूमि की मूर्ति विराट।
शत गिरि पीन पयोधर माँ के
बहा रहे हैं अमृतस्तन्य,
सहकर सौ आघात इसी से
अमर आज भी सन्तति धन्य!

Hindi Premi

शत शत कमल-नयन जननी के
छलक रहे हैं वारंवार!
करुणा पूर्ण प्रेम के आँसू
झलक रहे हैं वारंवार!
उसके विस्तृत व्योमांगन में
करे नियति निज लीलालास्य,
रोदन हास्यमयी मेरी माँ
है हम सबकी प्रथमोपास्य।"
गुरु ने कहा—"वत्स, विजयी हो
यही आज है तुझको इष्ट;
मैं गुरुकुल-गौरव-गाथा का
तुम्हें बनाता हूँ परिशिष्ट।
शक विजयी विक्रम समान तुम
यवन-जयी हो स्वयं अजीत,
फल छोड़ो, पर कभी कर्म से
मुँह मत मोड़ो गीताधीत!
कह देना जाकर सिक्खों से
भरें स्वतन्त्र बुद्धि के कोष,
हैं ग्रहणीय शत्रु के भी गुण
तथा त्याज्य गुरु के भी दोष।
साहस पूर्वक देश-काल को
अपने योग्य बनाओ आप,
बनो आप भी तदनुरूप तुम,
दे न जाय अवसर अभिशाप।"

अन्त

कुछ सिक्खों के साथ शीघ्र ही
गया पंचनद बन्दा वीर,
गुरु ने नव गुरुधाम बनाया
नदी नर्मदा के ही तीर।
दो पठान बच्चे भी गुरु ने
रक्खे थे अब अपने साथ,

Hindi Premi

वैरी बाप मारकर उनका
पाले थे वे उभय अनाथ।
गुरु का प्यार प्राप्त करके भी
करते वे पितृ-वैर-विचार,
चन्द्रालोक लाभ करके भी!
चुगता है चकोर अंगार।
हिंस्र जन्तु भी तपोवनों में
रहते हैं निज हिंसा भूल,
किन्तु प्रकृति तो कभी किसी की
नहीं पलटती कहीं समूल।
एक बार निशि में कटार से
किया उन्होंने गुरु पर वार,
लोग एक अपकार याद कर
बिसराते हैं सौ उपकार।
पकड़ लिया सिक्खों ने उनको,
गुरु ने छुड़वा दिया तुरन्त,
जिन्हें पुत्र-सम पाला, कैसे
उन्हें शत्रु-सम मारें सन्त?
बोले वे—"शिक्षा देने से
हुए आज ये मुझसे क्षम्य;
विष का वृक्ष काटकर उसके
कभी न छोड़ो अंकुर रम्य।
ये ले चुके बाप का बदला
किन्तु खालसा रक्खे याद,
उसको अभी चुकाना है वह
न हो कभी इस ओर प्रमाद।
व्याध-बाण से कृष्ण-तुल्य गुरु,
उस व्रण के मिष तज निज देह,
गये, किन्तु अपने बन्दा की
वे सुन गये विजय सस्नेह!
आकर लाख लाख लोगों को
उद्बोधित कर भानु-समान,
शान्त हुए गोविन्दसिंह गुरु
क्रम से कान्त कृशानु-समान।"

Hindi Premi

बन्दा वैरागी

आया है वैरागी बन्दा
गुरु का ही अवतार नवीन,
प्रेत-पिशाच और जिन भी हैं
उस मायिक के मन्त्राधीन।
शोर हुआ सब ओर देश में,
दहल उठा यवनों का वित्त;
शाही कोष लूट आते ही
बाँट दिया उसने सब वित्त।
वैर, वित्त, यश के अभिलाषी
पाकर सहसा सहज सुयोग,
बन्दा के झण्डे के नीचे
जुड़ आये दल के दल लोग।
चढ़ा सामने से वैरागी,
दस सहस्र यवनों को काट,
हाल उतारा गया अधम अरि
अलीहुसेन खड्ग के घाट।
यह भी गुरु-शिशुमार बना था
उन्हें 'साँप का बच्चा' मान;
और यहीं था तेगबहादुर—
गुरु-वधिकों का वास-स्थान।
लूट अनेक यवन-जनपद फिर
चढ़े कुंजपुर पर सिख शूर,
सरहिन्दी सूबा के परिजन
और यहीं थे काजी क्रूर।

Hindi Premi

वध का बदला भी वध ही था,
और ब्याज में थी वह लूट;
"जो कुछ जिसे मिले वह उसका"
दे दी वैरागी ने छूट।
आगे चलकर मिला मार्ग में
उन पठान लोगों का ग्राम,
गुरु को छोड़ प्रथम रण में ही
भागे थे जो नमकहराम।
"भागो अब इस भव से भी तुम
रहो नरक में ही भट-भण्ड!"
दिया वीर वैरागी ने यों
उन्हें नया निर्वासन-दण्ड।
क्रूर कपूरी का हाकिम था
अन्यायी अभिचारी घोर,
गले लगानी पड़ी उसे अब
असि-वामा—बिजली की कोर!
चढ़ दौड़े साठौरा पर सिख,
था जिसका शासक उसमान,
धरा गया गोधूल समय में
गो-नाशक-त्राशक उसमान!
उसे देख बोला वैरागी—
"इसने ही मारा था आह!
गुरु गोविन्दसिंह का साथी
सुहृदय सय्यद बुद्धूशाह!"
"पर वह भी तो मुसलमान था"
सुन बन्दा ने पटका पैर—
"तब तो लेते हैं हम हिन्दू
तुम काफिर से उसका वैर!
हिन्दू मुसलमान कोई हो,
जो सच्चा है वही मनुष्य;
देव और दानव दोनों ही
बन जाता है यही मनुष्य।"
वैरागी के वध का उसने
प्रण था किया दम्भ के साथ,

Hindi Premi

प्राण लिये सिक्खों ने उसके
कस कर तरुस्तम्भ के साथ।
मन्दिर तोड़ मसजिदें उसने
बनवाई थीं वहाँ तमाम,
एक रूप भी कभी जहाँ था
अब था वहाँ नाम ही नाम।
सब मन्दिर टूटे हैं फिर क्या
रह सकती है मसजिद एक,
'जैसे को तैसे' होने की
कर ली थी सिक्खों ने टेक।
मुखलिसगढ़ जीता वीरों ने,
दिया उसे 'लोहागढ़' नाम;
पीर अमीर मीरजादे सब
नामी नामी आये काम।
विजयी का साथी सब कोई,
स्वयं शत्रु भी होकर भीत,
वैरागी का आश्रय लेकर
रहने लगा विशेष विनीत।
पर द्विजिह्व सीधा होकर भी
नहीं छोड़ता है गति वक्र;
पकड़े गये शीघ्र ही वे सब
रचते हुए कराल कुचक्र।
वैरागी ने कहा क्षमा के
प्रार्थी आ जावें इस ओर;
यह सुन गिन गिन कर छँट आये
जिन जिन के भीतर था चोर,
"अरे अभागो, तुम्हें मृत्यु ही
लाई थी मेरे घर घेर,"
मारे गये शत्रु सब चुन कर,
हुए रुण्ड-मुण्डों के ढेर।
संवत् सत्रह सौ पैंसठ के
ज्येष्ठ मास में निश्चित योग,
नियत हुआ सरहिन्द, विजय का
प्रस्तुत थे पहले ही लोग।

Hindi Premi

इधर न तो वैसी तोपें थीं,
न थे अश्व-गज-सैन्य विशेष;
किन्तु प्रबल प्रतिशोध बोध मय
था रण मरण मारणावेश!
सज सविशेष समर-सज्जा से
बोला बढ़कर बली नवाब—
"भागा फिरा गुरु ही मुझसे
तो फिर चेलों की क्या ताव!"
धाँ धाँ कर उसकी तोपों ने
धुवाँधार कर दिया तुरन्त,
उगल प्रलय घन शत कृत्याएँ
करती थीं पवि-पात दुरन्त!
एक एक भौतिक कण में है
बहुजननाशक बल विकराल?
काल खोजता नहीं किसी को,
हमी खोजते हैं निज काल!
नहीं मारते ही थे गोले,
साथ जलाते भी थे अन्ध;
साल रहा था धुवाँ दृगों को
और नासिका को दुर्गन्ध!
बढ़ बढ़कर भी सिक्ख शिखा पर
पड़ने लगे पतंग समान,
वही नहीं लौटा सकता फिर
जो कर चुका शस्त्र-सन्धान।
विचलित देखी जब निज सेना
हुआ वीर वैरागी क्रुद्ध;
हाथों से पर-वध कर, मुख से
उसको करने लगा प्रबुद्ध—
"अरे, विमुख होकर भी तुम इन
गोलों से न बचोगे आव,
प्रभु को क्या मुख दिखलाओगे
लिये हुए पीठों पर घाव!
आज वही दिन है, तुम कब से
जोह रहे थे जिसकी बाट;

Hindi Premi

जीकर नहीं, जीत कर लौटो
खड़ी कीर्ति है खोल कपाट!
याद करो गुरु के बच्चों की,
जीते चुने गये वे लाल;
आज तुम्हीं को ताक रहे हैं
कैसी करुण दृष्टियाँ डाल!
तुम्हें पुकार रहे हैं दोनों,
लौटो देखो, उनके आस्य;
नर-पिशाच परजन करते हैं
हृदय जलाने वाला हास्य।
दो बच्चों ने भी दे डाले
जहाँ धर्म पर अपने प्राण;
धिक् है, धर्म-विमुख होकर जो
करें वहीं हम अपना त्राण!
आओ, मैं आगे बढ़ता हूँ,
चढ़ जाओ तोपों पर कूद,
अभी चुका लो अपना बदला—
ले लो सभी सूद दरसूद!"
मानो स्वयं लक्ष्य चुनने को
छोड़ उठा शर-विषधर वीर;
पहले गोलन्दाजों का ही
पीते थे वे श्वास-समीर।
बढ़ा सन्त भट यों गोलों में
ज्यों प्रकाश-पिण्डों में लोक!
उसके पीछे विकट सिखों को
वहाँ कौन सकता था रोक?
स्वयं शस्त्र-सम शत्रु-संघ को
भेद गये वे साराकार;
रौद्र-भयानक भी विस्मित थे
प्रतिहिंसा का हास्य निहार!
उनके खड्गों के पानी पर
हुआ निछावर-सा रिपु-रक्त;
काट हड्डियाँ भी मूली-सी
होने लगे प्रहार सशक्त।

Hindi Premi

जिनके चित्त चोट खाये हों
कौन सहेगा उनकी चोट?
चंचल होकर भाग उठे अरि,
मिले कहीं भी कोई ओट!
देख पड़ा सूबा बजीरखाँ,
कहने लगा गरज कर सन्त—
"अरे अधम अब कहाँ चला तू
आ पहुँचा जब तेरा अन्त!"
"पकड़ो, भाग न पावे पामर,"
दौड़े पागल ऐसे सिक्ख
देख सामने मुख्य लक्ष्य निज
उसे छोड़ते कैसे सिक्ख?
भाग रहा था वह घोड़े पर,
एक कब्र में उलझा पाँव;
पकड़ गयी मानो वह यह कह—
'अब है वही ठौर या ठाँव'।
समर शासनादेश हुआ—"बस
इसकी चाल चला दो आज,
इसने जीते बच्चे गाड़े,
जीता इसे जला दो आज!"
बचा न धन-जन भवन, एक भी
हुआ सभी यवनों का नष्ट;
लूट मार वध वह्नि दाह तक
प्रतिहिंसा के ही सब कष्ट!
बचने चला आपको हिन्दू
कह कर सूबा का दीवान;
कहा सन्त ने—"मुझे यही तो
लज्जा है ओ बेईमान!
ऐसे घोर नृशंस कार्य में
दिया हाय! तूने सहयोग;
जो कुछ किया लोभ या भय से
आज उसी का फल तू भोग।
हिन्दू हो या मुसलमान हो,
नीच रहेगा फिर भी नीच;

Hindi Premi

मनुष्यत्व सबके ऊपर है
मान्य महीमण्डल के बीच।
सच्चा हिन्दू होकर ही मैं
यह कहने के लिए समर्थ–
'तुझ-सा पापी हिन्दू है तो
मुसलमान हूँ तेरे अर्थ!'
मेरा राम रमा है मुझमें,
मैं चाहे मणि हूँ या काच,
जो मनुष्यता के नाशक हैं
मैं हूँ उनके लिए पिशाच।
न्यायासन पर पक्षपात मैं
क्यों कर सकता हूँ, बोल!
देखें मेरा निर्मम शासन
उद्धत अपनी आँखें खोल।
दायी हैं उनके भाई यदि
मरें दोषियों में निर्दोष;
कुछ सह सकता नहीं शत्रु का
प्रतिहिंसक सेना का रोष।
दूर करूँगा पशुबल से ही
मैं उस नर-पशुता का पाप;
काँटे से काँटा निकाल कर
निकलूँगा काँटे-सा आप।''
ढाया सब सरहिन्द सिखों ने,
किया सात दिन तक संहार?
एक वार भी शेष न छोड़ा,
करते रहे बराबर वार!
गंगाराम विप्र ने माँगा
कुछ प्रमाण अपने प्रतिकूल,
किन्तु कुपित सिक्खों ने उस पर
हूल दिया निज संशय शूल।
इसके बाद भागते वैरी
जाता सन्त शूर जिस ठौर,
मार्ग रोक कर किया अलग-सा
उसने दिल्ली से लाहौर।

Hindi Premi

शीघ्र पहाड़ी भूपों को भी
ठीक किया बन्दा ने ठोक;
दिया उन्हें स्वातन्त्र्य असल में
शाही कर देने से रोक।
लिया विजय ने आगे आकर
गया जिधर वैरागी वीर;
फिर भी—महाराज होकर भी—
रहा जनक-सा त्यागी वीर!
दिया बवण्डर बनकर उसने
पवनों का उद्यान उजाड़,
तोड़ मरोड़ उखाड़ पछाड़े
बड़े बड़े बहु अज्झड़ झाड़।
सिक्खों को ही दे देता था
शासन वह यवनों से छीन;
किन्तु तीन-तेरह होते थे
बहुधा वे उस एक विहीन।
विजन पर्वतों में जा जाकर
रह जाता था बहुधा सन्त,
फिर ज्यों ही सिर यवन उठाते
आ जाता था वह बलवन्त।
आर्य-यवन आ डरते-डरते
उसको रक्षक-भक्षक मान;
सिक्ख यथोचित श्रद्धा करते
अपना ग्यारहवाँ गुरु जान।
कर दिखलाया वैरागी ने
कर न सके जो गुरु गोविन्द;
हरा प्रताप-तेज यवनों का,
हर न सके जो गुरु गोविन्द।
सिक्ख-विजय-नाटक निर्माता
थे गोविन्दसिंह गुरु धीर;
पर अभिनय दिखलाने वाला
सूत्रधार था बन्दा वीर।
गुरु की विजय-पताका, जिसका
रहा पहाड़ों तक ही अन्त,

Hindi Premi

लेकर अब लाहौर आदि को
फहरी पानीपत पर्यन्त।
इस यश का रस-मूल हुआ बस
बन्दा का व्यक्तित्व अनन्य;
पर जिसका चेला चीनी हो
गुड़रूपी वह गुरु ही धन्य।
खुला खंग रख दिया सभा में
बादशाह ने होकर क्रुद्ध;
किन्तु उठा न सका कोई भी
उसको बन्दा वीर विरुद्ध!
फिर भी एक लाख सेना ने
दी जाकर सिक्खों को हार,
तदपि वीर वर वैरागी को
धर न सकी वह किसी प्रकार।
समझ लिया यवनों ने, हमने
बन्द किया बन्दा को दाव,
पर बन्दा की-सी आकृति का
वह था उसका भक्त गुलाब।
ज्यों राणा प्रताप को दी थी
मानसिंह झाला ने ओट,
सही धन्य त्यों ही गुलाब ने
अपने प्रभु पर आयी चोट।
बादशाह ने वध की आज्ञा
दी उसको निज बाधक मान,
फिर भी उसकी स्वामि-भक्ति का
उसको करना पड़ा बखान।
आप बहादुरशाह चढ़ा तब
सन्त शूर पर करके कोप,
पर निज मर्यादा रख कर भी
कर न सका वह उसका लोप।
हुआ सन्धि का अभिलाषी तब
एक साधु से शाहंशाह,
किन्तु काल-कवलित होने से
पूरी हुई न उसकी चाह।

Hindi Premi

तब भी—सरल सिक्ख अब भी थे
राजनीति से रिक्तप्राय,
छला उन्हें यवनों ने छल से
चला न बल से जहाँ उपाय।
फरुखसियर ने कूटनीति से
फैला दी सिक्खों में फूट—
भरता है उनमें वैरागी
कट्टर हिन्दूपन ही कूट!
"सिक्ख नहीं वह वैरागी है"
भूल गये हा! भोले सिक्ख;
"किन्तु बिना नेता के कैसे,
काम चलेगा!" बोले सिक्ख।
"भला ग्रन्थसाहब से बढ़कर
अन्य धर्मनेता है कौन?"
"तदपि अग्रचेता अभीष्ट है
और यवनजेता है कौन?"
लड़ने लगे सिक्ख आपस में
होकर दो भागों में भक्त;
मुकर गया हिन्दूपन से ही
तत्व खालसा रक्त-विरक्त!
"चख कर अमृत यथा विधि जब तक
हो न जाय वैरागी सिक्ख,
न हों शत्रु-जय में भी तब तक
उसके रागी-भागी सिक्ख।"
यही नहीं, आगे यवनों से
मिले सिक्ख उसके प्रतिकूल;
होते हैं धर्मान्ध जहाँ हम
करते नहीं कौन-सी भूल?
दो गिहणियाँ और थीं गुरु की
उन्हें भुला कर भोली देख,
साधु-विरुद्ध चतुर यवनों ने
लिखा लिया उनसे निज लेख।
हँसी आ गयी वैरागी को
कूट नीति का निरख प्रबन्ध,

Hindi Premi

"आह! गुरु का पन्थ खालसा
हुआ आज मतवाला अन्ध।
गुरु से अधिक पूज्य गुरु-पत्नी,
नहीं यहाँ संशय का लेश,
पर गुरु पत्नी से भी मुझको
अधिक मान्य गुरु का उद्देश।
उन भोली को शत्रु भुलाकर
कर न सकेंगे मुझको शान्त,
किन्तु सिक्ख भी हुए आज हा!
अन्धभक्ति से भ्रान्त नितान्त।
दी गुरुदेव, हाय! क्यों तुमने
अपने उच्च हृदय की हूक?
अमृत चखाने चले मुझे वे
विष भख रहे स्वयं जो चूक।
गुरो इन्हें कैसे समझाऊँ
कि मैं स्वयं निज गुरुता भूल,
करता हूँ संघात तुम्हारे
सदुद्देश के ही अनुकूल।
किन्तु हिन्दुओं से सिक्खों का
मुझे विरोध नहीं है इष्ट,
सम्प्रदाय है एक उन्हीं का
तत्व खालसा वीर विशिष्ट।
सिक्ख-संघ हिन्दू-कुल का ही
निज रक्षार्थ संघटन मात्र,
गुरुओं ने समयानुसार ही
किये सुशिक्षित अपने पात्र।
यदि परिवर्तन किये न जाते
आवश्यकता के अनुसार,
तो नानकपन्थी रह कर भी
होते न वे सिंह-सरदार।
हिन्दू जाति एक जननी है,
जात उसी का सिक्ख-समाज;
किन्तु आज वह रूठ रहा है,
हुआ हठी, हेकड़ हा! लाज!

Hindi Premi

कलह सुलभ है, कहते हैं हम
जिनको 'सिरमुण्डा' दो टूक,
कह सकते हैं वे भी हमको
शिखी, शिखण्डी, नरभल्लूक।
वे सिरमुण्डे तो हम डढ़ियल,
इन बातों में है क्या सार!
मस्तक और हस्त-सम दोनों
साधौ अपना कार्य विचार।
रखकर मग्न मीन-सम मुझको
रहे अमृतसर ओतप्रोत;
जयति परन्तु सिन्धु-सरयू सह
निज गंगा-यमुना के स्रोत।
छोड़ सिक्खपन तो सिक्खों ने
खना मुक्तसर ही था क्षुद्र;
निज हिन्दुत्व छोड़कर उनको
खनना पड़े न मुक्तसमुद्र!
मैं अपने व्रत से न टलूँगा,
रहे भले या जाय शरीर;
यही विनय है—बनें धीर भी
हे गुरुवर्य, तुम्हारे वीर।
जिस प्रकार समयानुसार तुम
करते गये नवीन विधान,
वैसे ही परिवर्तन करके
बनें सिक्ख भी बुद्धि-विधान।
समय एक-सा कब रहता है,
चलता है कब एक चरित्र,
यवन आज जो अपने अरि हैं
वे ही कल होंगे निज मित्र।
गुरो, और क्या कहूँ, स्वर्ग से
दो इतना ही आशीर्वाद—
एक काल की विधि विशेष पर,
करें न हम चिरकाल प्रमाद।''
कल जो बन्दा के बन्दे थे
हुए आज यवनों के भृत्य!

Hindi Premi

जिनके लिए जूझता था वह
करने लगे वही अरि-कृत्य!!!
मन-वैरागी दृढ़ था, पर हा!
संग छोड़ बैठे सिख-अंग;
जीते शत्रु, आप अपनों ने
उसे हराया कर रण-रंग।
जब इक्कीस बात वाला वह
था बाईस लंघनाक्रान्त,
धर तब उसे लोह-पिंजर में
दिल्ली गया शत्रु-दल श्रान्त।
भालों पर थे दो सहस्र जन
हिन्दू और सिक्खों के मुण्ड;
और सात सौ की संख्या हैं
था बन्दी वीरों का झुण्ड।
एक और बन्दी था वह शिशु—
बन्दा का ही लघु पर्याय!
परम्परा-रक्षार्थ किया था
उसने निज विवाह, पर हाय!
सौ सौ करके सात दिनों में
मारे गये सात सौ शूर;
फिर भी मुसलमान होने को
हुआ नहीं कोई मंजूर।
रोने लगी एक माँ—''मेरा
बेटा नहीं साधु का भक्त।''
बेटा बोला—''मारो मुझको,
मैं सदैव उनका अनुरक्त!''
आसपास भालों पर सिर थे
बद्ध बीच में बन्दा शान्त,
शाह और दरबारी सम्मुख
इधर उधर थे वधिक कृतान्त!
बच्चे के टुकड़े-टुकड़े कर
किये गये उस पर निक्षेप!
बिखर गये अंगार तुल्य वे
छोड़ रक्तचन्दन का लेप!

Hindi Premi

पूछी गयी कामना उसकी,
बोला वह धीरों में धन्य—
''यही लालसा है बस मेरी
कि हो खालसा को चैतन्य!''
कहा एक दरबारी जन ने—
''होकर भी साधू सरनाम—
कैसे किये गये तुझसे वे
ऐसे बेरहमी के काम।''
''जैसा अभी किया है तुमने?''
मुसकाया बन्दा इस बार—
''निश्चय हमने दया नहीं की
पर वह था केवल प्रतिकार।
गुरु के वत्स-विनाशक थे जो
महा दुराचारी अति दुष्ट;
उन्हें दण्ड देकर मैं अब भी
हूँ अपने मन में सन्तुष्ट।
आयी आज तुम्हारी बारी,
किन्तु सोच लो इसके बाद?
अब भी हीन नहीं हैं हिन्दू
त्यागें यदि वे तनिक प्रमाद।
बदला लेना-देना भी तो
एक परस्पर का व्योहार;
आज तुम्हारे घर है तो कल
मेरे घर होगा त्योहार!
इसे न भूलो इस विग्रह का
होगा वहीं उचित अवसान,
जहाँ एक अनुताप करेगा
और दूसरा क्षमा प्रदान।
क्षमा चाहता नहीं स्वयं मैं,
तो तुम अपना दण्ड अबाध;
हमें शान्ति है क्यों कि नहीं है
प्रथम हमारा कुछ अपराध।''
बादशाह ने पूछा—''तुझको
कैसी मौत चाहिए बोल?''

Hindi Premi

धीरे से बोला वैरागी–
मूँदे हुए नेत्र निज खोल–
''जीवन जिसकी इच्छा पर है
उसकी ही इच्छा पर मृत्यु;
छोड़ जायगी स्वयं तुझे भी
क्या तेरी भिक्षा पर मृत्यु?
आत्मा मरता है न मारता,
सुन मेरी गीता का ज्ञान–
मरने और मारने वाला
इसे जानते हैं अनजान।
त्याग पुरातन पट-सा यह तनु
रक्खूँगा मैं नूतन देह;
नया वसन-सा पहन करूँगा
फिर निज साधन निस्सन्देह।
बदला करता है यह आत्मा
वार वार वपु रूपी वस्त्र,
न तो जला सकती है ज्वाला,
न तो काट सकते हैं शस्त्र।
मुझे स्वगति के लिए प्रलय तक
नहीं देखनी होगी राह,
आज न हो, कल, नये जन्म में,
पूरी होगी मेरी चाह।''
नोंची गयी लाल चिमटों से
खाल, न करके फिर भी आह!
किया वस्तुतः वैरागी ने
अपनी वाणी का निर्वाह!
वैरी भी विस्मित थे उसकी
नीरव सहन-शक्ति वह देख,
उसकी वह तल्लीन भावना,
श्रद्धा और भक्ति वह देख।

Hindi Premi

परिशिष्ट

मिटा नहीं बन्दा वैरागी,
मिटा स्वयं सिक्खों का खेल;
और काफिरों से बनता क्यों,
मिटा मुसलमानों का मेल।
"मारो, हाँ मारो, फिर मारो,
रह न जाय सिक्खों का नाम!"
फरुखसियर के जीवन का था
मानो एक यही तो काम!
राजनीति की शुष्क वायु में
सन्धिपत्र हैं सूखे पत्र,
जन जन की धन-धरती की है
धूल वहाँ उड़ती सर्वत्र।
एक एक सिर पर सिक्खों के
पुरस्कार मिलते थे बीस;
तारूसिंह तुल्य सिख तब भी
शिखा न देकर देते सीस।
वनों पहाड़ों में जाकर
करना पड़ा सिखों को बास;
पर अगिया बेताल-तुल्य वे
देते थे अपना आभास।
"माँ तेरे कितने बच्चे हैं?"
"चार" हुई माँ चिन्ता लीन—
"किन्तु एक तो सिक्ख हो गया,
अब जीवित समझो बस तीन!"

Hindi Premi

सिक्ख मात्र के लिए नहीं था
कोई साधारण भी न्याय;
किन्तु न्याय पा सका हाय! क्या
हिन्दू-बाल हकीकतराय?
यवन बालकों को गाली का
उसने दिया वही प्रतिदान,
मृत्यु दण्ड, उसको काजी ने
दिया खोलकर लाल कुरान।
मुसलमान हो बच सकता था,
बोला बालक वीर तुरन्त–
"मेरा आदि मध्य हिन्दू है
हिन्दू ही मेरा है अन्त।"
बूढ़ी माँ रोती थी, बोली–
"बेटा, देख हमारा हाल;
जीता तो देखूँगी तुझको;
मुसलमान ही हो जा लाल!"
"मुझे विधर्मी देखो तो हा!
तुम अन्धी हो जाओ अम्ब,
ऐसा तो न कहो जो मुझसे
स्वयं तुम्हीं खो जाओ अम्ब!
मन्दिर, मूर्ति, तीर्थ, गो, गंगा,
राम, कृष्ण, श्रुति, शास्त्र, पुराण,
तुम्हीं कहो किस किसको छोड़ूँ
लेकर मैं अपने ये प्राण?
और चार दिन जियूँ, इसी से
क्या सबसे मुँह मोड़ूँ हाय!
देव, पितर, आचार्य और निज
पुण्यभूमि तक छोड़ूँ हाय!
धर्म कर्म के साधनार्थ ही
यहाँ जिया जाता है अम्ब!
जान बूझकर अमृत छोड़ विष
कहाँ पिया जाता है अम्ब?
किस अभाव से त्याग करूँ मैं
अपना धर्म मुक्ति का मर्म?

Hindi Premi

किस आध्यात्मिकता के पीछे,
अंगीकार करूँ पर-धर्म।''
''मरता, तुझे देखने को क्या
मैंने जन्म दिया था हाय!
गीले में रह, सूखे में रख
पालन कभी किया था हाय!''
''अपना दूध पिला कर ही तो
दी तुमने मुझको यह शक्ति,
नहीं छोड़ने देती है जो
मुझे मृत्यु-भय से निज भक्ति।
अमर तुम्हारा तुच्छ तनय यह
भय क्या माँ, सम्मुख भगवान;
मुझे धर्म-बलि वरती है, तुम—
रोती हो? गाओ जय-गान!
सच्चे स्वप्न महानिद्रा के
आहा! मैं देखूँगा आज,
होकर अतिथि अनन्तधाम का
धन्य भाग्य लेखूँगा आज!''
उज्ज्वल असि-मिष कीर्ति आप ही
आकर लगी युवक के अंक,
पर यवनों के चिह्न चन्द्र का
यह वध बना विशेष कलंक!
वह बूढ़ा मणिसिंह कि जो था
सिख-समाज का वेदव्यास,
किया ग्रन्थसाहब का जिसने
रागों के क्रम से विन्यास,
टुकड़े टुकड़े किया गया कुछ
चाँदी के टुकड़ों पर काट;
धन की नहीं असल में तब तो
यवनों को थी जन की चाट!
सिक्ख दूरदर्शी न रहे हों,
किन्तु हो चुके थे रण-दक्ष;
छापे मार मार यवनों का
लगे काटने फिर वे पक्ष।

Hindi Premi

नादिरशाह लिए जाता था
करके जब दिल्ली की लूट—
लूट ले गये वे उसको भी
सहसा उसके ऊपर टूट।
सिक्ख दबाये जाकर मानों
होते गये अधिक उद्दण्ड,
होकर मेघाच्छन्न और भी
चित्रभानु होता है चण्ड।
जूझो, जय चाहो तो जूझो,
जीते अहा! अन्त में सिक्ख;
रुधिर दिया था, क्यों न राज्य-रस
पीते अहा! अन्त में सिक्ख!
किन्तु हरा कर भी यवनों को
पाकर भी वे यश अत्यन्त,
पा न सके खोकर धोखे में
अपना वह वैरागी सन्त!
और न पा सके ऐक्य मय
वह गुरु का उद्देश्य विराट,
शासक होने पर भी मानो
बने रहे वे बारहबाट।
तदपि बचा लाया विक्रम सम,
जस्सासिंह शत्रु पर टूट,
अहमदशाह लिए जाता था,
केशी सम अबलाएँ लूट।
आखिर श्री रणजीतसिंह ने
किया सिक्ख-शासन-विस्तार,
काबुल ने भी नत होकर ही
पाया था उनसे निस्तार।
एक दृष्टि था और एक ही
था उन कृतलक्षण का लक्ष्य;
मुसलमान भी हिन्दू-सम थे
प्रजा रूप में उनको रक्ष्य।
एक यवन पर किसी सिक्ख ने
शूकर-मांस दिया था फेंक,

Hindi Premi

दिया उसे वध-दण्ड उन्होंने
की उस पर हाँ दया न नेंक—
कठिन दण्ड की ही करती थी
उन्हें प्रेरणा उनकी नीति,
जिसमें उनकी किसी प्रजा पर
कर न सके कोई अनरीति।
उन्हें अमृतसर और पुरी के
मन्दिर में न रहा कुछ भेद;
पर चढ़कर भी—कोहनूर की
भेंट कहीं चढ़ सकी न खेद!
उनके बाद हाय! फिर हम में
फैल गयी आपस की फूट,
और विशाल राज्य सिक्खों का
गिरा एक तारे-सा टूट।
सिक्खो, राज्य गया, जाने दो,
लो अतीत से कुछ उपदेश;
छोड़ो वह संकीर्ण भावना
देखो अपना देश-निवेश।
हो जावेगी भरपाई-सी
हुई फूट से जितनी हानि;
मेल मूल्य समझो तुम अब भी
मेटो वह आपस की ग्लानि।
शूरो, अब भी रखते हो तुम
सत्याग्रह करने की शक्ति,
गुरुकुल-सम समयानुसार चल
दिखलाओ सच्ची गुरुभक्ति।
आज नहीं बज सकते वैसे
मढ़े हुए बरसों के वाद्य,
व्यंजन भी बहु वासी होकर
हो जाते क्या नहीं अखाद्य!
आओ, अपनों के अंगी हो,
पाओ सक्षमता से क्षेम;
बनो राष्ट्र के सच्चे नागर,
करो नागरी पर तुम प्रेम।

Hindi Premi

जोड़ी जिसकी धातु अष्ट गुरुओं ने क्रम से,
डाला जिसका डौल नवें गुरु ने विभ्रम से,
दशवें गुरु ने जिसे गढ़ा अनुपम विक्रम से,
आये जिसमें प्राण वीर बन्दा के श्रम से;

रणजीतसिंह से जो हुई
स्वर्णमन्दिरस्था तभी;
वह शक्ति मूर्ति सिख-संघ की
भगवन्, भंग न हो कभी।

तथास्तु

Hindi Premi

परम्परा

एक रूप में सिक्खों की गुरु-
परम्परा है अब भी शेष,
रखती है अति दृढ़ता पूर्वक
जो निज भाव तथा निज वेश।
बालकसिंह कहे जाते हैं
ग्यारहवें गुरु नियम-निवेश,
गुरु गोविन्दसिंह से जिनको
प्राप्त हुआ था प्रिय उपदेश।
पाकर यह आदेश दशम से
धन्य हुए थे वे निष्पाप—
"हूँगा मैं अवतीर्ण तुम्हारे
उत्तराधिकारी में आप।"
उनके उत्तराधिकारी वे
रामसिंह गुरु हुए विचित्र,
अब भी आशाप्रद लोगों को
जिन अदृश्य के दृश्य चरित्र।
सैनिक होकर भी रहते थे
वे सदैव चिन्तन में लीन,
वेतनवृत्ति छोड़ व्यवसायी
बने अन्त में फिर स्वाधीन।
चलता रहा वहाँ भी चिन्तन
बढ़ता रहा विशुद्ध विचार,
अन्तर्वाणी हुई एक दिन—
"बढ़ो वीर, अब करो प्रचार।"

Hindi Premi

लुटा दिया सब द्रव्य उन्होंने
उठी हृदय में ऐसी हूक,
हुए 'नामधारी' 'कूका' वे
देकर सत्यनाम की कूक।
फैल उठे सब ओर शीघ्र ही
उनके सम्प्रदाय के शिष्य,
बना लिया उनके प्रभाव से
बहुतों ने निज नष्ट भविष्य।
रह जाती है बस वानी ही
वक्ता हो जाते हैं लीन;
योग्य व्यक्ति ही आकर उसको
देती है स्वर-शक्ति नवीन।
गुरु ऐसे ही अधिकारी थे
किया उन्होंने पुनर्विकास,
दास हुए ऐसे भी उनके
करने आये जो उपहास।
सन्त नीति का नहीं सत्य का
आग्रह रखते हैं सब ओर,
किन्तु सरल गति ही जगती में
होती है अति कठिन कठोर।
कूट नीति पटु ब्रिटिश वणिक से
राजा बन बैठे इस बीच,
विघटित से सिख विजित हुए थे,
फैली स्वार्थ भावना नीच।
छाया राज्यातंक चतुर्दिक
आया जनता में भय-मोह,
और त्रिफल-सा दबा देश में
सन् सत्तावन् का विद्रोह।
देख नया संघटन सिखों का
शंकित होकर शासक लोग,
शमन-हेतु निज दमन शस्त्र का
करने लगे प्रचण्ड प्रयोग।
फूल नहीं, वीरों के पथ में
पाये गये सदा ही शूल,

Hindi Premi

पर बढ़ने के पहले ही वे
जाते हैं जैसे भय भूल।
देख दूसरों का उत्पीड़न
अपने किये कर्म के अर्थ,
फाँसी तक के लिए उपस्थित
दीखे गुरु के शिष्य समर्थ।
पूर्ण वेग से ही नूतनता
पाती है जन-भक्ति-विरक्ति,
बाधा पाकर ही विशेष कर
देती है निज परिचय शक्ति।
किन्तु अमृतसर के मन्दिर में
गये नहीं गुरु देख विरोध,
रख बाहर ही भेंट उन्होंने
अपने दल को दिया प्रबोध।
काले पटके का प्रसाद भी
स्वीकृत किया झुकाकर सीस,
अहा! उन्हींने आप जिन्होंने
नियत किये सूबे बाईस।
'कठिन जाति-अपमान' सहन कर
बचा ले गये वे गृह-युद्ध,
अपनों के हितार्थ अपने को
भूले देखे गये प्रबुद्ध।
उठा विदेशी शासन के प्रति
बहिष्कार का उनमें भाव;
और पूर्व ही किये उन्होंने
वर्तमान के-से प्रस्ताव!
नामधारियों ने न विदेशी
कपड़े ही छोड़े सक्षोभ,
शासन की सेवा भी छोड़ी
तज कर बहु वेतन का लोभ।
इन शिक्षण-शालाओं को भी
उन सब ने कर लिया प्रणाम,
न्याय गृहों में जाने का ज्यों
लिया नहीं भूले भी नाम!

Hindi Premi

लिया एक व्रत और उन्होंने—
देकर भी कोई बलिदान,
आत्मा के प्रतिकूल एक भी
माना जाय न राज्य-विधान।
था अनिवार्य शासकों से अब
नामधारियों का संघर्ष।
आर्य धर्मधारी गोरक्षक
पहले ही जो थे दुर्द्धर्ष,
जूझे कितने वीर न जानें,
तजकर निज जीवन का मोह,
वह अपूर्व संघटन शीघ्र ही
कहा गया कूका-विद्रोह।
गुरु निष्कासित हुए अन्त में
धृत होकर सूबों के साथ,
सौंपा अपना भार उन्होंने
गुरु हरिसिंह अनुज के हाथ।
उनके पुत्र प्रतापसिंह जी
सौम्य, सरल, निश्छल, निष्पाप,
निज शिष्यों के साथ आज भी
रत हैं अपने व्रत में आप।
रामसिंह गुरु को गत सुनकर
करते नहीं सिक्ख विश्वास,
वे अब भी भैणीसाहब में
रखते हैं दर्शन की आस।
कौन नहीं चाहेगा मन से
अपनों की आशा की पूर्ति?
किन्तु नहीं सम्मुख क्या उनकी
अब भी अमिट अपार्थिव मूर्ति?

□□□

Hindi Premi

Hindi Premi

Hindi Premi

Hindi Premi

Hindi Premi

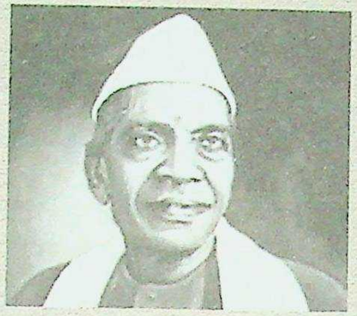

मैथिलीशरण गुप्त

खड़ी बोली के स्वरूपनिर्धारण में आपका योगदान। 'भारत भारती' के प्रकाशन से [illegible] को अपार यश मिला। तभी से 'राष्ट्रकवि' का विरुद नाम के साथ जुड़ गया। तदुपरांत महात्मा गांधी ने उन्हें 'राष्ट्रकवि' नाम से सम्बोधित किया। [illegible] में भारत रक्षा कानून के अधीन जेल गये। स्वाधीन भारत की संसद में आरंभ से ही मनोनीत सदस्य। 'साहित्य वाचस्पति' और 'डी.लिट.' (आगरा विश्वविद्यालय, 1948) की अवैतनिक उपाधियों से सम्मानित। पद्मविभूषण 1954। प्रसिद्ध कवि सियारामशरण गुप्त के अग्रज। हिन्दी में रीतिवाद विरोधी अभियान में अग्रणी। भारतीय नवजागरण तथा आधुनिक स्वाधीनता-संग्राम की अभिव्यक्ति देनेवाले लोक कवि।

कृष्णदत्त पालीवाल

संपादक परिचय

जन्म : 1 मार्च, 1943, सिकंदपुर, जिला फर्रुखाबाद, उत्तर प्रदेश।

सम्प्रति : दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्रोफेसर एवं पूर्व-विभागाध्यक्ष। जापान के तोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज़ में विजिटिंग प्रोफेसर रहे। पत्रकारिता में निरन्तर सक्रिय।

पुरस्कार/सम्मान : हिन्दी अकादमी पुरस्कार 1986। दिल्ली हिंदी साहित्य सम्मेलन सम्मान 1964। तोक्यो विदेशी अध्ययन विश्वविद्यालय, जापान द्वारा प्रशस्ति 2002। उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का राममनोहर लोहिया अतिविशिष्ट सम्मान 2005। सुब्रह्मण्यम भारती सम्मान 2005—केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा। साहित्यकार सम्मान 2006-2007, हिंदी अकादमी, दिल्ली। हिंदी भाषा एवं साहित्य में बहुमूल्य योगदान के लिए विश्व हिंदी सम्मान 2007—आठवाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन, न्यूयॉर्क, अमेरिका।

Hindi Premi